कक्षा 6 के लिए
सामाजिक विज्ञान
की पाठ्यपुस्तक

लेखक मंडल

मक्खन लाल बासबी खान बनर्जी
सीमा यादव मो. अख़्तर हुसैन

संपादक

प्रेम शंकर खरे

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जनवरी 2003
पौष 1924
PD 300T MK

ISBN 81-7450-047-2

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	निकट : धनकल बस स्टॉप
नई दिल्ली 110016	बैंगलूर 560085	अहमदाबाद 380014	पनिहटी, कोलकाता 700114

प्रकाशन सहयोग

संपादन मीरा कांत
उत्पादन डी. साई प्रसाद
सुबोध श्रीवास्तव

सज्जा एवं आवरण
कल्याण बैनर्जी

रु. 30.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित ।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली–110016 द्वारा प्रकाशित तथा अरुण एण्ड राजीव प्राईवेट लिमिटेड, 10, डी.एस.आई.डी.सी. स्कीम–II ओखला इण्डस्ट्रियल ऐरिया फेस–II नई दिल्ली 110020 द्वारा मुद्रित

प्राक्कथन

माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान सामान्य शिक्षा का एक अनिवार्य अंग है । इससे विद्यार्थियों को मानवीय परिप्रेक्ष्यों को समग्रता में समझने में सहायता मिलती है । सामाजिक विज्ञान की शिक्षा को अर्थपूर्ण, प्रासंगिक तथा प्रभावी बनाने के लिए समकालीन भारत से संबद्ध विषयों और सरोकारों पर बल दिया गया है ।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2000 के अनुरूप सभी विषयों के नए पाठ्यक्रम तैयार किए गए हैं । नए पाठ्यक्रम पर आधारित प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में पहली बार समेकित विषयक पद्धति अपनाई गई है । समय तथा स्थानों के परिप्रेक्ष्य में मानव-समाज के विभिन्न आयामों/रूपों पर विचार करने का प्रयास किया गया है ।

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक सामाजिक विज्ञान की नई पाठ्यपुस्तकों की शृंखला में पहली कड़ी है जो *भारत और विश्व* विषय पर आधारित है । विषयों की उचित अंतर्निर्भरता पर प्रकाश डालते हुए इसे तीन इकाइयों में बाँटा गया है। ये इकाइयाँ हैं – पृथ्वी : हमारा आवास (इकाई एक), प्राचीन काल में मानव और समाज (इकाई दो) तथा समुदाय और उसका विकास (इकाई तीन) ।

मैं उन विषय-विशेषज्ञों, विभागीय सदस्यों तथा अनुभवी शिक्षकों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ , जिन्होंने पांडुलिपि को तैयार करने में तथा इसे अंतिम स्वरूप प्रदान करने में सक्रिय सहयोग दिया । आशा है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों में समाज के प्रति एक व्यापक तथा विवेकपूर्ण दृष्टि के विकास में सहायक होगी । वे उत्पादक, सफल और उत्तरदायी नागरिक बनने के लिए आवश्यक कौशलों और क्षमताओं को ग्रहण कर राष्ट्र के विकास और निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय योगदान करने योग्य हो सकेंगे ।

परिषद् पुस्तक में सुधार हेतु विचारों व सुझावों का स्वागत करती है ।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
अगस्त 2002

समीक्षा कार्यगोष्ठी के प्रतिभागी

मक्खन लाल (लेखक)
प्रोफ़ेसर एवं निदेशक
दिल्ली इंस्टिच्यूट ऑफ हेरिटेज रिसर्च एंड मैनेजमेंट
नई दिल्ली

वासवी खान बनर्जी (लेखिका)
प्रवाचक
सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

सीमा यादव (लेखिका)
प्रवक्ता
दिल्ली इंस्टिच्यूट ऑफ हेरिटेज रिसर्च एंड मैनेजमेंट
नई दिल्ली

मो.अख़्तर हुसैन (लेखक)
प्रवाचक
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल

वी.एल.गुप्ता (अनुवादक)
मानसरोवर पार्क, शाहदरा, नई दिल्ली

आर.एस. पसरीचा (अनुवादक)
प्रबंधक
डी.ए.वी. मॉडल स्कूल
यूसुफ़ सराय, नई दिल्ली

एम.एल. साहनी (अनुवादक)
प्रवक्ता
राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय
आर.के.पुरम, नई दिल्ली

प्रेम शंकर खरे (संपादक)
पूर्व प्राचार्य
[illegible] कॉलेज
इलाहाबाद

हरिओम
प्रोफ़ेसर
इतिहास विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू

एस.एम. शर्मा
पूर्व प्राचार्य
एस.आर.एस.डी. वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय
लाजपत नगर, नई दिल्ली

मंजीष्ठा बोस
पूर्व उप-प्राचार्या
स्प्रिंगडेल्स स्कूल, धौला कुआँ, नई दिल्ली

वीणा व्यास
पी.जी.टी.
डी.एम. स्कूल, क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल

मो. सिराज अनवर
प्रवक्ता
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल

एम.आर.गोस्वामी
पी.जी.टी.
केंद्रीय विद्यालय, नई दिल्ली

सा.वि.मा.शि.विभाग (एन.सी.ई.आर.टी.) के संकाय-सदस्य

सविता सिन्हा, *प्रोफ़ेसर*

नीरजा रश्मि, *प्रवाचक*

सुप्ता दास, *प्रवक्ता (सलेक्शन ग्रेड)*

संजय दुबे, *प्रवाचक*

मिली रॉय आनंद, *प्रवक्ता*

ज.पा.सिंह, *प्रोफ़ेसर (संयोजक)*

विषय सूची

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो. क. गांधी

वैज्ञानिकों का मानना है कि पृथ्वी पर जीव का आरंभ लगभग 350 करोड़ वर्ष पूर्व हुआ। हमारी पृथ्वी कितनी पुरानी है ? इसकी उत्पत्ति के बारे में किसी को भी सही जानकारी नहीं है। ऐसा विश्वास है कि हमारे ग्रह का बनना, जो हमारे सौरमंडल का एक अंग है, लगभग 450 करोड़ वर्ष पूर्व शुरू हुआ।

पृथ्वी हमारा घर है। यह ग्रह हमारे वृहत परिवार, जिसे सौरमंडल कहा जाता है, का सदस्य है। सूर्य इस सौर परिवार के मध्य में है। पृथ्वी और दूसरे ग्रह सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। यह सिद्धांत काफी पहले आर्यभट्ट द्वारा प्रस्तुत किया गया था, बाद में इसे कोपरनिकस के द्वारा पुनः प्रस्तुत किया गया और गैलिलियो गैलिली के द्वारा प्रमाणित किया गया। सौर परिवार में नौ ग्रह, उनके उपग्रह, क्षुद्र ग्रह, उल्काएँ और निहारिकाएँ हैं। इस इकाई में हम सौरमंडल, पृथ्वी, चंद्रमा तथा अपनी पृथ्वी की आधारभूत विशेषताओं का अध्ययन शुरू के अध्यायों में करेंगे। पृथ्वी और उसके परिवार के बारे में मूलभूत जानकारी के बाद हम अपने ग्रह पर स्थित महाद्वीपों, महासागरों और विभिन्न भू-आकृतियों के बारे में सीखेंगे। क्रमशः यह इकाई ग्लोब पर हमारे देश भारत की अवस्थिति को फ़ोकस करेगी, जो हमारी पृथ्वी की भू-आकृति, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति और वन्य जीवों के बारे में संक्षिप्त रेखाचित्र प्रदान करेगी।

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत पृथ्वी ग्रह जिस पर हम रहते हैं, वह परिवार जिसका यह अंग है तथा अपना देश भी जिसमें हम रहते हैं, उनके बारे में शिक्षार्थी समझ सकेंगे।
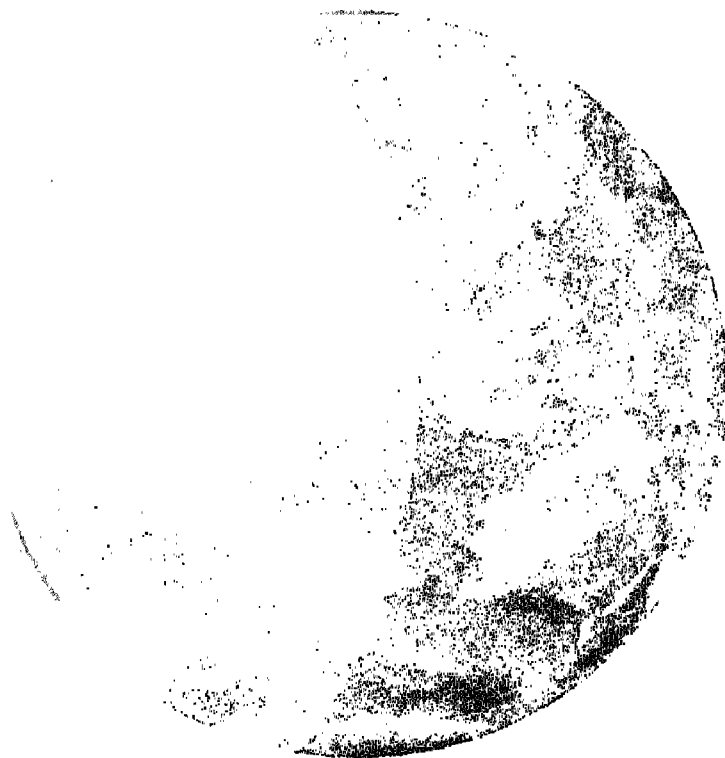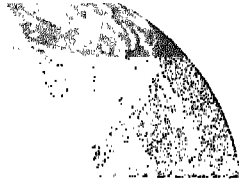
हमारी पृथ्वी और

आकाश को देखना सचमुच कितना आश्चर्यजनक लगता है। दिन में सूर्य चमकता है, पर जैसे ही साँझ ढलती है आप हज़ारों टिमटिमाते पिंडों को देख सकते हैं। सूर्य तथा इन सभी टिमटिमाते पिंडों को तारे कहते हैं। आपको आश्चर्य हो सकता है कि आखिर तारे क्या हैं। तारे चमकती हुई गैसों के बहुत बड़े पिंड हैं। आप इनमें से बहुतों को देख सकते हैं। परंतु अनेक ऐसे हैं जिन्हें आप अपनी नंगी आँखों से नहीं देख सकते। वे तारे हमसे बहुत अधिक दूरी पर हैं इसीलिए वे इतने छोटे और धुँधले दिखाई देते हैं। तारों के अतिरिक्त अंतरिक्ष में ग्रह, धूल और गैसें हैं। तारों के ठीक विपरीत, ग्रहों में अपना प्रकाश और ऊष्मा नहीं होती। वे तारों के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। ये सभी आकाशीय पिंड खगोलीय पिंड कहलाते हैं जिनसे **ब्रह्मांड** बना है। इन तारों, ग्रहों, धूल और गैसों के संपूर्ण समूह को ही ब्रह्मांड कहते हैं। ब्रह्मांड अति विशाल है।

आप सभी ने नीले आकाश में बादलों को तैरते हुए अवश्य देखा होगा। वे विभिन्न आकार बनाते रहते हैं। इसी तरह से रात के समय आकाश में तारे भी विभिन्न प्रकार के प्रतिरूप और आकृतियाँ बनाते रहते हैं। यदि आप इन प्रतिरूपों को ध्यान से देखें तो आप इनमें मानवों, जानवरों तथा अन्य वस्तुओं की तस्वीरों

सूर्य तारों में से एक है।

यह हमें इतना बड़ा और चमकदार इसलिए दिखाई देता है क्योंकि यह हमारे निकट है।

हम अपनी नंगी आँखों से 6000 से अधिक तारों को नहीं देख सकते।

हम शक्तिशाली दूरबीनों की सहायता से आकाश में लाखों तारों को देख सकते हैं।

की कल्पना सहज ही कर सकते हैं। इस प्रकार से विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनाते रहने वाले तारों के समूह को **तारामंडल** कहते हैं। प्राचीन काल में लोग इन आकारों का अवलोकन करते थे। **सप्तऋषि** ऐसा ही एक तारामंडल है। यह सात तारों अर्थात सात ऋषियों का एक समूह है। सप्तऋषि **उरसा मेजर** अथवा ***बिग बियर*** तारामंडल का ही एक भाग है। तारामंडल की तस्वीर को ध्यान से देखें और रात के समय आकाश में उन्हें पहचानने का प्रयत्न करें। प्राचीन यूनान में भी लोग ऐसी आकृतियों का अवलोकन करते थे और उन्हें विभिन्न नामों से संबोधित करते थे। तारों, ग्रहों और अन्य आकाशीय पिंडों का अध्ययन करने वाले विज्ञान को **खगोल-विज्ञान** कहते हैं। प्राचीन भारतीय और यूनानी इस क्षेत्र में बड़े निपुण थे।

प्राचीन काल में लोग दिशाएँ निर्धारित करने के लिए इन तारों को देखा करते थे। ध्रुवतारा
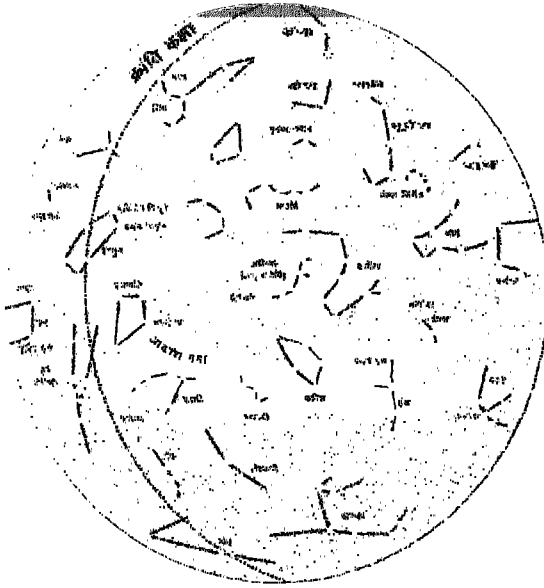
तारामंडल

अथवा *पोलोरिस* उत्तर दिशा बताता है क्योंकि इसे ठीक उत्तरी ध्रुव के उपर देखा जाता है।

बादल रहित रात में तारों से प्रकाशित आकाश को देखें। तारों के एक विशाल समुदाय या तंत्र को **मंदाकिनी** कहते हैं। एक मंदाकिनी में एक दूसरे के निकट स्थित अरबों तारे होते हैं। ब्रह्मांड में ऐसी अरबों मंदाकिनियाँ हैं। कुछ स्थानों पर तारे इतने अधिक निकट होते हैं कि यह एक सफ़ेद, चमकदार पथ जैसा दिखाई देता है। यह पथ ही **धवल पथ मंदाकिनी** है। इसे **आकाशगंगा** के नाम से भी जाना जाता है। सूर्य इसी मंदाकिनी का सदस्य है।

ध्रुवतारे का चित्र

एक अकेली मंदाकिनी में लाखों तारे होते हैं।

एक मिलियन का अर्थ है दस लाख और एक लाख का अर्थ है 100 हज़ार।

वैज्ञानिकों ने बहुत सी मंदाकिनियों की पहचान कर ली है, ये सभी मंदाकिनियाँ मिलकर ब्रह्मांड के केवल एक भाग का ही निर्माण करती हैं। सत्य है ! हमारा ब्रह्मांड विशाल है।

सूर्य और उसका परिवार

सूर्य एक तारा है। यह हमारे लिए प्रकाश और ऊष्मा का स्रोत है। यह सौरमंडल के नौ ग्रहों और उनके उपग्रहों के मध्य में स्थित है। इसे ही हम सौर परिवार कहते हैं। सूर्य सौर परिवार का मुखिया है। नौ ग्रह अर्थात बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेप्चून और प्लूटो इसके चारों ओर घूमते हैं। **इन ग्रहों में अपना प्रकाश और ऊष्मा नहीं है।** ये अपना प्रकाश और ऊष्मा सूर्य से ही प्राप्त करते हैं। सूर्य बहुत बड़ा और बहुत गर्म है परंतु हमें इसकी इतनी अधिक ऊष्मा इसलिए अनुभव नहीं होती क्योंकि यह हमसे बहुत दूर है। हमारी पृथ्वी सूर्य से लगभग 15 करोड़ किलोमीटर दूर है। क्या यह बहुत अधिक दूर नहीं है?

लेकिन सूर्य आया कहाँ से? वैज्ञानिकों का मत है कि सूर्य की उत्पत्ति घूमते हुए गैसों के

अधिकतर ग्रहों के नाम और चिह्न अत्यंत प्राचीन हैं।

अभी भी खगोल वैज्ञानिक इन ग्रहों के बारे में बताते हुए उन चिह्नों का प्रयोग करते हैं।

इस प्रकार के विभिन्न चिह्न यहाँ दिए गए हैं।

बादलों से हुई है जिसे **निहारिका** कहा गया है। सूर्य तथा इसके ग्रहों की उत्पत्ति इन्हीं गैसों के बादलों से हुई। गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण इनकी उत्पत्ति हुई। लाखों वर्षों तक यह धूल और गैस के गोले सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते रहे। सूर्य अपने परिमाण और भार के कारण ग्रहों की गति को नियंत्रित करता है। इसी शक्ति को **गुरुत्वाकर्षण की शक्ति** कहते हैं। क्या आपने कभी लट्टू को घूमते हुए देखा है? वास्तव में ये ग्रह लट्टू की ही भाँति सूर्य के चारों ओर घूम रहे हैं। ये आकाश में विचरण करते रहते हैं। इनके विचरण का अपना पथ होता है जिसे परिक्रमा-पथ अथवा **कक्षा** कहते हैं। इनकी
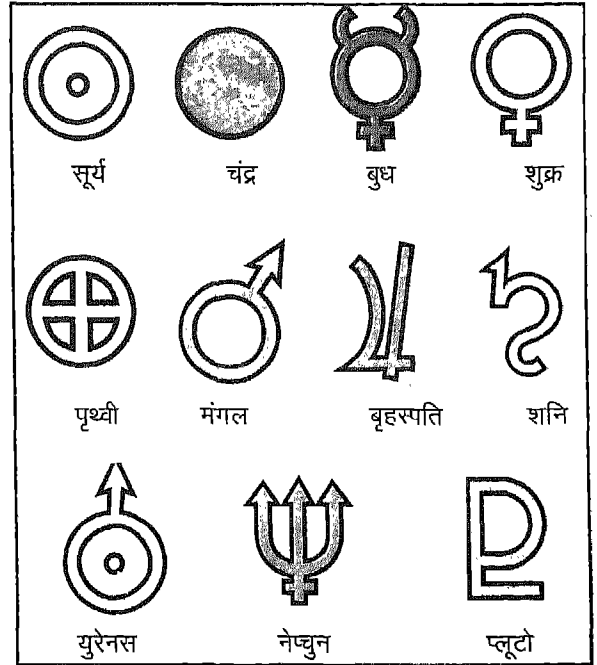
सूर्य और ग्रहों के चिह्न

अपनी अलग-अलग गति भी होती है। यही कारण है कि प्रत्येक ग्रह अपनी-अपनी परिक्रमा पूरी करने में अलग-अलग समय लेता है। सूर्य और ग्रहों को दर्शाने वाले सौरमंडल के चित्र को ध्यान
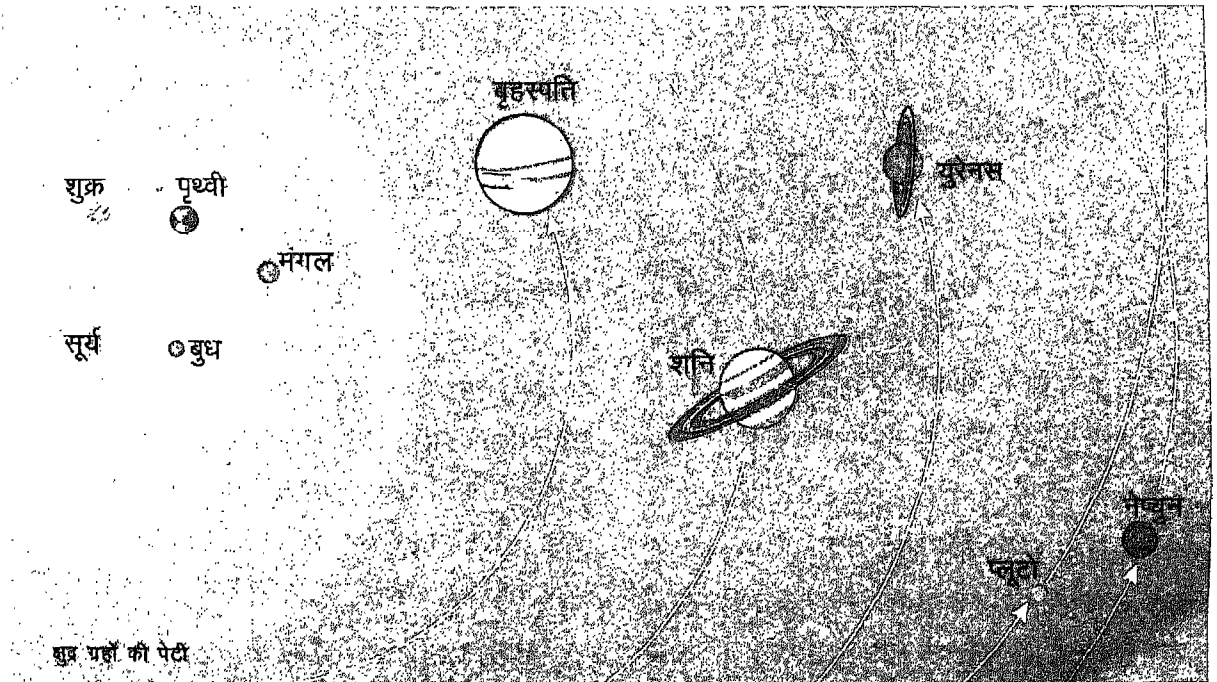
सौरमंडल

से देखें। आप एक सारणी बना सकते हैं तथा उसमें प्रत्येक ग्रह द्वारा परिक्रमण पूरा करने में लिया गया समय दिखा सकते हैं।

छोटे-छोटे आकाशीय पिंडों का एक दूसरा वर्ग भी है जो ग्रहों के चक्कर लगाता है। ये **उपग्रह** कहलाते हैं। ग्रहों की तरह उपग्रहों का भी अपना प्रकाश और अपनी ऊष्मा नहीं होती। हमारी पृथ्वी का केवल एक प्राकृतिक उपग्रह है और वह है चंद्रमा। ज्ञात कीजिए कि किस ग्रह के उपग्रह सबसे अधिक संख्या में हैं।

सौर परिवार : एक बड़ा परिवार

अब आप तारों, ग्रहों और उपग्रहों के विषय में जानते हैं। इनके अतिरिक्त असंख्य अत्यंत छोटे-छोटे पिंड हैं, जो सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते हैं। इन पिंडों को **क्षुद्र ग्रह** कहा जाता है।

ये क्षुद्र ग्रह मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं के बीच पाए जाते हैं। सबसे बड़ा क्षुद्र ग्रह सिरिस है। वैज्ञानिकों का कहना है कि क्षुद्र ग्रह किसी विस्फोटित ग्रह के टुकड़े हैं। ये क्षुद्र ग्रह परिक्रमा करते हुए कभी-कभी आपस में टकरा जाते हैं और टूटकर छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाते हैं। ये छोटे-छोटे टुकड़े अर्थात **उल्का पिंड** कभी-कभी पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। ये पृथ्वी पर बड़े धमाके से गिरते हैं और गर्त या खड्ड का निर्माण कर देते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के एरीज़ोना में उल्का गर्त इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

इस अध्याय को पढ़ने के पश्चात अब आपको ज्ञात हो गया होगा कि सूर्य का परिवार अत्यंत बड़ा और जटिल है। इन सबको मिलाकर सौरमंडल कहते हैं। सूर्य से दूरी के अनुसार ग्रहों के नामों की सूची बनाइए।

पृथ्वी : सौरमंडल में हमारा अनोखा घर

हमारा घर अर्थात पृथ्वी एक ग्रह है। अँग्रेज़ी का शब्द *प्लैनेट* ग्रीक भाषा के *प्लेनटाइ* शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'घूमने वाले'। सूर्य से दूरी के अनुसार पृथ्वी सौरमंडल में तीसरे स्थान पर है। परंतु आकार की दृष्टि से इसका पाँचवाँ स्थान है। पृथ्वी का धरातलीय तापमान मध्यम है तथा इस पर जीवन संभव है। इस प्रकार पृथ्वी एक अनोखा ग्रह है क्योंकि अब तक की जानकारी के अनुसार यही एक ग्रह है जहाँ जीवन अस्तित्व में है।

अन्य ग्रहों की भाँति, पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा कर रही है। एक परिक्रमा पूरी करने में यह लगभग 365 दिन और 6 घंटे का समय लेती है। आपकी आयु से यह पता चल जाएगा कि आपने सूर्य के चारों ओर कितने चक्कर लगाए हैं। क्या यह जानकर आप मंत्र-मुग्ध नहीं हो रहे हैं?

हमारी पृथ्वी की आकृति लगभग गोल है। यह उत्तर और दक्षिण में थोड़ी चपटी है। परंतु पुराने ज़माने में विश्व के विभिन्न भागों में लोग इसकी आकृति के बारे में विभिन्न दृष्टिकोण रखते थे। हमारे इस ग्रह की आकृति के विषय में बहुत सी रोचक कहानियाँ कही जाती थीं। कुछ लोग सोचते थे कि पृथ्वी तवे की रोटी के समान है, कुछ अन्य लोग इसे कमल के समान मानते थे। ध्रुवों पर कुछ चपटी और क्रमशः पतली होते आकार की पृथ्वी का **पृथ्वाकार (ज्योइड)** के रूप में वर्णन किया जा सकता है। पृथ्वाकार का अर्थ है पृथ्वी जैसी आकृति। इस तरह से अब तो आप जान गए कि हमारी पृथ्वी कितनी अनोखी है!

पृथ्वी स्थल और जल से बनी है। पृथ्वी का एक-तिहाई भाग स्थल है और बाकी भाग जल
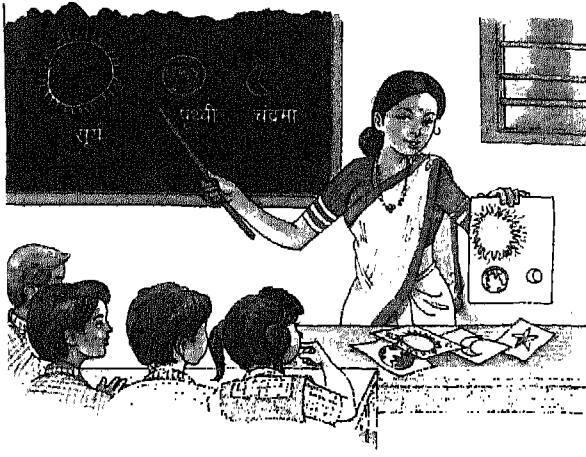
कक्षा में अध्यापिका तारों तथा ग्रहों को दिखाते हुए

पृथ्वी के आकार की गणना यूनान निवासी गणितज्ञ *इरैटास्थीनीज़* ने की थी। उसने इसकी गणना दो भिन्न स्थानों पर इसकी परछाई के आकार में अंतर को देखकर की थी और ज्यामिति का प्रयोग करके पृथ्वी के आकार को मालूम किया था।

से घिरा हुआ है। अंतरिक्ष से लिए गए चित्रों में पृथ्वी नीली दिखाई देती है। इसलिए इसको नीला ग्रह कहते हैं। किसी अन्य ग्रह के धरातल पर जल नहीं है। हमारा जीवित रहना जल की उपलब्धता पर निर्भर है।

चंद्रमा : पृथ्वी का इकलौता सहचर

चंद्रमा पृथ्वी का इकलौता प्राकृतिक उपग्रह है। अंतरिक्ष में यह हमारे सबसे निकट का पड़ौसी है। सभी आकाशीय पिंडों की भाँति, इसकी दो अलग-अलग गतियाँ हैं। यह अपने अक्ष पर घूमता है और पृथ्वी की परिक्रमा भी करता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि चंद्रमा दोनों प्रकार की गतियों को पूरा करने में लगभग समान समय लेता है और वह है 27 दिन तथा 7 घंटे। इसीलिए हमें पृथ्वी पर चंद्रमा का सदैव एक ही भाग दिखाई पड़ता है और दूसरे भाग को हम यहाँ से नहीं देख पाते।

चंद्रमा पृथ्वी से लगभग 3,84,400 किलोमीटर दूर है और यह बहुत छोटा दिखाई देता है। कोई भी निश्चित तौर पर यह नहीं कह सकता है कि चंद्रमा की उत्पत्ति कैसे हुई। पहले लोगों का यह विश्वास था कि चंद्रमा पृथ्वी का ही भाग है। परंतु जब अंतरिक्ष यात्री चंद्रमा पर गए तो वे वहाँ से शैलों के नमूने लाए। इन शैलीय नमूनों के परीक्षण ने इस सिद्धांत को असत्य साबित कर दिया है। कौन जानता है, शायद चंद्रमा की उत्पत्ति भी पृथ्वी की उत्पत्ति के समय ही हुई हो।
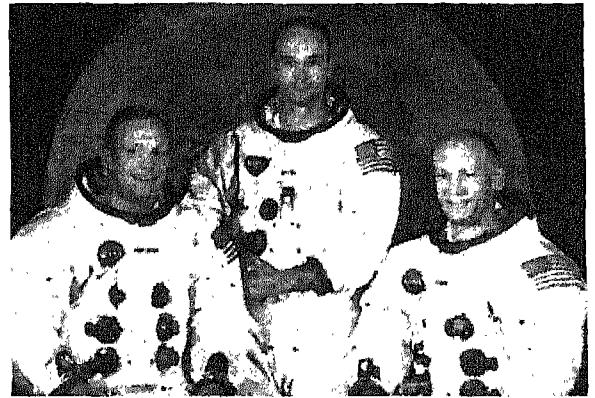
अंतरिक्ष यात्री

अपोलो परियोजना के अंतर्गत बहुत से अभियानों के पश्चात अब हम चंद्रमा के विषय में किसी अन्य आकाशीय पिंड की अपेक्षा अधिक जानते हैं। *नील आर्मस्ट्रॉंग* और *एडविन एल्ड्रिन* ने चंद्रमा पर सर्वप्रथम कदम रखा और उन्होंने वहाँ उच्चभूमियों और घाटियों को देखा। अगर आप अंतरिक्ष से लिए गए चंद्रमा के चित्र को देखें तो आपको पता चलेगा कि चंद्रमा पर किसी प्रकार का जीवन नहीं है। घाटियाँ शुष्क शैलीय पदार्थों से भरी हैं। आप चंद्र अभियानों के कुछ और चित्रों के साथ संबंधित जानकारी भी इकट्ठी कर सकते हैं।

जल ही जीवन है

एक शीशे की कड़ाही में कुछ ताज़ी सूखी घास और पानी रखिए।

इस मिश्रण को कुछ समय तक धीमी आँच पर उबालिए।

इस मिश्रण को एक या दो दिन के लिए रख दीजिए।

इसमें से एक बूँद पानी लीजिए और इसे सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा देखिए।

हाँ, आप इसमें अति सूक्ष्म जीवों को देख सकते हैं। अब अपने आपसे पूछिए कि ये जीव कहाँ से आए।

अंतरिक्ष से लिया गया चंद्रमा का चित्र

चंद्रमा पर एक नए खनिज को खोजा गया। इसका नाम *आर्मअलकोलाइट* रखा गया। यह नाम अपोलो II के अंतरिक्ष यात्रियों - ***आर्मस्ट्रॉंग, एल्ड्रिन*** और ***कोलिन्स*** के नामों के कुछ भागों को लेकर बना है।

क्या आप जानते हैं कि चंद्रमा पर सबसे पहले किसने कदम रखा?

हमारी पृथ्वी की तरह ही चंद्रमा का भी अपना कोई प्रकाश नहीं है। यह सूर्य के प्रकाश को परावर्तित करता है। हम रात के समय इसको आकाश में चमकते हुए देखते हैं। जब चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है तो सूर्य के संबंध में उसकी स्थिति प्रतिदिन बदलती रहती है। यही कारण है कि यह प्रत्येक रात को अलग-अलग रूप में दिखाई देता है। वास्तव में, चंद्रमा न तो घटता है और न ही बढ़ता है, जैसा कि अधिकतर लोग सोचते हैं। चंद्रमा केवल अपनी आकृति बदलता हुआ दिखाई देता है। जब चंद्रमा का पीछे वाला भाग सूर्य के सामने होता है तो वह प्रकाशित होता है। उस समय हम पृथ्वी से चंद्रमा को नहीं देख सकते। इस स्थिति को **अमावस्या** कहते हैं। धीरे-धीरे 15 दिन में इसकी आकृति पतले बालचंद्र से **पूर्णचंद्र** अथवा **पूर्णमासी** के चंद्रमा में बदल जाती है। चंद्रमा का यह प्रकाशित भाग धीरे-धीरे फिर कम होकर अमावस्या में बदल जाता है। इस पूरी अवस्था में 29 दिन 12 घंटे लगते हैं।
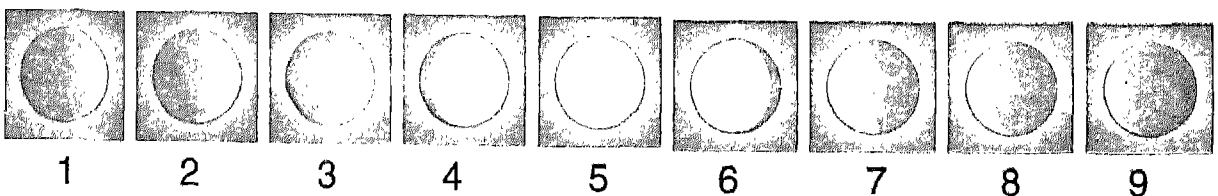
चंद्रमा और उसकी विभिन्न कलाएँ

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए

(1) ब्रह्मांड का वर्णन कीजिए।

(2) खगोलीय पिंड किसे कहते हैं?

(3) 'ग्रह' शब्द का क्या अर्थ है?

(4) उपग्रह किस प्रकार तारे से भिन्न होता है?

2. रिक्त स्थान भरिए

(1) धवल पथ मंदाकिनी को ....नाम से भी जाना जाता है।

(2) पृथ्वी का अकेला प्राकृतिक उपग्रह..................................है।

(3) चंद्रमा पर पहुँचने वाले पहले मानव................................थे।

(4) उल्का पिंड..................................हैं।

3. सही जोड़े बनाइए

(1)	सूर्य के सबसे निकट का ग्रह	(क)	बृहस्पति
(2)	सूर्य से सबसे दूर का ग्रह	(ख)	बुध
(3)	सौरमंडल के मध्य में स्थित तारा	(ग)	प्लूटो
(4)	सबसे बड़ा ग्रह	(घ)	सूर्य

करने के लिए कार्य

* ग्रहों की सूर्य से दूरी दिखाने वाली एक सारणी बनाइए।
* तारों की सारणी की सहायता से तारामंडल का अवलोकन कीजिए और उन्हें पहचानिए।

2

ग्लोब और मानचित्र किस प्रकार हमारे सहायक हैं

आप जानते हैं कि हमारी पृथ्वी गोलाकार है। ध्रुवों के निकट यह थोड़ी चपटी है। आपने अपनी पृथ्वी को चित्रों में देखा होगा, परंतु केवल पृथ्वी का प्रतिरूप *(माडल)* ही शायद इस ग्रह के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान करा सकता है। पृथ्वी का प्रतिरूप **ग्लोब** है जबकि चित्र नहीं। यह हमारी विशाल पृथ्वी का एक छोटा-सा प्रतिरूप है। यह अत्यंत प्रभावशाली है क्योंकि यह तीन-आयामी प्रतिरूप है।

ग्लोब हमें पृथ्वी की आकृति का सही ज्ञान करा सकता है। इस पर दोनों ध्रुव, अक्षांश और देशांतर रेखाएँ, महासागर और महाद्वीप दिखाए जाते हैं। इस तरह से ग्लोब हमारे ग्रह का अधिक स्पष्ट विवरण प्रस्तुत करता है।

कुछ समय पूर्व तक ग्लोब को लाने-ले जाने में कठिनाई होती थी। परंतु हमारे पास मोड़कर रखे जाने वाले ग्लोब हैं जिन्हें हवा भरकर फुलाया जा सकता है। इन ग्लोबों का प्रयोग वैसे ही किया जा सकता है जैसे हम हवा वाले तकियों/गुब्बारों का प्रयोग करते हैं। इन ग्लोबों का प्रयोग पहले की अपेक्षा अब अधिक सुविधाजनक हो गया है। आज कल ऐसे भी ग्लोब हैं जिन पर विभिन्न भू-आकृतियाँ जैसे पर्वत, पठार, मैदान आदि भी दिखाए हुए होते हैं जिन्हें हम अपने हाथों के स्पर्श से अनुभव कर सकते हैं। हम यह भी मालूम कर सकते हैं कि दो बराबर वाली मध्याह्न रेखाओं के बीच की दूरी विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर जाते हुए कैसे कम हो जाती है।

ग्लोब का दूसरा लाभ यह है कि इसे ठीक उसी तरह से घुमाया जा सकता है जैसे पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है। ग्लोब को ध्यान से देखिए। ग्लोब का उत्तर-दक्षिण थोड़ा सा वैसे ही झुका हुआ है जैसे पृथ्वी अपने कक्ष पर झुकी हुई है। पृथ्वी के इसी झुकाव के कारण ऋतुएँ बनती हैं जिन्हें हम अपने जीवन में अनुभव करते हैं। इसलिए, ग्लोब हमारे लिए एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपकरण है।

ग्लोब की कुछ सीमाएँ भी हैं। ग्लोब तभी उपयोगी हो सकता है जब हम संपूर्ण पृथ्वी की बात करें। परंतु जब हम पृथ्वी के केवल एक भाग का अध्ययन करना चाहें, जैसे अपने देश का, अपने राज्य का, उस ज़िले का जिसमें हम रहते हैं अथवा केवल नगरों और गाँवों का, तब ग्लोब हमारे लिए बहुत कम उपयोगी है। इस प्रकार की स्थिति में अलग-अलग मापकों पर बने विभिन्न आकारों के मानचित्र हमारी सहायता कर सकते हैं। मानचित्र न केवल भूगोलवेत्ताओं के लिए बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले लोगों के लिए भी अत्यंत उपयोगी बन गए हैं। यहाँ तक

ग्लोब पृथ्वी का तीन-आयामी प्रतिरूप है।

मानचित्र पृथ्वी के धरातल या उसके किसी भाग के किसी चपटी सतह पर बने चित्र का नमूना है।

यह मापक के अनुसार बनाया जाता है।

मापक के बिना मुख्य रूप से कल्पना के आधार पर बनाया गया चित्र रेखाचित्र कहलाता है।

एक मापचित्र किसी क्षेत्र अथवा भवन का एक खाका है।

कि आम महिलाएँ और पुरुष भी मानचित्रों का उपयोग करते हैं। मानचित्र बनाने के विज्ञान को **मानचित्र कला** या ***कार्टोग्राफ़ी*** कहते हैं।

मानचित्र

ग्लोब पर विस्तृत जानकारी देना निश्चित रूप से कठिन है। अगर विश्व अथवा इसके किसी भाग को रेखाचित्र मापक के अनुसार बनाएँ तो ऐसे रेखाचित्र को **मानचित्र** कहते हैं। इन जानकारियों को हम मानचित्र में चिह्नों, शब्दों, रेखाओं और रंगों के माध्यम से दर्शाते हैं। आप कल्पना भी नहीं कर सकते कि एक मानचित्र में कितनी अधिक जानकारी प्रदर्शित की जा सकती है। एक मानचित्र में इतने तथ्यों को दर्शाया जा सकता है जितने तथ्य एक बड़ी पुस्तक में होते हैं।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि सबसे पहला मानचित्र 2300 ईसा पूर्व में बनाया गया था। यह मृत्तिका-पट्ट पर बनाया गया था। कालांतर में मानचित्रों का प्रयोग भूमि अथवा संपत्तियों की सीमाएँ दर्शाने के लिए किया जाने लगा। इनमें से कुछ मानचित्र 2200 ईसा पूर्व में बनाए गए थे।

प्राचीन लोग मानचित्रों को विभिन्न तकनीकों द्वारा बनाया करते थे। उदाहरण के लिए एस्कीमो लोग तटीय द्वीपों के जानवरों की गहरे रंग की खाल को काटकर बनाया करते थे। उसके बाद उन आकृतियों को वे हल्के रंग की खाल पर सी देते थे जो महासागरों का प्रतीक होती थीं।

मिस्रवासी मानचित्रों को धातु की चादरों पर उकेरा करते थे। प्रशांत महासागरीय द्वीपों में लोग सरकंडों में गाँठ बाँधकर मापचित्र बनाया करते थे। प्रारंभिक काल में मानचित्र प्रामाणिक जानकारी की अपेक्षा अधिकतर कल्पना और कथाओं पर आधारित होते थे।

टोलेमी

आजकल मानचित्र बनाना एक महत्त्वपूर्ण विज्ञान बन गया है। मानचित्र बहुत सही और स्पष्ट होते हैं। किसी क्षेत्र में जाने से पहले आपको वह सब जानकारी मिल सकती है जिसकी आवश्यकता है। यह जानकारी मामचित्र पर प्रदर्शित होती है। एक मिस्रवासी भूगोलवेत्ता

तथा मानचित्रकार ने मानचित्र बनाने की विद्या को विज्ञान का स्थान दिया। उसका नाम था - *टोलेमी*। उसने अपने मानचित्र में सर्वप्रथम ऊपर की ओर एक उत्तर-रेखा खींचकर दिशाएँ दिखाईं।

मानचित्र के तीन स्तंभ : दूरी, दिशा और चिह्न

मानचित्र ऐसा आरेख है जिसमें संपूर्ण विश्व अथवा उसके किसी भाग को छोटा करके एक कागज़ पर दर्शाया जाता है। इसे छोटे रूप में बनाने के कार्य को सावधानीपूर्वक किया जाता है, ताकि विभिन्न स्थानों के बीच की दूरी को सही रखा जा सके। दूसरे शब्दों में स्थानों के बीच दूरियों को मापक के अनुसार सही रखा जाता है।

दूरी किसी भी मानचित्र का एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। इसलिए इस कार्य के लिए मापक चुना जाता है। मापक या पैमाना क्या है? पृथ्वी के धरातल पर वास्तविक दूरी और मानचित्र पर दिखाई गई उसी दूरी के बीच अनुपात को मापक या पैमाना कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आप अपने विद्यालय और घर के बीच का 10 किलोमीटर की दूरी को मानचित्र पर 2 सेंटीमीटर द्वारा दिखाना चाहते हैं तो इसका अर्थ हुआ कि मानचित्र पर 1 सेंटीमीटर की दूरी पृथ्वी पर 5 किलोमीटर की दूरी को दिखाएगी। इस तरह आपके रेखाचित्र का मापक होगा 1 सेंटीमीटर 5 किलोमीटर के लिए अथवा 1 सेंटीमीटर=5 किलोमीटर। इस तरह से मापक किसी भी मानचित्र का एक महत्त्वपूर्ण अवयव है। यदि आपको मापक मालूम है तो आप अपने मानचित्र पर किन्हीं दो स्थानों के बीच की दूरी की गणना कर सकते हैं अथवा इसे मानचित्र पर रेखांकित कर सकते हैं। यदि मापक का चित्र बनाया जाए तो इसे ग्राफ़ीय मापक अथवा रेखीय मापक कहेंगे।

ग्लोब अथवा मानचित्र पर दो स्थानों के बीच की निकटतम दूरी मापने के लिए –

धागे का एक टुकड़ा लीजिए।

उन दोनों बिंदुओं अथवा स्थानों को धागे से मिलाइए और इस दूरी को मापिए।

ग्लोब अथवा मानचित्र पर दिए गए मापक को देखिए।

वास्तविक दूरी ज्ञात करने के लिए मापक के अनुसार उसकी गणना कीजिए।

अथवा आप इसे मापक बना कर दिखा सकते हैं, जैसा कि नीचे के चित्र में दिखाया गया है।

जब एक बड़े क्षेत्र को छोटे मानचित्र पर दिखाया जाता है तो इसे छोटे मापक वाला मानचित्र कहते हैं। परंतु यदि हम दिल्ली के किसी एक भाग, नगर अथवा गाँव को उसी आकार के कागज़ पर दिखाएँ तो इसे बड़े मापक का मानचित्र कहेंगे। छोटे मापक वाले मानचित्र में हम बहुत सीमित विवरण ही दे सकते हैं, जबकि बड़े मापक वाले मानचित्र में विस्तृत विवरण दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए, भारत का मानचित्र छोटे मापक का मानचित्र है जबकि उसी आकार के कागज़ पर बनाया गया दिल्ली का मानचित्र बड़े मापक का मानचित्र है।

रेखीय मापक
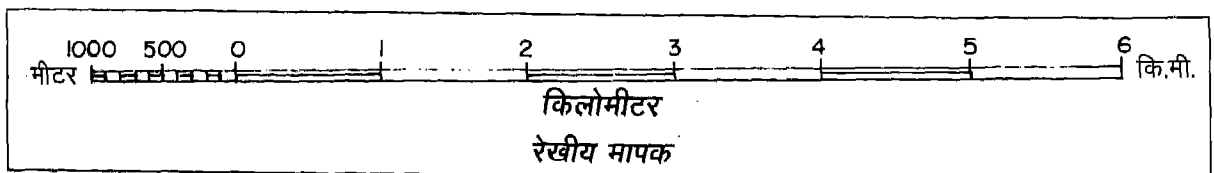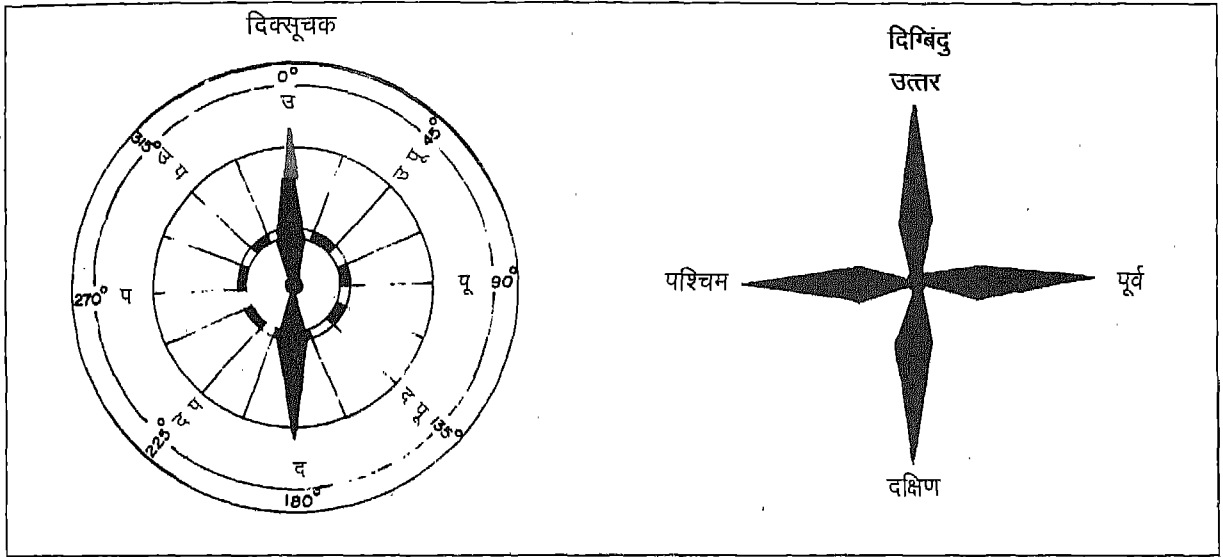
दिक्सूचक यंत्र

दिशा मानचित्र का एक अन्य महत्त्वपूर्ण भाग है। आगे के अध्यायों में किसी भी मानचित्र को देखें। मानचित्र में ऊपर दाईं ओर के भाग में आप तीर का चिह्न देख सकते हैं जिसके ऊपर **'उ'** अंकित है। इस तीर की नोक उत्तर दिशा को दर्शाती है जिसे उत्तरी दिशा सूचक रेखा कहते हैं। जब आप को उत्तर दिशा ज्ञात हो गई तो आप अन्य दिशाएँ जैसे पूर्व, पश्चिम और दक्षिण को भी आसानी से मालूम कर सकते हैं। क्या यह अत्यंत रोचक नहीं है?

मुख्य दिशाएँ ज्ञात करने के लिए एक बहुत साधारण से उपकरण का प्रयोग किया जाता है। क्या आप जानते हैं यह क्या है? यह **दिक्सूचक यंत्र** है। इसका आविष्कार सबसे पहले चीन निवासियों ने किया था। अब सभी इसका उपयोग करते हैं।

चार मुख्य **दिशाएँ** – उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम, **दिग्बिंदु** कहलाती हैं। यदि आपको मुख्य दिशाएँ ज्ञात हो जाएँ, तो आप इन मुख्य दिग्बिंदुओं के बीच स्थित स्थानों को आसानी से मालूम कर सकते हैं।

चिह्न किसी भी मानचित्र का तीसरा अवयव है। जब किसी क्षेत्र को मानचित्र पर दर्शाया जाता है तो उसमें विभिन्न आकृतियों जैसे पेड़, भवन, सड़क अथवा रेलवे लाइन को उनके वास्तविक रूप और आकार में दिखाना संभव नहीं होता। इस कठिनाई को दूर करने के लिए इन आकृतियों को विभिन्न चिह्नों द्वारा दिखाया जाता है। चिह्नों का प्रयोग स्थान की बचत करता है और एक अकेले मानचित्र में बहुत सी जानकारी दी जा सकती है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न रंगों का प्रयोग मानचित्र में किया जाता है। आप देखेंगे कि जलीय भागों को दिखाने के लिए केवल नीले रंग का प्रयोग किया जाता है चाहे वह महासागर हों, नदियाँ हों अथवा छोटी झीलें हों। यदि आप एक निश्चित स्थान पर जाना चाहते हैं जिसकी भाषा आप नहीं जानते तो उस क्षेत्र की आधारभूत जानकारी आपको उसके मानचित्र से मिल जाएगी। उस स्थान का भ्रमण करने में मानचित्र आपकी मदद करेगा। भारत में बहुत से देशों से पर्यटक आते हैं। इनमें से अधिकतर हमारी भाषाएँ नहीं जानते परंतु वे
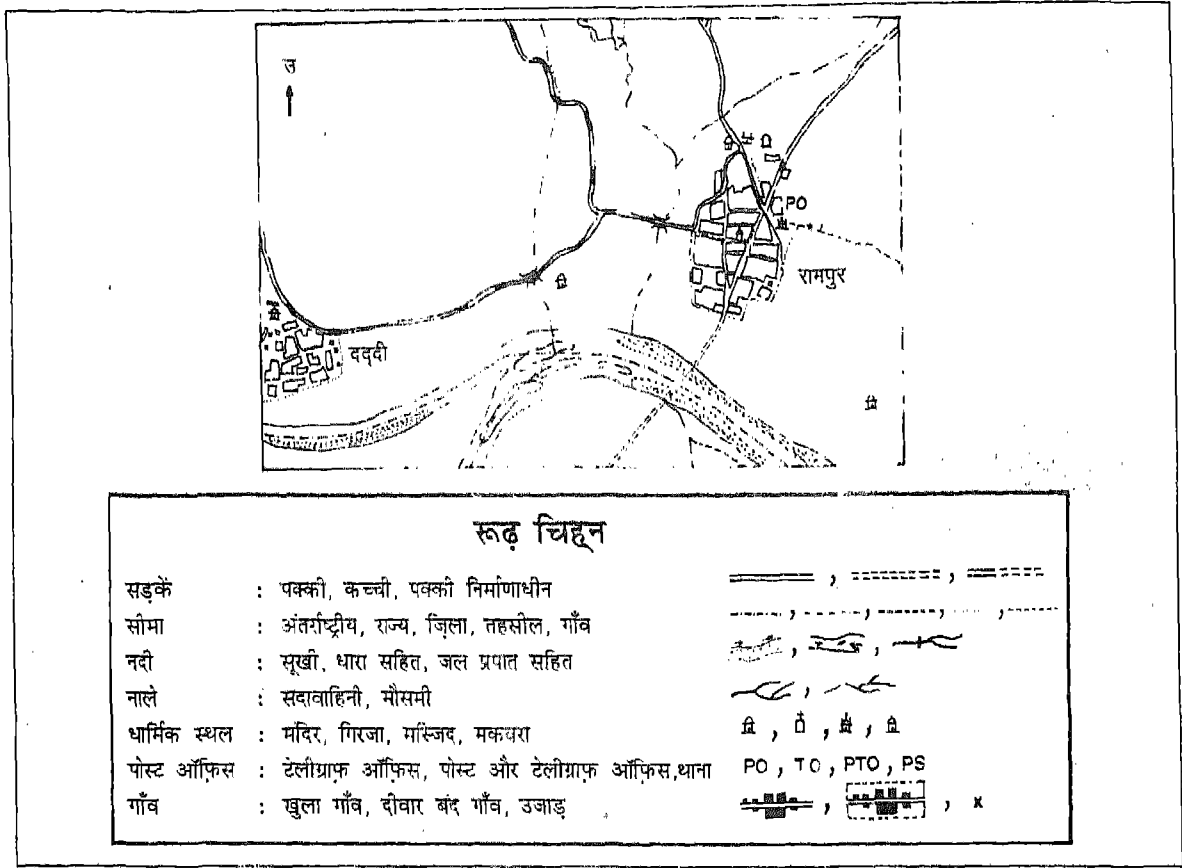
रूढ़ चिह्न तथा मानचित्र

हमारे देश के मानचित्रों से बहुत सी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यह कहना सही है कि मानचित्र की एक विश्वव्यापक भाषा है – एक ऐसी भाषा जिसे सभी पढ़ सकते हैं।

जैसा कि ऊपर उल्लेख है, पूरे संसार में विभिन्न प्रकार के मानचित्रों में प्रयोग किए जाने वाले चिह्नों को **रूढ़ चिह्न** कहते हैं। इन चिह्नों को समझ कर आप मानचित्र पढ़ने का प्रयास कर सकते हैं तथा अपने मित्रों को मानचित्र संबंधी कहानी बता सकते हैं।

मानचित्रों के प्रकार

मानचित्र विभिन्न प्रकार के होते हैं। मानचित्रों का वर्गीकरण मापक, दर्शाई गई सूचनाओं के प्रकार और उनके गुणों के आधार पर किया जाता है।

जैसा कि आप को इस अध्याय के प्रारंभ में बताया गया है। मापक के आधार पर मानचित्र बड़े तथा छोटे मापक के हो सकते हैं। जैसे संसार, महाद्वीप अथवा देशों के मानचित्र छोटे मापक वाले मानचित्रों की श्रेणी में आते हैं जबकि शहर, तहसील, ताल्लुका अथवा मौज़ा बड़े मापक के मानचित्रों की श्रेणी में आते हैं।

जब आप किसी भवन, विद्यालय अथवा खेल के मैदान का रेखाचित्र बनाते हैं तो उसे **मापचित्र** या **प्लान** कहते हैं। एक मापचित्र को माप के अनुसार सही बनाया जाता है और इसमें सही दिशाएँ भी दिखाई जाती हैं। आपको एक मानचित्र और मापचित्र में अंतर अवश्य समझ लेना चाहिए। एक मापचित्र में विभिन्न कमरों, उनकी लंबाई,

चौड़ाई और उनके बीच अंतर का विस्तृत विवरण दिखाया जा सकता है, जबकि एक मानचित्र में केवल महत्त्वपूर्ण आकृतियों को ही दिखाया जाता है। वास्तव में यही मानचित्र का सबसे बड़ा लाभ है। पृथ्वी पर सैकड़ों प्राकृतिक एवं मानव निर्मित आकृतियाँ हैं जो हमें भ्रमित कर सकती हैं। परंतु मानचित्र में इनमें से केवल कुछ को ही दिखाया जाता है।.

कुछ मानचित्रों में किसी विशिष्ट सूचना को दर्शाया जाता है जिसे हम जानना चाहते हैं। वर्षा मानचित्र, सड़क मानचित्र, पर्यटक स्थलों के मानचित्र, स्थलाकृति मानचित्र आदि इस प्रकार के मानचित्र हैं। इन मानचित्रों को **विषयक मानचित्र** कहते हैं।

पिछले कई दशकों में प्राचीन कालीन मानचित्रों से लेकर अब तक के मानचित्रों के बनाने की तकनीक में अनेक परिवर्तन हुए हैं। आजकल मानचित्रों को कंप्यूटर से बनाया जाता है। कंप्यूटर द्वारा निर्मित मानचित्र न केवल स्पष्ट होते हैं बल्कि बिल्कुल ठीक भी होते हैं। आप स्वयं देखें कि तकनीकी विकास ने किस प्रकार मानचित्र की गुणवत्ता को सुधारा है।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए

(1) ग्लोब मानचित्र से किस प्रकार भिन्न है?

(2) उन परिस्थितियों को सूचीबद्ध कीजिए जिनमें ग्लोब मानचित्र से कहीं अधिक उपयोगी है।

(3) एक मापचित्र मानचित्र से किस प्रकार भिन्न है?

(4) ग्लोब की क्या कमियाँ हैं?

2. रिक्त स्थानों को उचित शब्द से भरिए

(1) ग्लोब पृथ्वी की .... को सही दिखाता है। (आकृति/आकार)

(2) पृथ्वी की धुरी के अंतिम बिंदु .... कहलाते हैं। (ध्रुव/विषुवत वृत्त)

(3) धरातल पर वास्तविक दूरी तथा मानचित्र पर उसी दूरी के बीच अनुपात को.................. कहते हैं। (मापक/दिक्सूचक)

3. सही जोड़े बनाइए

(1)	दिक्सूचक	**(क)**	तीन-आयामी उपकरण
(2)	ग्लोब	**(ख)**	दूरियाँ
(3)	मानचित्र	**(ग)**	दिशाएँ
(4)	मापक	**(घ)**	दो-आयामी उपकरण

करने के लिए कार्य

- अपनी कक्षा का एक मानचित्र बनाइए। एक से छह तक **डेस्कों की पंक्तियों को उत्तर से दक्षिण दिशा** (↕) में दिखाइए और क से च तक की पंक्तियों को **पूर्व से पश्चिम** (↔) की ओर दर्शाइए। यह सब इस प्रकार करें और समझें कि एक से छह तक डेस्कों की पंक्तियाँ देशांतर रेखाएँ हैं और क से च तक के डेस्कों की पक्तियाँ अक्षांश रेखाएँ हैं। अपने दोस्तों के बैठने के स्थानों को मालूम कीजिए। अपने दोस्तों के बैठने के स्थानों को मालूम करने में पंक्तियाँ (1 से 6) तथा (क से च) आपकी किस प्रकार सहायता करती हैं।
- अपने विद्यालय का एक रेखाचित्र बनाइए तथा उसमें अपनी कक्षा का कमरा, अपनी सीट और बगीचे को दिखाइए।
- दिक्सूचक के अंक-पट्ट (डायल) का चित्र बनाकर उसमें प्रमुख दिशाओं को दर्शाइए।

3

पृथ्वी पर स्थानों की स्थिति दिखाना

जब आप किसी नए स्थान पर जाते हैं तो कुछ प्रमुख आकृतियों को देखते हैं। यह एक पेड़, नदी अथवा पहाड़ी हो सकती है। ये पास-पड़ोस के अन्य स्थानों की स्थिति जानने में आपकी सहायता करते हैं। ऐसी आकृतियों को **भू-चिह्न** अथवा **संदर्भ बिंदु** कहते हैं। बिना संदर्भ के हमारे इतने बड़े ग्रह पर स्थानों की स्थिति जानना बहुत कठिन है।

दो ध्रुव और विषुवत वृत्त

गोलाकार पृथ्वी का कोई किनारा या कोना नहीं है जहाँ से हम किसी स्थान की दूरी नापना शुरू करें। परंतु पृथ्वी के धरातल पर दो संदर्भ बिंदु हैं। ये दो बिंदु हैं – उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव। ये पृथ्वी के अक्ष के दो सिरे अथवा अंतिम बिंदु हैं। किसी स्थान की स्थिति ज्ञात करने के लिए ये दोनों बिंदु आधारभूत संदर्भ बिंदुओं का कार्य करते हैं। यदि आप अपने सामने एक ग्लोब को रखें तो इसका शीर्ष भाग उत्तरी ध्रुव होगा और इसका निचला भाग दक्षिणी ध्रुव होगा। इसे धीरे से घुमाइए और ग्लोब के मध्य भाग में पश्चिम से पूर्व की ओर कुछ बिंदुओं की शृंखला को अंकित कीजिए। यदि आप इन बिंदुओं को मिला दें तो यह ग्लोब के चारों ओर एक वृहत वृत्त बन जाएगा। यह वृत्त पृथ्वी पर बनाए जाने वाले संभावित वृत्तों में सबसे बड़ा होगा। इसे विषुवत वृत्त कहते हैं। यह ग्लोब को दो बराबर भागों में विभाजित करता है। इसका उत्तरी आधा भाग उत्तरी गोलार्द्ध तथा दक्षिणी आधा भाग दक्षिणी गोलार्द्ध कहलाता है। विषुवत वृत्त एक काल्पनिक वृत्ताकार रेखा है तथा पृथ्वी पर स्थानों की स्थिति ज्ञात करने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण संदर्भ बिंदु है। आप जानते हैं कि वृत्त में 360° होते हैं। यदि आप विषुवत वृत्त से ध्रुव की ओर चलें तो आप केवल एक चौथाई भाग अर्थात एक वृत्त के 90° ही तय कर पाएँगे। यही कारण है कि उत्तरी ध्रुव विषुवत वृत्त के उत्तर में 90° पर स्थित है। हम उत्तरी ध्रुव का उल्लेख साधारणतया 90° उ. के रूप में करते हैं। इसी तरह से दक्षिणी ध्रुव विषुवत वृत्त के दक्षिण में 90° पर स्थित है।

अक्षांश (समानांतर) रेखाएँ

काल्पनिक रेखाओं का एक समूह जो पृथ्वी के चारों ओर पूर्व से पश्चिम दिशा में विषुवत रेखा के समानांतर खींचा जाता है (चित्र देखिए) **अक्षांश रेखा** कहलाता है। क्योंकि ये सभी रेखाएँ विषुवत वृत्त तथा एक दूसरे के समानांतर होती हैं, इसलिए इन्हें समानांतर रेखाएँ भी कहा जाता है।

विषुवत वृत्त से उत्तर या दक्षिण दिशा में स्थित किसी स्थान की कोणीय दूरी को अक्षांश

कहते हैं। यह कोण पृथ्वी के केंद्र पर बनता है। विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर अक्षांश वृत्त छोटे होते हैं। ध्रुव पर यह मात्र एक बिंदु होता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, विषुवत वृत्त की उत्तरी एवं दक्षिणी दिशा में 1° के अंतराल से खींचे जाने पर 90-90 अक्षांश वृत्त होते हैं।

विषुवत वृत्त 0 अंश के अक्षांश को प्रदर्शित करता है। किसी प्रकार के भ्रम से बचने के लिए अक्षांश वृत्त के मान के साथ उत्तरी या दक्षिणी शब्द लिखना आवश्यक है। उदाहरण के लिए केरल राज्य में स्थित अर्णाकुलम तथा तंज़ानिया देश का लिंडी नगर 10° अक्षांश वृत्तों के निकट स्थित है। लेकिन अर्णाकुलम उत्तरी गोलार्द्ध में है जबकि लिंडी दक्षिणी गोलार्द्ध में है। इसलिए अर्णाकुलम के लिए 10° उ. और लिंडी के लिए 10° द. अक्षांश लिखना आवश्यक है। आप ध्रुव से
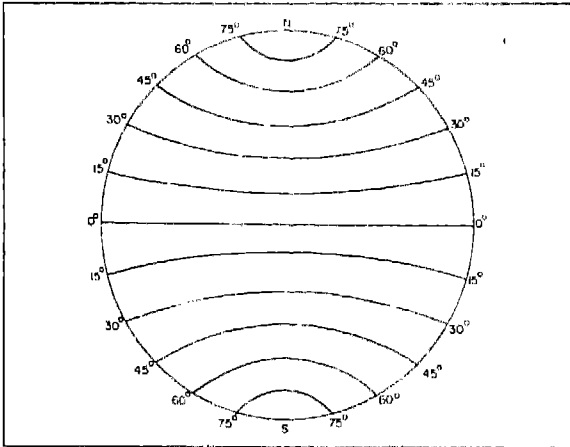
अक्षांश वृत्त

ध्रुव तक 1° के अंतराल पर खिंचे अक्षांशों की गणना कर सकते हैं।

प्रमुख अक्षांश वृत्त और ताप कटिबंध

विषुवत वृत्त (0°), उत्तरी ध्रुव (90° उ.) तथा दक्षिणी ध्रुव (90° द.) के अतिरिक्त चार महत्त्वपूर्ण अक्षांशीय वृत्त और भी हैं। ये हैं – (1) कर्क वृत्त (23° 30´उ.) (2) मकर वृत्त (23° 30´द.) (3) आर्कटिक वृत्त (66°30´ उ.) और (4) अंटार्कटिक वृत्त (66°30´द.)।
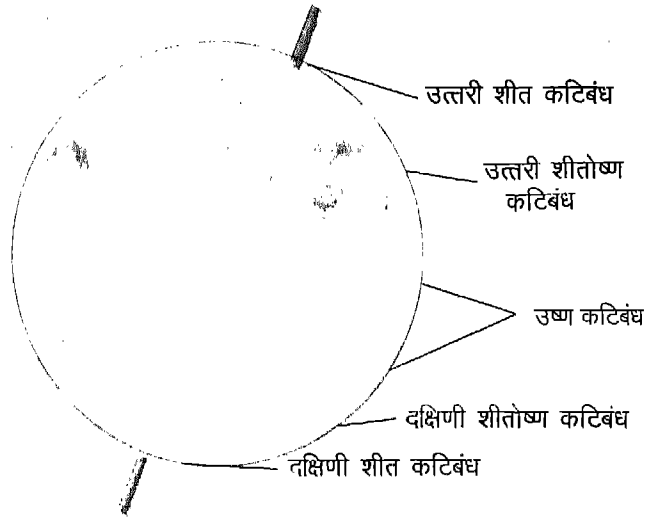
प्रमुख अक्षांश वृत्त और ताप कटिबंध

कर्क वृत्त इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि 21 जून को सूर्य ठीक इस अक्षांश के ऊपर होता है। ऐसा ही दृश्य 22 दिसंबर को **मकर वृत्त** पर होता है। ये दोनों अक्षांश **उष्ण कटिबंध** की बाहरी सीमा बनाते हैं। यह कटिबंध विषुवत वृत्त के दोनों ओर स्थित है। कर्क वृत्त भारत के लगभग मध्य से गुज़रता है। यह हमारी जलवायु को बहुत सीमा तक प्रभावित करता है।

आर्कटिक वृत्त उत्तरी **शीत कटिबंध** की सीमा रेखा बनाता है। यह कटिबंध बहुत ठंडा है और उत्तरी गोलार्द्ध के **शीतोष्ण कटिबंध** के उत्तर में स्थित है। ठीक इसी तरह से **अंटार्कटिक वृत्त** दक्षिणी **शीत कटिबंध** को दक्षिणी गोलार्द्ध के **शीतोष्ण कटिबंध** से अलग करता है। उष्ण कटिबंध विश्व का सबसे अधिक गर्म भाग है। अधिकतर मरुस्थल इसी भाग में स्थित हैं। परंतु शीतोष्ण

दोनों गोलार्द्धों में 1 डिग्री (°) के अंतराल पर 90-90 अक्षांश वृत्त होते हैं।
प्रत्येक अंश के 60 बराबर भाग किए जाते हैं और प्रत्येक भाग को मिनट (′) कहते हैं।
प्रत्येक मिनट को 60 बराबर भागों में विभाजित किया जाता है और प्रत्येक भाग को सैकंड (″) कहते हैं।

कटिबंध न तो अधिक गर्म है और न ही अधिक ठंडा। शीत कटिबंध अत्यधिक ठंडा है।

देशांतर रेखाएँ

विषुवत वृत्त की तरह, एक अन्य काल्पनिक रेखा है जो पृथ्वी को पूर्वी और पश्चिमी गोलार्द्ध में विभाजित करती है। इस काल्पनिक रेखा को
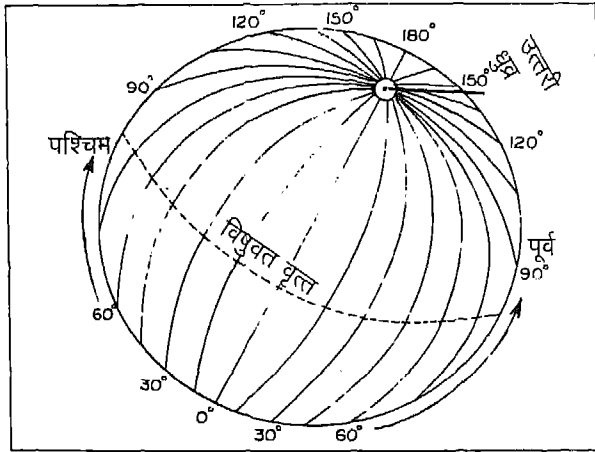
मध्याह्न रेखाएँ
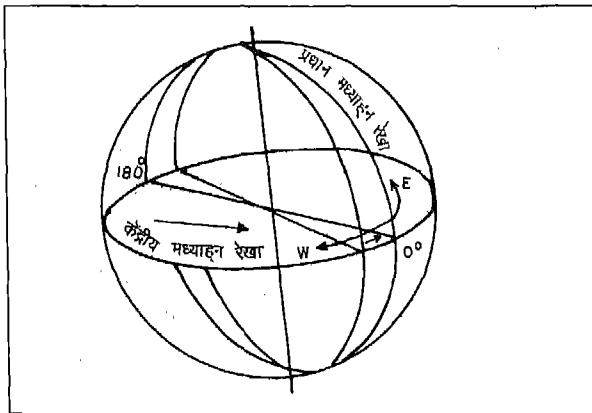
देशातंर रेखाएँ

प्रधान मध्याह्न रेखा कहते हैं। पृथ्वी पर उत्तर-दक्षिण दिशा में खिंची काल्पनिक रेखाओं के समूह को **देशांतर रेखाएँ** कहते हैं। ये रेखाएँ एक दूसरे के समानांतर नहीं होतीं और ध्रुवों पर मिल जाती हैं। ग्लोब पर आप देख सकते हैं कि ये रेखाएँ अर्ध वृत्त बनाती हैं। इन्हें भी 1° अंतराल पर खींचा जाता है। ये देशांतर रेखाएँ और अक्षांश वृत्त एक जाल का निर्माण करते हैं जिसे **ग्रिड** कहते हैं। इन दो रेखाओं के समूह अर्थात वृत्त और देशांतर रेखाओं की सहायता से हम पृथ्वी पर किसी भी स्थान की स्थिति मालूम कर सकते हैं। अक्षांश और देशांतर रेखाएँ दर्शाने वाले चित्र से आप उनकी समरूपता और उनके अंतर का तुलनात्मक चार्ट बना सकते हैं।

अक्षांश वृत्तों की तरह न होकर देशांतर रेखाओं की लंबाई समान होती है, परंतु ये एक दूसरे के समानांतर नहीं होतीं। जब हम विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर जाते हैं तो दो देशांतर रेखाओं के बीच की दूरी कम होती जाती है। विश्व भर में सर्वसम्मति से यह निश्चित किया गया कि लंदन शहर के निकट ग्रीनिच वेधशाला से गुज़रने वाली देशांतर रेखा प्रधान मध्याह्न रेखा मानी जाएगी। प्रधान मध्याह्न रेखा को 0° माना गया है। इस देशांतर रेखा के पूर्व में पड़ने वाले क्षेत्रों को पूर्वी गोलार्द्ध और इसके पश्चिम में स्थित क्षेत्रों को पश्चिमी गोलार्द्ध कहते हैं।

प्रधान मध्याह्न रेखा के दोनों ओर 1° के अंतराल पर खींची गई 180 देशांतर रेखाएँ हैं। किसी भ्रम से बचने के लिए पूर्वी गोलार्द्ध और पश्चिमी गोलार्द्ध की देशांतर रेखाओं के साथ क्रमशः 'पू.' तथा 'प.' शब्द लिखा जाता है।

हम किस गोलार्द्ध के निवासी हैं? आप अब ज्ञात कर सकते हैं कि पेरिस, मास्को और सिडनी किन गोलार्द्धों में स्थित हैं।

विश्व के मानचित्र में सिंगापुर की स्थिति मालूम कीजिए। यह विषुवत वृत्त के निकट स्थित है। इसके पश्चिम तथा पूर्व स्थित महासागरों के नाम बताइए।
इसकी स्थिति जानने का दूसरा तरीका है इसकी देशांतर रेखा जो 104° पू. है।
अफ्रीका में स्टेनले जलप्रपात की स्थिति ज्ञात कीजिए। इसका अक्षांश 0° तथा देशांतर 25° पू. है।

देशांतर रेखाएँ और समय

यदि आपके पास घड़ी न हो तो क्या आप समय बता सकते हैं? हज़ारों वर्ष पहले घड़ी, कैलेण्डर तथा टेलीविजन नहीं थे। प्राचीन कालीन व्यक्तियों के लिए सूर्य उनके जीवन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। वे आकाश में सूर्य की गति को निहारा करते थे। पृथ्वी अपने अक्ष पर एक चक्कर लगाने में लगभग 24 घंटे का समय लेती है। इसका अर्थ हुआ कि पृथ्वी 24 घंटे में 360° घूम जाती है। इस प्रकार प्रत्येक 15° को पूरा करने में यह लगभग
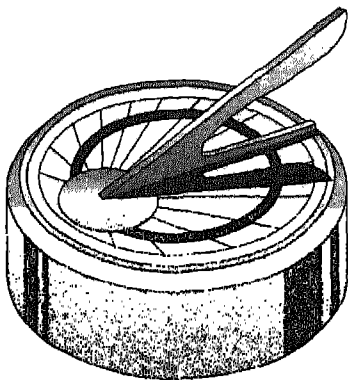
धूप-घड़ी

एक घंटे का समय लेती है अथवा 4 मिनट का समय प्रत्येक 1 डिग्री को पूरा करने में लगता है। तदनुसार, पृथ्वी को प्रत्येक एक घंटे की अवधि के आधार पर 24 समय क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है। इसका अर्थ हुआ कि सूर्योदय और सूर्यास्त का समय प्रत्येक स्थान पर अलग-अलग होगा। प्रत्येक एक डिग्री देशांतर के पश्चात 4 मिनट के समय का अंतर होगा। परंतु पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व की ओर घूमने के कारण विभिन्न स्थानों पर दिन निकलने का समय भी भिन्न-भिन्न होता है। ग्रीनिच मध्याह्न रेखा के पूर्व में स्थित स्थानों पर सूर्योदय उन स्थानों की अपेक्षा पहले होगा जो प्रधान मध्याह्न रेखा के पश्चिम में स्थित हैं। अगर ग्रीनिच समय को आधार अथवा मानक समय मान लिया जाए तो ग्रीनिच के पूर्व में 15 डिग्री देशांतर पर स्थित स्थानों पर सूर्योदय ग्रीनिच समय से एक घंटा पहले होगा। इसी तरह से ग्रीनिच के पश्चिम में 15 डिग्री देशांतर पर स्थित स्थानों पर सूर्योदय ग्रीनिच समय से एक घंटे बाद होगा।

दिन का प्रारंभ सूर्योदय के साथ होता है और अंत सूर्यास्त के साथ होता है। किसी वस्तु की परछाई समय जानने में हमारी सहायता करती है। यह परछाई सुबह और शाम के समय सबसे लंबी होती है और दोपहर के समय सबसे छोटी होती है। जब आप किसी स्थान पर जाते हैं तो
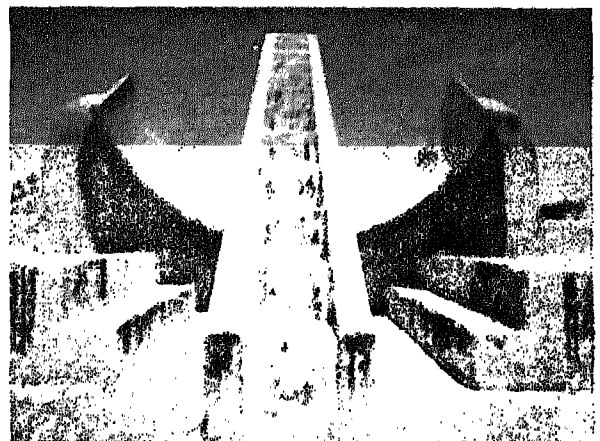
नई दिल्ली में स्थित जंतर-मंतर

वहाँ दोपहर के सूर्य को देखकर आप अपनी घड़ी उसके अनुसार मिला लेते हैं। उस समय दोपहर के 12 बजे होंगे। इस तरह से सूर्य की स्थिति को देखकर घड़ी को उसके अनुसार ठीक करने से आपको उस स्थान का **स्थानीय समय** ज्ञात हो जाएगा। **एक मध्याह्न रेखा** पर स्थित सभी स्थानों का **स्थानीय समय एक जैसा** होगा।

मानक समय

अब आप जानते हैं, विभिन्न मध्याह्न रेखाओं पर स्थित स्थानों का स्थानीय समय अलग-अलग होगा। इस अंतर के कारण लोगों को कार्य करने में कठिनाई अवश्य होगी। उदाहरण के लिए, हवाई जहाज़ और रेलगाड़ियाँ जो सैकड़ों देशांतरों को पार करती हैं, उनकी समय - सारणी तैयार करना अत्यंत कठिन हो जाएगा। भारत का देशांतरीय विस्तार 68° 7´ पू. से 97° 25´ पू. है। इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि हमारे देश में केंद्रीय देशांतर रेखा के स्थानीय समय को पूरे देश के लिए मानक समय मान लिया जाए। भारत में इस उद्देश्य के लिए 82° 30´ पू. की देशांतर रेखा को चुना गया। इसे मानक मध्याह्न रेखा कहते हैं। इस देशांतर रेखा के स्थानीय समय को सारे देश का मानक समय माना जाता है। इसको भारतीय मानक समय कहते हैं। ग्रीनिच का समय भारतीय मानक समय से 5 घंटे 30 मिनट पीछे है। पाकिस्तान में 75° पू. मध्याह्न रेखा को मानक मध्याह्न रेखा माना गया है। बांग्लादेश और श्रीलंका की मानक मध्याह्न रेखाएँ ज्ञात कीजिए।

विश्व के संदर्भ में अधिकतर ग्रीनिच (0°) समय का पालन किया जाता है जिसे ग्रीनिच मीन टाइम अर्थात ग्रीनिच माध्य समय कहते हैं। कुछ देशों का देशांतरीय विस्तार अधिक है। ऐसे देशों में एक से अधिक मानक समय मान लिए गए हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण रूस है जहाँ अनेक समय-क्षेत्र हैं।

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए

(1) पृथ्वी के धरातल पर कौन से दो आधारभूत संदर्भ बिंदु हैं? उनके नाम लिखिए।
(2) हम पृथ्वी पर सबसे बड़ा वृत्त कैसे बना सकते हैं?
(3) तीन ताप कटिबंधों का उनकी निश्चित सीमाओं के साथ नाम लिखिए।
(4) भारत की मानक मध्याह्न रेखा कौन सी है?
(5) स्थानीय समय और मानक समय में क्या अंतर है?

2. रिक्त स्थानों को सही भरिए

(1) कर्क वृत्त का मान..............है। (26° 30´ पू./55° 0´ प. /23° 30´ उ./ 45° 15´ प.)
(2) .... का मान 23° 30´ द. है। (कर्क वृत्त/आर्कटिक वृत्त/ अंटार्कटिक वृत्त/मकर वृत्त)
(3) 0° अक्षांश वृत्त को ....कहते हैं। (आर्कटिक वृत्त/विषुवत वृत्त/ प्रधान मध्याह्न रेखा/अंटार्कटिक वृत्त)

3. सही जोड़े बनाइए

(1)	शीतोष्ण कटिबंध	(क)	श्रीलंका और तंज़ानिया
(2)	उष्ण कटिबंध	(ख)	अंटार्कटिका और ग्रीनलैंड
(3)	शीत कटिबंध	(ग)	यूनाइटेड किंगडम और न्यूज़ीलैंड

करने के लिए कार्य

- पृथ्वी अपने अक्ष पर एक चक्कर को पूरा करने में लगभग 24 घंटे का समय लेती है। यदि विषुवत वृत्त की लंबाई 40,000 किलोमीटर है तो पृथ्वी की प्रति घंटा गति की गणना कीजिए।
- भारत और आस्ट्रेलिया के मध्य सिडनी में एक क्रिकेट मैच खेला जा रहा है। सिडनी 151° पू. देशांतर पर स्थित है। यह मैच सिडनी के स्थानीय समय के अनुसार सुबह 10 बजे प्रारंभ होता है। भारतीय मानक समय के अनुसार हम इस मैच के प्रसारण को किस समय देख सकते हैं?
- भारत के चार राज्यों की राजधानियाँ दक्षिण की ओर कर्क वृत्त के अत्यंत निकट स्थित हैं। पश्चिम से पूर्व की ओर उनके नाम सही-सही लिखिए, और उन्हें भारत के रेखा मानचित्र में दिखाइए।
- पृथ्वी का अक्ष, वृहत वृत्त, कर्क वृत्त, मकर वृत्त, आर्कटिक वृत्त तथा अंटार्कटिक वृत्त दिखाते हुए पृथ्वी का एक चित्र बनाइए।
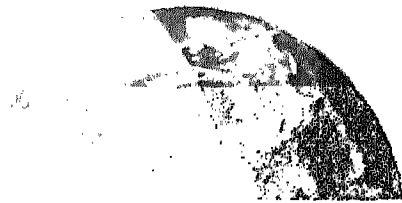
4

दिन और ऋतुएँ कैसे उत्पन्न होती हैं

आप पहले से ही जानते हैं कि अन्य ग्रहों की तरह पृथ्वी की भी दो गतियाँ हैं – घूर्णन और परिक्रमण। आइए पृथ्वी के घूर्णन और उसके प्रभाव के विषय में और अधिक जानकारी प्राप्त करें।

पृथ्वी कैसे घूमती है

एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक एक काल्पनिक रेखा खींचिए जो पृथ्वी के केंद्र से गुज़रती हो। यह काल्पनिक रेखा अक्ष कहलाती है। अक्ष का उत्तरी बिंदु (छोर) उत्तरी ध्रुव है। अक्ष का दक्षिणी बिंदु (छोर) दक्षिणी ध्रुव है। क्या आपने कभी लट्टू से खेला है? याद करें कि वह कैसे घूमता है? हमारी पृथ्वी भी लट्टू की तरह अपने अक्ष पर लगातार घूमती रहती है। इस गति को **घूर्णन** कहते हैं। पृथ्वी एक घूर्णन या चक्कर लगभग 24 घंटे में पूरा करती है। घूर्णन का यह समय **भू-दिवस** के नाम से जाना जाता है।

घूर्णन के कारण पृथ्वी का प्रत्येक भाग बारी-बारी से सूर्य का प्रकाश प्राप्त करता है। जैसा कि आप जानते हैं सूर्य का प्रकाश जीवधारियों के विकास और जीवन के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। पृथ्वी क्योंकि पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है इसलिए हमारा यह मानना गलत है कि सूर्य उदय होता है और डूबता है। इस दृश्य की तुलना आप रेल द्वारा यात्रा करते समय बिजली के खंबों, पेड़ों और घरों या खेतों के विपरीत दिशा में गति करने के अनुभव से कर सकते हैं। परंतु वास्तव में वे गति नहीं करते। कल्पना करें कि आप एक अंतरिक्ष केंद्र में हैं, आप देख सकते हैं कि सूर्य की किरणें ग्लोब के चारों ओर पड़ती हैं और ग्लोब के एक-एक भाग को प्रकाशित करती हैं। जब पृथ्वी घूमती है तो पृथ्वी का अग्रभाग सूर्य का प्रकाश प्राप्त करता है और उससे **दिन** का अनुभव होता है, जबकि दूसरा भाग सूर्य के प्रकाश से दूर अंधकार में रहता है। वह भाग **रात** का अनुभव करता है।

इस प्रयोग के लिए आपको आवश्यकता होगी –

(अ) ग्लोब

(ब) एक जलता हुआ लैंप

एक मेज़ पर ग्लोब और लैंप एक रेखा में रखिए।

लैंप जलाइए।

लैंप की रोशनी ग्लोब के जिस भाग को प्रकाशित करेगी, ग्लोब के उस भाग पर दिन होगा।

लैंप की रोशनी के पीछे वाले भाग पर अंधेरा होगा। उस हिस्से पर रात होगी।

क्या हम सौभाग्यशाली नहीं हैं कि हमारे यहाँ रात और दिन एक दूसरे के बाद होते हैं? दिन के समय हम कठिन परिश्रम करते हैं और रात में आराम कर सकते हैं।
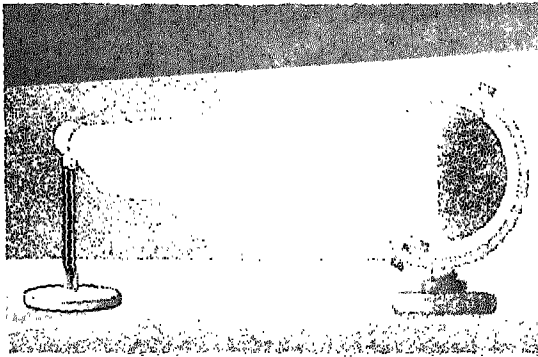
दिन और रात को दिखाने का प्रयोग

इस प्रयोग के लिए आपको चाहिए –

एक अंधेरा कमरा, पृथ्वी के रूप में एक ग्लोब, सूर्य के रूप में एक जलता हुआ लैंप।

ग्लोब पर एक बिंदु 'अ' चिह्नित कीजिए। इससे कुछ दूरी पर जलता हुआ टेबिल लैंप रखिए।

ग्लोब को इस तरह रखिए कि 'अ' बिंदु पूरे अंधेरे में चला जाए। इसका अर्थ हुआ 'अ' बिंदु **मध्यरात्रि** का अनुभव कर रहा है।

अब ग्लोब को बाएँ से दाएँ इस तरह घुमाइए कि बिंदु 'अ' रोशनी में प्रवेश कर जाए। बिंदु 'अ' के लिए यह **सुबह** है। ग्लोब को तब तक घुमाते रहिए जब तक 'अ' बिंदु रोशनी के सामने न आ जाए। बिंदु 'अ' के लिए यह **मध्याह्न** है।

ग्लोब को तब तक घुमाते रहिए जब तक कि 'अ' बिंदु अंधेरे में न आ जाए। अब यह 'अ' बिंदु के लिए **शाम** है।

इसी प्रकार पृथ्वी का प्रत्येक भाग मध्यरात्रि, सुबह, मध्याह्न और शाम का अनुभव करता रहता है।

पृथ्वी कैसे परिक्रमा करती है

पृथ्वी की दूसरी गति **परिक्रमण** कहलाती है। पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती हुई आगे की ओर गति करती है और सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है। इस गति में पृथ्वी एक निश्चित मार्ग अपनाती है। यह मार्ग पृथ्वी की **कक्षा** कहलाता है। यह मार्ग पूर्णतः एक वृत्त नहीं होता। यह लंबाई में कुछ बढ़ा हुआ है। यह बढ़ा हुआ गोला **दीर्घवृत्त** के रूप में जाना जाता है।

आप अपने से बड़ों की सहायता से धागे, पेंसिल और दो पिनों के द्वारा इस दीर्घवृत्त को खींच सकते हैं। आप के कला अध्यापक शायद आपकी सहायता कर सकते हैं। पृथ्वी के परिक्रमण के चित्र से आप इस दीर्घवृत्त की कल्पना कर सकते हैं।

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर अपना एक परिक्रमण पूरा करने में जितना समय लेती है उसे **एक वर्ष** कहते हैं। पृथ्वी 365 दिन और लगभग 6 घंटे में एक परिक्रमा पूरा करती है। सुविधा के लिए हम वर्ष में 365 दिन मानते हैं। अतिरिक्त 6 घंटे प्रत्येक चार वर्ष में 24 घंटे हो जाते हैं या एक अतिरिक्त दिन। हम यह अतिरिक्त दिन प्रत्येक चार वर्ष में फ़रवरी महीने में जोड़ते हैं। इसलिए प्रत्येक चार वर्ष बाद फ़रवरी का महीना 28 दिनों के स्थान पर 29 दिनों का होता है। इस निश्चित वर्ष को **लीप वर्ष** कहते हैं। लीप वर्ष चार से विभाज्य होता है। गणना करने का प्रयास करें कि 1901 से 2001 तक कितने अधिवर्ष (लीप वर्ष) थे।

पृथ्वी का अक्ष पृथ्वी की कक्षा के तल के पूर्णतः लंबवत नहीं है। यह लंबवत रेखा से $23\frac{1}{2}^{\circ}$ कोण पर झुकी हुई है जिसको आप आरेख में देख सकते हैं। इसके झुकाव के कारण पृथ्वी अपने तल पर $66\frac{1}{2}^{\circ}$ का कोण बनाती है।

घूर्णन की तरह पृथ्वी की परिक्रमण दिशा भी घड़ी की सुइयों के विपरीत दिशा में होती है, अर्थात पश्चिम से पूर्व। पृथ्वी के अपने अक्ष पर झुकाव के कारण एक गोलार्द्ध सूर्य के सामने पहले आता है और दूसरा गोलार्द्ध बाद में। इसीलिए

सूर्य

पृथ्वी का अक्ष तथा परिक्रमण पथ

मौसम संबंधी परिवर्तन होते हैं जिन्हें हम **ऋतुएँ** कहते हैं।
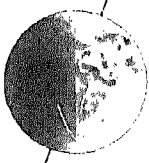
जब उत्तरी गोलाद्र्ध सूर्य के सामने होता है तो सूर्य की किरणें उत्तरी गोलाद्र्ध में सीधी और लंबवत पड़ती हैं। उन भागों में सूर्य का प्रकाश दिन के समय अधिक होता है। यह उत्तरी गोलाद्र्ध में **ग्रीष्मकाल** है। परंतु यही गोलाद्र्ध जब सूर्य की किरणों से दूर होता है तो सूर्य की किरणें वहाँ सीधी नहीं पहुँचतीं। उन क्षेत्रों में सूर्य का प्रकाश कम समय के लिए पहुँचता है। यहाँ पर **शीतत्र** की दशाएँ होती हैं।

सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाते समय पृ चार विशेष स्थितियों में आती है। ये परिवर्तनशी स्थितियाँ ऋतु चक्र के लिए उत्तरदायी हैं। इन चारों स्थितियों का अध्ययन बारी-बारी कर सकते हैं।

21 जून को उत्तरी गोलाद्र्ध सूर्य की ओर झु होता है। सूर्य की सीधी किरणें 23^0 30′ अक्षांश या **कर्क वृत्त** पर सीधी पड़ती हैं। इस f सूर्य की रोशनी इस गोलाद्र्ध में अधिकतम स के लिए प्राप्त होती है। इस स्थिति को **कर्क संक्रां** कहते हैं। इसी समय सूर्य की किरणें कर्कवृत्त लंबवत पड़ती हैं तथा अधिक ऊष्मा देती हैं। उत्तरी गोलाद्र्ध में ग्रीष्मकाल की स्थिति है।

पृथ्वी लगातार परिक्रमा करते हुए **23 सितं** की स्थिति में पहुँचती है तो **विषुवत वृत्त** सूर्य ठीक सामने होता है। इस तिथि को पूरे विश्व
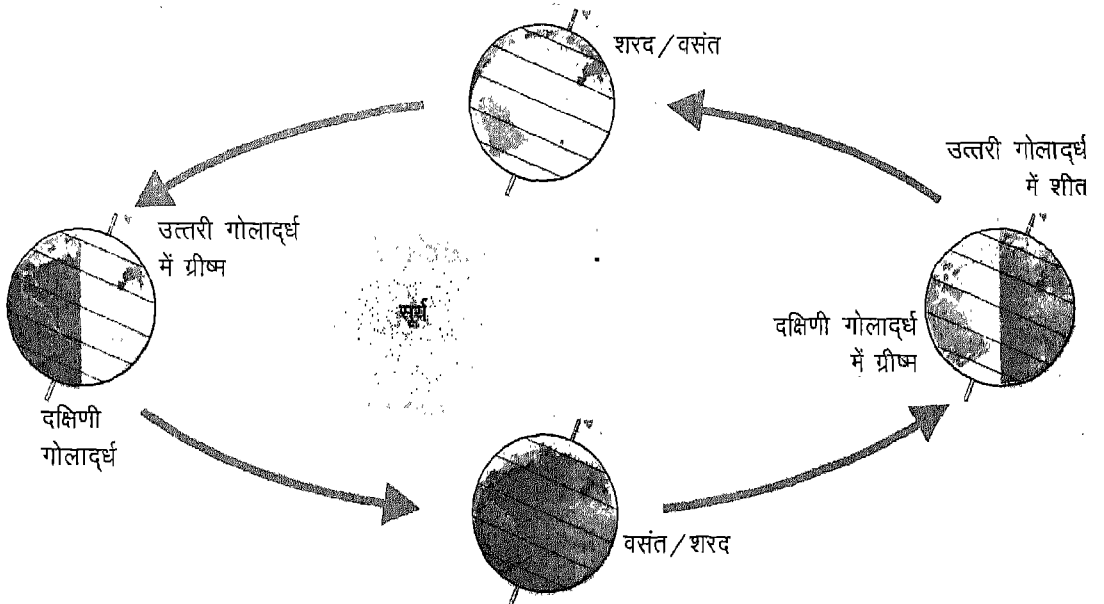
पृथ्वी की परिक्रमा तथा ऋतुएँ

दिन और रात बराबर होते हैं। आप कह सकते हैं कि इस तिथि को 12 घंटे का दिन और 12 घंटे की रात होती है। इसलिए इसे **विषुव** कहते हैं। 23 सितंबर एक विषुव है। इस समय क्योंकि शरद ऋतु होती है इसलिए इसे उत्तरी गोलाद्‌र्ध में **शरद विषुव** कहते हैं।

लगातार परिक्रमण से धीरे-धीरे दक्षिणी गोलाद्‌र्ध सूर्य के निकट आता जाता है और उत्तरी गोलाद्‌र्ध दूर होता जाता है। दक्षिणी गोलाद्‌र्ध में दिन के प्रकाश का समय बढ़ता जाता है। **22 दिसंबर** को सूर्य ठीक $23^{0}\ 30'$ दक्षिणी अक्षांश या **मकर वृत्त** के ऊपर होता है।

यह दक्षिणी गोलाद्‌र्ध में ग्रीष्म संक्रांति होती है। इसी दिन उत्तरी गोलाद्‌र्ध में सबसे छोटा दिन होता है और **मकर संक्रांति** कहलाता है।

पृथ्वी जैसे-जैसे आगे गति करती है, **21 मार्च** को **विषुवत वृत्त** फिर से सूर्य के सामने आ जाता है, और सूर्य ठीक इसके ऊपर होता है। इस दिन पुनः दिन और रात बराबर हो जाते हैं। इसे उत्तरी गोलाद्‌र्ध में **वसंत विषुव** कहते हैं।

अब आप जान गए होंगे कि संक्रांति और विषुव क्या है। आप यह भी जानते हैं कि उत्तरी गोलाद्‌र्ध की अपेक्षा दक्षिणी गोलाद्‌र्ध में ग्रीष्म और शीत संक्रांतियाँ अलग-अलग समय में होती हैं। इसकी व्याख्या करने का प्रयास कीजिए कि ऐसा क्यों होता है।

ध्रुवों पर 6 महीने तक की रात होती है।

ध्रुवीय क्षेत्रों में सूर्य कभी भी क्षितिज से बहुत ऊपर नहीं होता।

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए

(1) पृथ्वी का घूर्णन रात और दिन के बनने में कैसे उत्तरदायी है?

(2) लीप वर्ष कब होता है?

(3) दक्षिणी गोलाद्‌र्ध और उत्तरी गोलाद्‌र्ध में शीत और ग्रीष्म संक्रांतियाँ अलग-अलग समय में क्यों होती हैं?

(4) ज्ञात कीजिए कि प्रातः और संध्या के समय आपकी छाया लंबी और मध्याह्न में छोटी क्यों होती है। ऋतु परिवर्तन के संदर्भ में इसका क्या प्रभाव होता है?

2. रिक्त स्थान भरिए

(1) पृथ्वी का अक्ष पृथ्वी की कक्षा के तल पर ....का कोण बनाता है।

(2) दिन और रात ....तथा........................ को बराबर होते हैं।

(3) ....तथा ....गोलाद्‌र्धों में ऋतुएँ विपरीत होती हैं।

3. सही जोड़े बनाइए

(1)	पृथ्वी के अक्ष का झुकाव	**(क)**	दिन
(2)	पृथ्वी का परिक्रमण	**(ख)**	ऋतुएँ
(3)	पृथ्वी का घूर्णन	**(ग)**	वर्ष

करने के लिए कार्य

सूर्य हमारी पृथ्वी को कैसे प्रकाशित करता है?

इस प्रयोग के लिए आपको एक छोटी गेंद और टार्च की आवश्यकता होगी।

- एक हाथ में गेंद को पकड़िए। टार्च की रोशनी सीधी गेंद के मध्य भाग में डालिए।
- तेज़ रोशनी का एक वृत्त गेंद के मध्य में पड़ेगा। यह विषुवत वृत्त पर सूर्य की किरणों के चमकने जैसा ही है।
- अब गेंद के दूसरी ओर प्रकाश को देखिए। वहाँ पर प्रकाश बहुत बड़े भाग पर फैला हुआ है और बहुत धुँधला है। इससे आपको पता चल जाएगा कि ध्रुवीय क्षेत्र सूर्य की रोशनी कैसे प्राप्त करते हैं।

5

पृथ्वी के प्रमुख परिमंडल

हमारी पृथ्वी एक अनोखा ग्रह है। ऐसा क्यों है? क्योंकि अब तक की जानकारी के अनुसार केवल पृथ्वी पर ही जीवन पाया जाता है। आज तक हम किसी अन्य आकाशीय पिंड के विषय में नहीं जानते जिस पर जीवन हो। पृथ्वी के लगभग सभी भागों में जीवन पाया जाता है। यह जल, थल तथा वायु में भी पाया जाता है। इसने पृथ्वी को संपूर्ण सौरमंडल में अनोखा बना दिया है। पृथ्वी पर जीवन कैसे संभव हुआ है? इसका एक कारण यह है कि इसके धरातल पर **प्रचुर मात्रा में जल** है। इसके धरातल का दो-तिहाई से अधिक भाग महासागरों, सागरों, झीलों, नदियों तथा हिम-आवरण के रूप में जल से ढका हुआ है। प्रत्येक प्रकार का जीवन जल पर निर्भर है। संक्षेप में प्रत्येक जीवित प्राणी पर्याप्त मात्रा में जल से बना है।

पृथ्वी पर जीवन का प्रारंभ थल पर नहीं, बल्कि जल में हुआ था।

थल एक महत्त्वपूर्ण भाग है जो मानव से लेकर सूक्ष्मतम जीवों के विविध प्रकार के जीवन को बनाए रखता है। अधिकतर स्तनधारी जीवों का घर थल है।

जीवन के विकास के लिए वायु की उपस्थिति भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। पृथ्वी को चारों ओर से घेरे वायु के आवरण को **वायुमंडल** कहते हैं। यह वायु की सैकड़ों परतों से बना है और इसमें विभिन्न गैसों का मिश्रण है। इनमें से कुछ गैसें जीवन के लिए आवश्यक हैं। हमें जीवित रहने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। हमारी भाषा में ऑक्सीजन को प्राणवायु कहते हैं। इसी तरह से पेड़-पौधों को जीवित रहने के लिए कार्बन-डाईऑक्साइड चाहिए। वायु में अनेक अन्य गैसों के साथ नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और कार्बन-डाईऑक्साइड होती है। वायुमंडल में सबसे अधिक मात्रा में पाई जाने वाली प्रमुख गैस नाइट्रोजन है। वायुमंडल में इसकी उपस्थिति पेड़-पौधों और मानव सहित सभी जीवों के लिए महत्त्वपूर्ण है। वायुमंडल के संघटन को समझने के लए आप यहाँ दी गई सारणी का अध्ययन कर सकते हैं।

सारणी 5.1 वायुमंडल में विभिन्न गैसों का अनुपात

गैसें	अनुपात प्रतिशत में
नाइट्रोजन	78.1
ऑक्सीजन	20.9
आरगन	0.9
कार्बन-डाइऑक्साइड	0.03
जलवाष्प तथा अन्य	0.2

इस तरह से वायु, स्थल और जल पृथ्वी के तीन प्रमुख **परिमंडलों** का निर्माण करते हैं जहाँ जीवन पाया जाता है। वास्तव में, सभी प्रकार
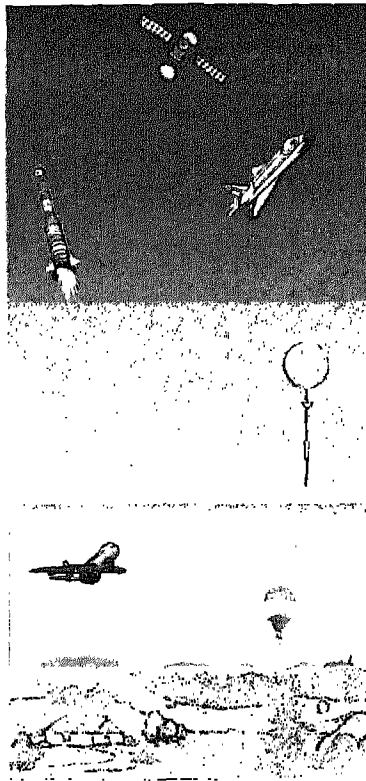
वायुमंडल की विभिन्न परतें

का जीवन एक ऐसे सीमित क्षेत्र में है जहाँ **वायु**, **जल** तथा **भूमि** एक दूसरे के संपर्क में आते हैं। यह सीमित क्षेत्र जिसमें पाया जाता है वह **जैवमंडल** कहलाता है। इस अध्याय में हम इन प्रमुख परिमंडलों और पृथ्वी पर जीवन के विषय में और अधिक अध्ययन करेंगे।

चंद्रमा का कोई वायुमंडल नहीं है। इसीलिए दिन अत्यधिक गर्म तथा रात अत्यधिक ठंडी होती है, जिसके कारण चंद्रमा पर जीवन नहीं पाया जाता।

वायुमंडल

वायु पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है। यह पृथ्वी के धरातल से 1600 किलोमीटर की ऊँचाई तक फैली हुई है। परंतु इस संपूर्ण फैलाव में इन गैसों का घनत्व एक समान नहीं है। जैसे-जैसे हम ऊपर की ओर जाते हैं वायु विरल और कम घनी होती जाती है। वास्तव में, पृथ्वी के धरातल के निकट वायु सबसे अधिक सघन होती है। क्या आप कभी किसी पहाड़ी स्थान (हिल स्टेशन) पर गए हैं। यदि आप किसी अधिक ऊँचाई वाले स्थान पर जाएँ तो आप **साँस लेने में कठिनाई** अनभुव कर सकते हैं। क्योंकि अधिक ऊँचाई पर वायु में ऑक्सीजन की मात्रा में कमी आपको बेचैन कर सकती है। वायुमंडल पृथ्वी के लिए
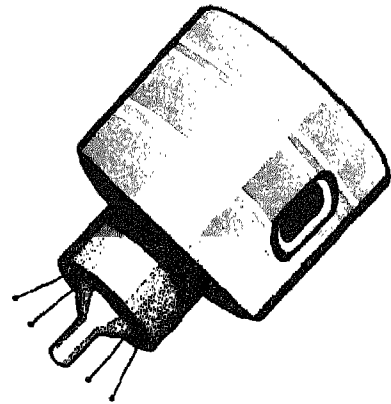
मौसम उपग्रह

एक कंबल का कार्य करता है। यह हमें गर्म बनाए रखने के लिए ऊष्मा को रोकता है तथा हानिकारक प्रभावों एवं सूर्य की तेज़ किरणों से बचाता है।

पेड़-पौधों को जीवित बने रहने के लिए वायुमंडल से कार्बन-डाईऑक्साड चाहिए। हम श्वास द्वारा कार्बन-डाइऑक्साइड छोड़ते हैं जिसे पेड़-पौधे ग्रहण करते हैं। पेड़-पौधे ऑक्सीजन छोड़ते हैं जिसे हम श्वास द्वारा ग्रहण करते हैं। इस प्रकार यह एक ऐसा सुंदर उत्क्रमण चक्र है जो इस ग्रह पर सुव्यवस्थित ढंग से कार्य कर रहा है।

स्थलमंडल

पृथ्वी की ऊपरी परत को **भू-पर्पटी** कहते हैं। भू-पर्पटी पृथ्वी की खाल जैसी है। इसकी कठोर

एशिया महाद्वीप को घेरे हुए तीन महासागरों के नाम बताइए।

एशिया में सबसे बड़ा देश कौन सा है?

एशिया में सबसे अधिक आबादी वाले देश का पता कीजिए।

एशिया कौन से दो गोलार्द्धों में स्थित है?

यूरोप की प्रमुख [illegible] यों के नाम पता कीजिए।

इस महाद्वीप के सबसे ऊँचे पर्वत शिखर का नाम बताइए।

यूरोप में कितने देश हैं?

इस अभ्यास के लिए एटलस देखिए।

सतह पृथ्वी के बाह्य ठोस धरातल का निर्माण करती है। इसे **स्थलमंडल** या *लिथोस्फ़ीयर* कहते हैं। यहाँ *लिथो* शब्द का अर्थ है पत्थर या शैल। पृथ्वी के धरातल का लगभग एक-तिहाई भाग थल है जबकि बाकी पानी से ढका हुआ है।

समुद्र तल से ऊपर उठे विस्तृत आकार के भूखंड को महाद्वीप कहते हैं। पृथ्वी पर सात महाद्वीप हैं। ये साधारणतः जल के विशाल भागों द्वारा एक दूसरे से पृथक हैं। ये महाद्वीप हैं – एशिया, यूरोप, अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया और अंटार्कटिका। यदि आप विश्व के मानचित्र को बड़े ध्यानपूर्वक देखें तो आपको पता चलेगा कि अधिकतर भूमि का भाग उत्तरी गोलार्द्ध में है।

महाद्वीप एशिया सबसे बड़ा महाद्वीप है। इस महाद्वीप में अनेक देश स्थित हैं। इस महाद्वीप के देशों की सूची बनाइए।

यूरोप एशिया के पश्चिम में है लेकिन इसे एशिया से कोई जलराशि पृथक नहीं करती। यूरोप और एशिया एक अविच्छिन्न भूखण्ड है। यूराल पर्वत तथा यूराल नदी इन दोनों महाद्वीपों को अलग करते हैं। ये दोनों महाद्वीप यूरेशिया नाम से पुकारे जाते हैं।
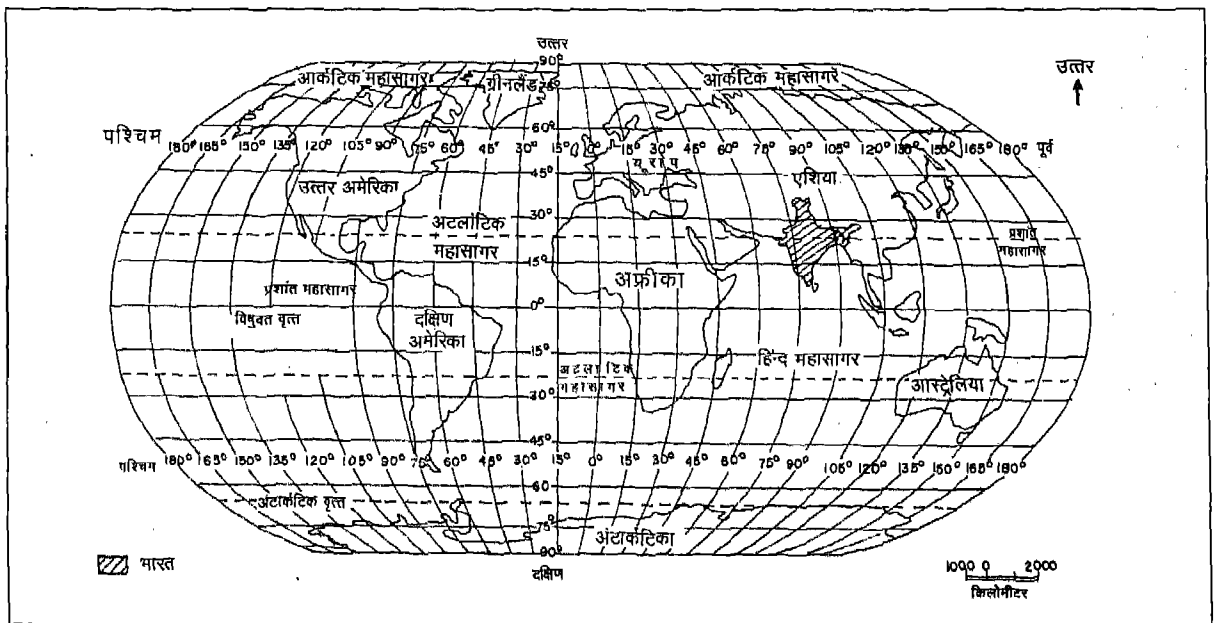
महाद्वीप और महासागर

दूसरा सबसे बड़ा महाद्वीप है **अफ्रीका**। आप अपनी एटलस में अफ्रीका के मानचित्र को देखिए। आप देखेंगे विषुवत रेखा इस महाद्वीप के लगभग आधे भाग से निकलती है, परंतु इसे दो बराबर भागों में नहीं बाँटती है। उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित भाग, दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थित भाग से अधिक बड़ा है।

उत्तरी अमेरिका तथा **दक्षिणी अमेरिका** महाद्वीप पनामा के आर-पार एक संकरे भू-भाग से जुड़े हुए हैं। पनामा की स्थिति जानने के लिए आप अपनी एटलस का उपयोग कर सकते हैं। उत्तरी अमेरिका उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। दक्षिण अमेरिका का अधिकांश भाग दक्षिणी गोलार्द्ध में है। इन महाद्वीपों के उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थित होने के कारण ही इन दोनों महाद्वीपों को क्रमशः उत्तरी अमेरिका एवं दक्षिणी अमेरिका कहते हैं।

आस्ट्रेलिया महाद्वीप दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थित है। सबसे छोटा महाद्वीप होने के कारण प्रायः इसे द्वीपीय महाद्वीप कहते हैं।

अंटार्कटिका दक्षिणतम महाद्वीप है। दक्षिणी ध्रुव इसी महाद्वीप के लगभग केंद्र में स्थित है। अपनी कक्षा में ग्लोब को देखिए। आपको यह जानकर बहुत अच्छा लगेगा कि **उत्तरी ध्रुव** एक महासागर में स्थित है जबकि **दक्षिणी ध्रुव** एक महाद्वीप के मध्य भाग में स्थित है। आकार में अंटार्कटिका आस्ट्रेलिया और यूरोप के सम्मिलित क्षेत्र से भी बड़ा है। परंतु इसके अंटार्कटिक वृत्त में स्थित होने के कारण यह पूरे वर्ष हिम की मोटी परतों से ढका रहता है। इसलिए इस महाद्वीप पर मानव का स्थाई रूप से बसना संभव नहीं है। हाल के वर्षों में अंटार्कटिका पर अनेक अभियान दल गए हैं। इस प्रकार के अभियानों में भारत ने भी भाग लिया है। अब हम इस महाद्वीप के विषय में पहले की अपेक्षा अधिक जानते हैं। भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा अंटार्कटिका पर स्थापित किए गए अन्वेषण केंद्रों के नाम ज्ञात कीजिए।

प्रमुख स्थलाकृतियाँ

प्रत्येक स्थान पर धरातल एक समान नहीं है। इसके कुछ भाग बहुत ऊँचे हैं और समुद्रतल से कई हज़ार मीटर ऊपर हैं। वे ऊबड़-खाबड़ और दुर्गम स्थलाकृतियाँ हैं। परंतु कुछ भाग ऐसे भी हैं जो सामान्य ऊँचाई वाले हैं और ये समुद्रतल से बहुत ऊँचे नहीं हैं। मुख्यतया इन विभिन्न स्थलाकृतियों को पर्वत, पठार और मैदान में वर्गीकृत किया जाता है। ये हमारी पृथ्वी की प्रमुख स्थलाकृतियाँ हैं।

पर्वत अथवा पहाड़ियाँ ऐसे अधिक ऊँचे उठे भूभाग हैं जो आस-पास के क्षेत्रों से ऊँचे होते हैं। जब ऐसी ऊँची पहाड़ियों की एक श्रृंखला बन जाती है तो उन्हें पर्वत श्रेणियाँ कहते हैं। ये अनवरत फैले हुए हो सकते हैं और समानांतर श्रेणियों की श्रृंखला में भी हो सकते हैं। समानांतर श्रेणियों के पर्वत का हिमालय सबसे अच्छा उदाहरण है। पर्वतों को उनकी आयु के अनुसार युवा अथवा प्राचीन कहा जाता है। आल्प्स तथा हिमालय युवा पर्वत हैं जबकि अरावली और एप्लेशियन प्राचीन पर्वत हैं। वर्षों से अपरदन होने के कारण ये प्राचीन पर्वत गोलाकार हो गए हैं और इनकी ऊँचाई भी कम हो गई है। अब ये ठूँठ मात्र रह गए हैं। ऊँची पहाड़ियों पर मानव बस्तियाँ बहुत घनी नहीं हैं क्योंकि ऐसे पर्वतीय क्षेत्रों में संचार के साधनों का निर्माण कठिन है।

पर्वत बनाना

आपको केवल बहुत मात्रा में कागज़ चाहिए।

अपनी मेज़ पर कागज़ों को रखिए।

अपने हाथों से कागज़ों को दोनों ओर से दबाइए।

कागज़ों में मोड़ पड़ जाएँगे और वे शिखर के रूप में ऊपर उठ जाएँगे।

आपने एक पर्वत बना लिया है।

इसी प्रकार की प्रक्रिया द्वारा हिमालय तथा आल्प्स पर्वतों का निर्माण हुआ।
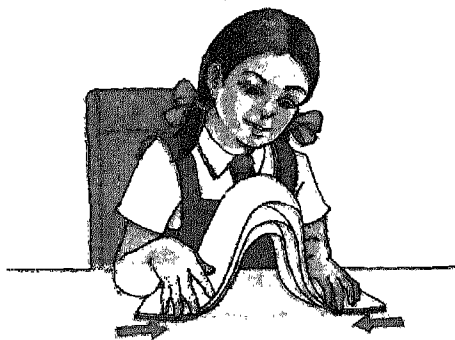
पर्वत बनाना

ग्लोब अथवा संसार के मानचित्र से आप अन्य महाद्वीपों में प्रमुख पर्वत श्रेणियों को ज्ञात कर सकते हैं।

पठार सामान्य रूप से ऊँचे उठे हुए वे भूभाग हैं जो ऊपर से लगभग समतल होते हैं। वे प्रायः टेबल अथवा मेज़ के समान होते हैं इसलिए इन्हें टेबल लैंड भी कहा जाता है। पठार आस-पास के क्षेत्रों से एकदम ऊपर उठे हुए होते हैं। ये हज़ारों वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हुए हो सकते हैं। लद्दाख और दक्कन पठार हैं। विभिन्न महाद्वीपों में स्थित संसार के प्रमुख पठारों की सूची बनाइए। तिब्बत का पठार बहुत ऊँचा है। यह विश्व में सबसे ऊँचा पठार है, इसलिए इसे 'संसार की छत' कहा जाता है। पठार सामान्य जनसंख्या वाले क्षेत्र हैं। यहाँ यातायात इतना कठिन नहीं है जितना कि पहाड़ी क्षेत्रों में।

मैदान निचले तथा अपेक्षाकृत समतल भूभाग होते हैं। ये समुद्रतल से बहुत ऊँचे नहीं होते। आपको प्रायः मैदान समुद्रतटों अथवा नदियों के आस-पार मिलेंगे। पर्वतों से निकलते हुए नदियाँ भारी मात्रा में गाद अथवा कीचड़ और बालू बहाकर लाती हैं। नदियाँ इन पदार्थों को बहाकर समुद्र तक ले जाती हैं तथा समुद्रतट के पास अथवा अपने किनारों के पास जमा कर देती हैं। अंटार्कटिका को छोड़कर सबसे बड़े मैदान प्रायः सभी महाद्वीपों की नदी घाटियों में पाए जाते हैं। नदियों द्वारा जमा किए गए पदार्थों में बालू, गाद और चिकनी मिट्टी होती है। इसलिए मैदान काफी उपजाऊ बन जाते हैं। पूरे संसार में कृषि का विकास ऐसे ही मैदानों में हुआ। उत्तर भारत का मैदान इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। मालूम कीजिए कि कौन सी नदियाँ इस मैदान को बनाने के लिए उत्तरदायी हैं।

साधारणतः मैदान बहुत उपजाऊ होते हैं। यातायात के साधनों के जाल का निर्माण यहाँ आसान होता है। इसलिए ये मैदान संसार में सबसे घनी जनसंख्या वाले क्षेत्र हैं।

जलमंडल

हमारी पृथ्वी सौभाग्यशाली है कि इस पर विशाल जलखंड हैं। वास्तव में हमारी पृथ्वी के धरातल का दो-तिहाई भाग जल से ढका हुआ है। महासागर, सागर,झीलें और नदियाँ विभिन्न जल समूह हैं। ये सब मिलकर **जलमंडल** का निर्माण करते हैं।

महासागर विशाल विस्तार वाले जलीय भाग को कहते हैं। महाद्वीपों की तरह न होकर सभी

महासागर एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। पृथ्वी पर चार प्रमुख महासागर हैं – प्रशांत महासागर, अटलांटिक महासागर, हिंद महासागर और आर्कटिक महासागर। पृथ्वी के धरातल के लगभग 71 प्रतिशत भाग पर महासागर फैले हुए हैं। जलमंडल में अंतःस्थलीय सागर, नदियाँ तथा झीलें भी सम्मिलित हैं।

प्रशांत महासागर सबसे बड़ा और गहरा महासागर है। पृथ्वी का सबसे गहरा भाग मैरियाना खाई (11022 मीटर) है जो प्रशांत महासागर में स्थित है। मानचित्र में उन महाद्वीपों को ज्ञात कीजिए जो इस महासागर की सीमा बनाते हैं।

अटलांटिक महासागर अंग्रेज़ी के अक्षर 'एस' के समान दिखाई देता है। यह पश्चिम में उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका तथा पूर्व में यूरोप और अफ्रीका से घिरा हुआ है।

हिंद महासागर अफ्रीका, एशिया और आस्ट्रेलिया महाद्वीप से घिरा हुआ है। इस महासागर का नाम प्राचीन काल में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भारत के महत्त्व को दर्शाता है।

आर्कटिक महासागर के मध्य में उत्तरी ध्रुव है। वर्ष के अधिकांश समय इस महासागर का जल जमा हुआ होता है। इसलिए यह व्यापार तथा नौकायन के लिए अधिक उपयुक्त नहीं है।

समुद्री तटरेखा सीधी अथवा कटी-फटी हो सकती हैं। कटी-फटी तटरेखाएँ पोताश्रयों अथवा बंदरगाहों को विकसित करने के लिए सहायक होती हैं। इसलिए ऐसे तटों पर बहुत से बंदरगाह अथवा पोताश्रय विकसित हो जाते हैं। इस प्रकार, व्यापार अर्थात वस्तुओं के निर्यात और आयात की दृष्टि से तटरेखा महत्त्वपूर्ण है।

जैवमंडल

हमने अब तक स्थलमंडल, जलमंडल और वायुमंडल की चर्चा की है। आइए, अब हम जैवमंडल की चर्चा करें। अंग्रेज़ी में **बायो** शब्द का अर्थ है जीवन। इसलिए इसे **जैवमंडल** या जीवन-क्षेत्र कहते हैं। धरातल पर यह एक **रिम** (हाल) के समान सीमित क्षेत्र है जहाँ भूमि, वायु और जल एक दूसरे के संपर्क में आते हैं। पृथ्वी पर संपूर्ण प्रकार का जीवन इसी क्षेत्र तक सीमित है। यह समुद्र तल से केवल कुछ ही किलोमीटर नीचे तथा ऊपर तक होता है। इस परिमंडल में जीव-जंतु, पेड़-पौधे और सूक्ष्म जीवाणु पाए जाते हैं।

पृथ्वी की उत्पत्ति के समय उस पर किसी प्रकार का जीवन नहीं था।

सबसे पहले वनस्पति समुद्रों में उत्पन्न हुई और तत्पश्चात स्थल पर।

पेड़-पौधे अपने लिए तथा मानव सहित सभी जीवधारियों के लिए सूर्य की किरणों से भोजन का निर्माण करते हैं।

एक प्रकार से हम सभी अपने आपको जीवित रखने के लिए पेड़-पौधों पर निर्भर करते हैं।

जैवमंडल में जीवों का आकार सूक्ष्म जीवाणु से लेकर विशालकाय हाथी तक है। वैज्ञानिकों ने मोटे तौर पर इन्हें दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया है – **प्राणि-जगत** और **वनस्पति-जगत**। हम मानव प्राणि-जगत के अत्यंत महत्त्वपूर्ण सदस्य हैं। इसलिए, हमें प्राणि-जगत और वनस्पति-जगत के बीच उस संतुलन को बनाए रखने के लिए भी कार्य करना चाहिए जो दोनों के जीवित रहने के लिए आवश्यक है।

पृथ्वी के सभी परिमंडल एक दूसरे पर निर्भर हैं। इसलिए प्रत्येक परिमंडल एक दूसरे को प्रभावित करता है। हम मानव पृथ्वी के विभिन्न परिमंडलों को प्रभावित करने और उन्हें बदलने वाले महत्त्वपूर्ण सदस्य हैं। अधिक बढ़ती हुई जनसंख्या को अधिक स्थान चाहिए। वनों को साफ़ करके स्थान प्राप्त किया जा सकता है। परंतु पेड़ों के काटने से प्रकृति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। इससे मृदा अपरदन बढ़ेगा। इससे नदियों की तलहटी में ढीली मिट्‌टी का जमाव होगा। इसके परिणामस्वरूप नदी की तलहटी ऊँची उठ जाएगी। अधिक वर्षा होने की स्थिति में नदी अपनी उथली तलहटी में अतिरिक्त पानी को नहीं रोक पाएगी। इससे नदी में बाढ़ आ जाएगी, जिससे लोगों को जान-माल का नुकसान होगा। जिस ऑक्सीजन को हम वृक्षों से प्राप्त करते हैं, पेड़ों के काटने से वह भी कम हो जाएगी। इससे, दूसरे प्रकार की समस्या उत्पन्न हो जाएगी। इसलिए हमें भूमि का उपयोग काफ़ी सोच-समझ कर करना चाहिए।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए

(1) पृथ्वी के चार परिमंडल कौन से हैं?

(2) वायुमंडल में सबसे अधिक मात्रा में पाई जाने वाली दो गैसों के नाम लिखिए।

(3) पृथ्वी के प्रमुख महाद्वीपों के नाम लिखिए।

(4) उत्तरी गोलार्द्ध को थल गोलार्द्ध और दक्षिणी गोलार्द्ध को जल गोलार्द्ध क्यों कहते हैं?

2. रिक्त स्थान भरिए

(1) दूसरा सबसे बड़ा महाद्वीप ....है। (अफ्रीका/उत्तरी अमेरिका/अंटार्कटिका)

(2) पृथ्वी पर ....महासागर सबसे गहरा महासागर है। (अटलांटिक/आर्कटिक/प्रशांत)

(3) कम ऊँचाई वाली समतल भूमि को..............कहते हैं। (पर्वत/पठार/मैदान)

3. सही जोड़े बनाइए

(1)	महाद्वीप	**(क)**	आर्कटिक
(2)	स्थलाकृति	**(ख)**	जैवमंडल
(3)	जीवन	**(ग)**	अंटार्कटिका
(4)	महासागर	**(घ)**	पठार

करने के लिए कार्य

- (क) पर्वत श्रेणी, (ख) पठार, (ग) मैदान का क्ले मॉडल बनाइए।
- एटलस को देखिए और महासागरों को उनके आकार के अनुसार क्रमबद्ध कीजिए।
- पर्वत शिखरों, दर्रों और घाटियों की तस्वीरें इकट्‌ठी कीजिए।
- कल्पना कीजिए कि आप एक पहाड़ी पर रहते हैं। अपने भोजन, घर और पहनावे का वर्णन करते हुए अपने मित्र को पत्र लिखिए।

6

भारत हमारा देश

भारत एक विशाल देश है। इसकी मुख्य भूमि का विस्तार 8° 4´ उ. से 37° 6´ उ. अक्षांश तथा 68° 7´ पू. से 97° 25´ पू. देशांतरों के बीच है। हमारे देश का क्षेत्रफल 32.8 लाख वर्ग किलोमीटर है। भारत के इस बड़े क्षेत्र में बहुत बड़ी संख्या में लोग निवास करते हैं। सन 2001 से हमारी जनसंख्या एक अरब से अधिक है। भारत में संसार की कुल जनसंख्या का 16 प्रतिशत भाग रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि संसार में औसतन प्रत्येक छठा व्यक्ति भारतीय है। प्राचीन काल से ही भारत का संसार में प्रमुख स्थान है। यह इस तथ्य से सिद्ध हो जाता है कि हिंदुस्तान के नाम पर एक महासागर का नाम हिंद महासागर पड़ा। हमारे यहाँ स्थलाकृतियों, जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति एवं वन्य जीवों में काफ़ी विविधता मिलती है। यह बहुत से धर्मों, भाषाओं, संस्कृतियों एवं परंपराओं की भूमि है। इस विविधता ने हमारी धरोहर को और अधिक समृद्ध बनाया है। संसार की प्राचीन सभ्यताओं में से एक भारत में फली-फूली थी। *आपने शायद* **सिंधु सभ्यता** के विषय में सुना होगा। अगली इकाई में आप इसके विषय में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे। भारत संसार के प्रमुख धर्मों में से बहुत से धर्मों की जन्म-स्थली रहा है। यह संसार में सबसे बड़ा प्रजातंत्र है। भारत एक अनोखा देश है क्योंकि यहाँ विभिन्न क्षेत्रों (प्राकृतिक और सामाजिक-सांकृतिक दोनों) में विविधता पाई जाती है। भारत अपनी सहिष्णुता की भावना के लिए जाना जाता है। हम सभी अपनी इस धरोहर पर गर्व करते हैं।

संसार और भारत

यदि आप ग्लोब को देखें तो आपको पता चलेगा कि भारत उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। ऐसा क्यों? **कर्क वृत्त** (23° 30´ उ.) हमारे देश के लगभग मध्य से गुज़रता है। यह भारत को लगभग दो समान भागों में विभाजित करता है। कर्क वृत्त के उत्तर में स्थित भागों को **उपोष्ण** तथा इसके दक्षिण में स्थित भाग को **उष्ण कटिबंधीय भारत** कहते हैं।

यदि हम देशांतरीय विस्तार को देखें तो भारत प्रधान मध्याह्न रेखा (0°)के पूर्व में स्थित है। इसलिए इसके पूर्वी गोलार्द्ध में स्थित होने के कारण भारत को **पूर्वी देश** समझा जाता है।

अब भारत की स्थिति को ध्यान से देखिए। आपको पता चलेगा कि भारत व्यापार और वाणिज्य के अंतर्राष्ट्रीय मार्ग पर स्थित है जो पूर्व को पश्चिम से जोड़ता है। भारत दक्षिण-पश्चिम एशिया, अफ्रीका और यूरोप तथा उत्तर और दक्षिण अमेरिका से भी स्वेज नहर तथा आशा अंतरीप के द्वारा बहुत अच्छी तरह से जुड़ा हुआ है। भारत-दक्षिण

भारत व उसके पड़ोसी देश
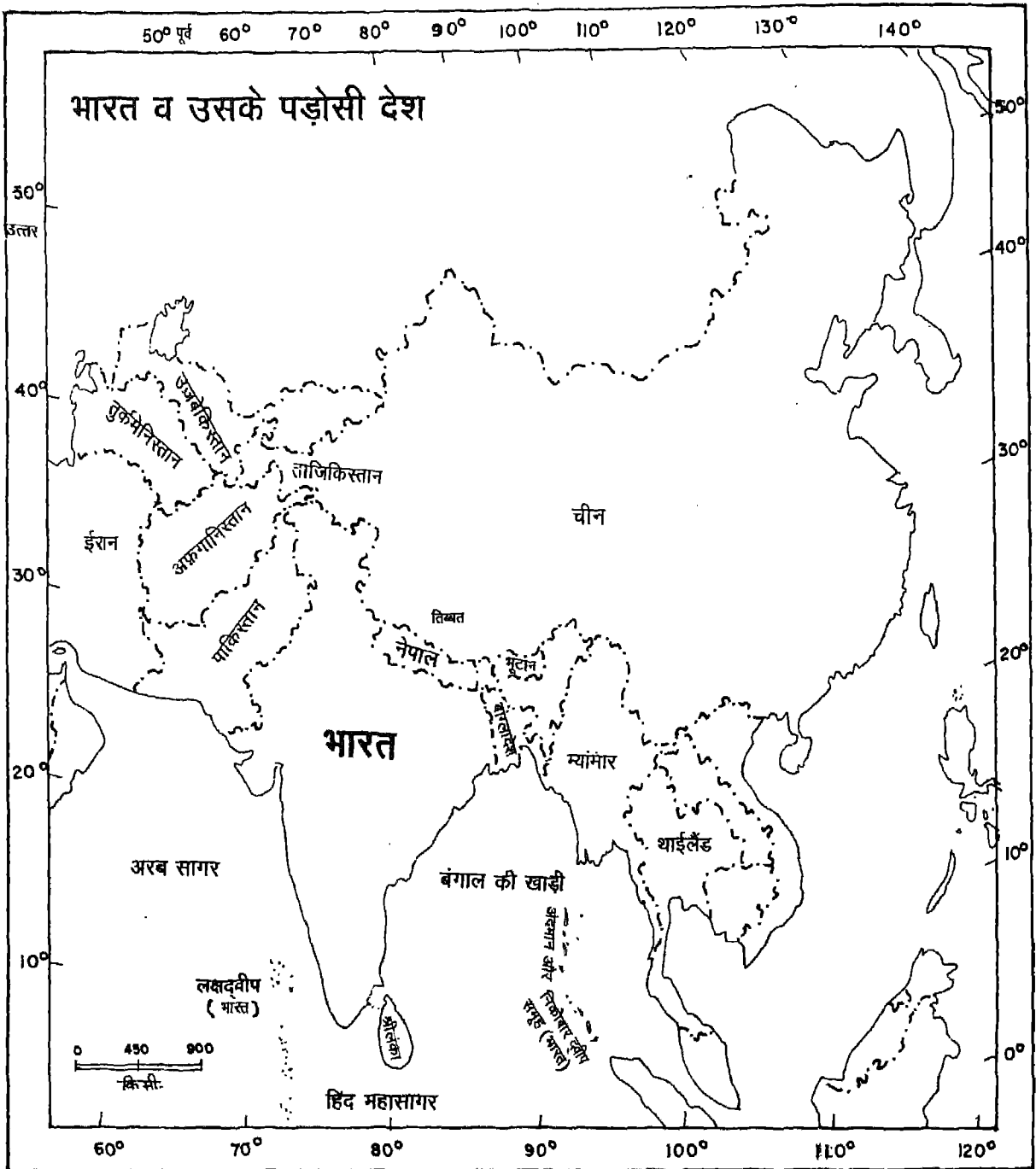
भारत और पड़ोसी देशों की स्थिति

पूर्व एशिया और आस्ट्रेलिया से भी जुड़ा हुआ है। संसार के एक मानचित्र पर उन महासागरीय मार्गों को दर्शाइए जो हमारे देश को संसार के विभिन्न देशों से जोड़ते हैं।

हमारे पड़ोसी

हमारे चारों ओर सात देश हैं जिनके साथ हमारी साँझी सीमाएँ हैं। उत्तर-पश्चिम में **अफ़गानिस्तान** और **पाकिस्तान** हमारे पड़ोसी हैं जबकि उत्तर में

चीन, नेपाल और **भूटान** हमारे पड़ोसी हैं। इन देशों में भूटान और नेपाल राजतंत्र हैं जो राजाओं द्वारा शासित हैं। हमारे पूर्व में **बांग्लादेश** तथा **म्यांमार** हमारे पड़ोसी देश हैं। हमारे दो और अत्यंत निकट द्वीपीय पड़ोसी देश हैं जो समुद्र पार दक्षिण में स्थित हैं। ये हैं - **श्रीलंका** और **मालदीव**। श्रीलंका हमारे देश से दो खारे पानी के संकीर्ण जल मार्गों, पाक जलसंधि और मन्नार की खाड़ी द्वारा पृथक है। आप अपने सभी पड़ोसी देशों और इन दो समुद्री मार्गों को भारत के एक रेखा मानचित्र में दिखा सकते हैं।

स्थिति

भारत एशिया महाद्वीप के दक्षिणी भाग के मध्य में स्थित है। ध्यान से देखिए कि भारत किन अक्षांशों के बीच स्थित है। इसकी मुख्य भूमि 8° 4´ उ. से 37° 6´ उ. अक्षांशों के बीच स्थित है। हमारे देश का यह विशाल विस्तार लगभग 29° है। हमारे देश में पाई जाने वाली जलवायु, मृदा, प्राकृतिक वनस्पति तथा वन्य जीवों की विविधता के लिए यही उत्तरदायी है। यदि आप अपनी यात्रा लद्दाख में स्थित लेह से प्रारंभ करें और इसे दक्षिण की ओर तब तक जारी रखें जब तक आप कन्याकुमारी न पहुँच जाएँ, इस यात्रा में आप इस विविधता को स्वयं देख सकते हैं। भारत का उत्तरी भाग विषुवत वृत्त से पर्याप्त दूरी पर स्थित है। इसीलिए यह भाग दक्षिणी भाग की अपेक्षा ठंडा है। इसी तरह से हिमालय पर्वत की अधिक ऊँचाई भी उत्तर में ठंडी जलवायु के लिए उत्तरदायी है। कर्क वृत्त के आस-पास स्थित स्थानों की जलवायु गर्म और आर्द्र है। 23° 30´ उ. अक्षांश के दक्षिण की ओर विषुवत वृत्त की ओर जाने पर तापमान बढ़ता जाएगा। भारत की मुख्य भूमि का दक्षिणतम बिंदु कन्याकुमारी है। परंतु भारतीय गणराज्य का दक्षिणतम बिंदु अण्डमान-नीकोबार द्वीप समूह में स्थित इंदिरा पॉइंट है।

हमारे देश का पूर्व-पश्चिमी विस्तार भी इसी तरह से अधिक है। यह लगभग 29° है। इस देशांतरीय विस्तार के कारण विभिन्न स्थानों के स्थानीय समय में अंतर पाया जाता है। सुदूर पूर्वी और सुदूर पश्चिमी बिंदुओं के बीच 2 घंटे के समय का अंतर है। अरुणाचल प्रदेश में सूर्य गुजरात की अपेक्षा 2 घंटे पहले उदय होता है। सूर्यास्त के समय में भी यही अंतर होता है। यह इसलिए होता है क्योंकि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है। इसीलिए पूर्व में स्थित स्थान सूर्य की रोशनी पहले प्राप्त करते हैं। अरुणाचल प्रदेश के तेजू नामक स्थान पर एक बच्चा जब सुबह का नाश्ता कर रहा होगा तब गुजरात के जामनगर स्थान पर बच्चा सूर्य की पहली किरणों के साथ अपनी नींद से जागा होगा। स्थानीय समय में यह अंतर बहुत सी प्रशासकीय कठिनाइयाँ पैदा कर सकता है। इसीलिए हमने संपूर्ण देश के लिए एक **मानक समय** माना है।

हमारे देश के विविध रूप

हमारे देश में विविध स्थलाकृतियाँ हैं। हिमालय पर्वत श्रेणियाँ हमारे देश की उत्तरी सीमा बनाती हैं। ये मोड़दार पर्वत हैं। अरावली पर्वत की अपेक्षा आयु में ये नवीन पर्वत हैं। हिमालय पर्वत श्रेणी बहुत ऊँची है। हिमालय पर्वत की तीन समानांतर पर्वत श्रेणियाँ हैं। इसकी बहुत सी चोटियाँ बर्फ़ से ढकी हैं। हमारे देश में हिमालय पर्वत का उच्चतम शिखर कंचनजुंगा है। यहाँ की जलवायु अत्यंत ठंडी है। लद्दाख के पठार की जलवायु अत्यंत शीतल और शुष्क है। यह शीत मरुस्थल है।

हिमालय पर्वत के दक्षिण में **उत्तर भारत का मैदान** है। यह **समतल निम्न भूमि** है जिसे मैदान कहते हैं। यह बहुत लंबे समय से मुख्य रूप से नदियों द्वारा निक्षेपित गाद और कीचड़ से बना है। ऐसे मैदानों को **नदीय मैदान** कहते हैं। यहाँ की जलवायु मृदुल है और यहाँ की भूमि हरी-भरी है।
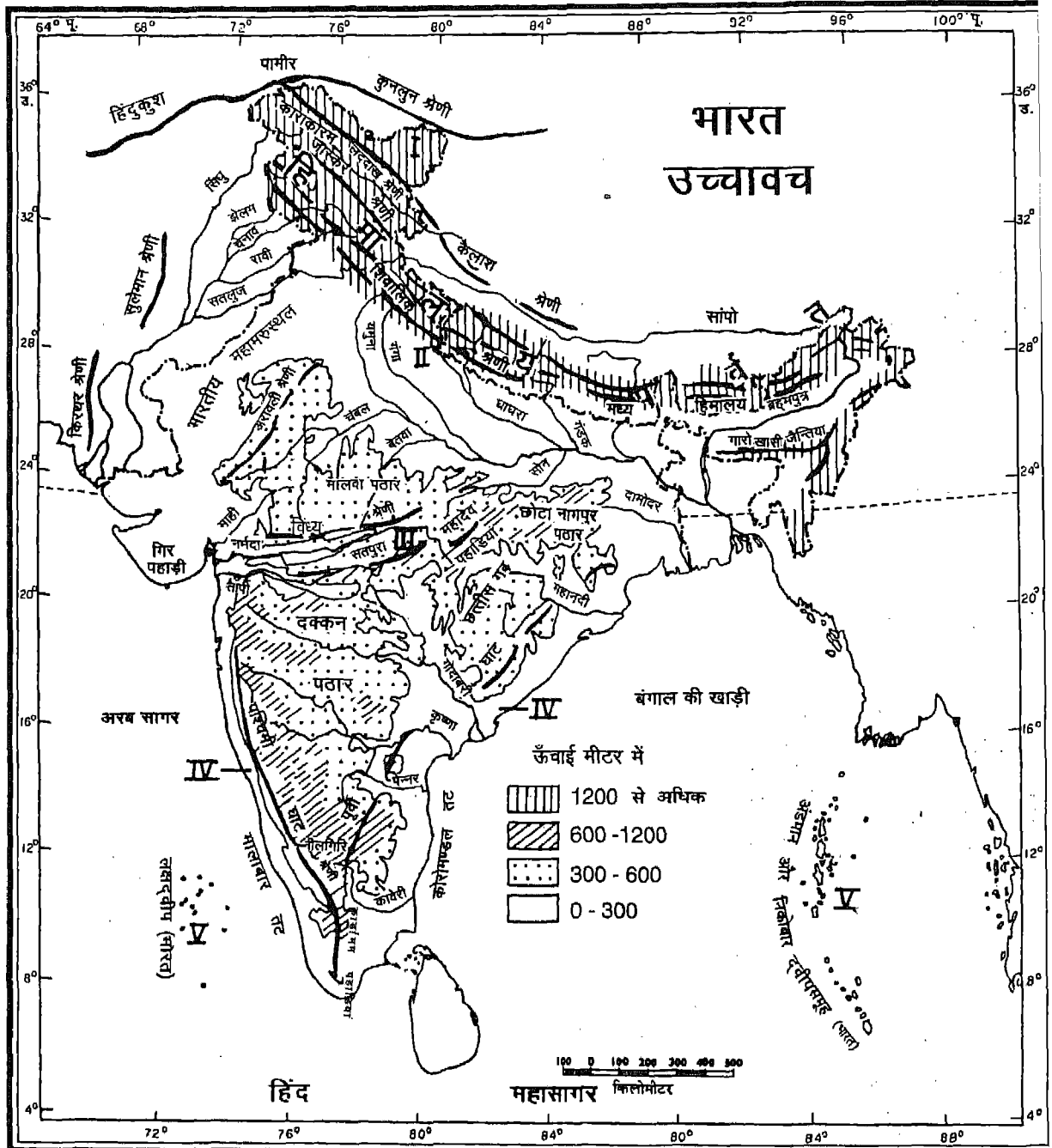
भारत उच्चावच

ऊँचाई मीटर में
1200 से अधिक
600-1200
300 - 600
0 - 300

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।
इस मानचित्र में दर्शित अक्षरविन्यास विभिन्न सूत्रों द्वारा प्राप्त किया है।

भारत : प्राकृतिक

सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र यहाँ के तीन प्रमुख नदी तंत्र हैं। इन तीनों ने मिलकर इस विशाल मैदान का निर्माण किया है। इन तीनों प्रमुख नदियों की बहुत सी सहायक नदियाँ हैं। सहायक नदियाँ छोटी नदियाँ अथवा सरिताएँ होती हैं जो बड़ी नदी में मिल जाती हैं। सतलुज सिंधु नदी की एक महत्त्वपूर्ण सहायक नदी है। आप गंगा और ब्रह्मपुत्र और सिंधु नदियों की महत्त्वपूर्ण सहायक नदियों की सूची बना सकते हैं। गंगा और ब्रह्मपुत्र ने मिलकर अपने मुहाने पर एक डेल्टा का निर्माण किया है जिसे सुंदरवन कहते हैं। यह संसार का सबसे बड़ा डेल्टा है। अपनी उर्वर मृदा के कारण उत्तरी भारत का मैदान हमारे देश का सबसे अधिक जनसंख्या वाला क्षेत्र है।

जैसे ही आप उत्तर भारत के मैदान के पश्चिम की ओर बढ़ेंगे, आपको पता चलेगा कि वृक्ष लुप्त होते जा रहे हैं और आप एक बहुत गर्म, शुष्क और रेतीले भूभाग में प्रवेश कर रहे हैं । उत्तर भारत के मैदान के पश्चिमी भाग में **थार मरुस्थल** है। इस चट्टानी भाग का धरातल बालू से ढका हुआ है। यह लगभग पौधे और वृक्ष विहीन क्षेत्र है।

कर्क वृत्त को पार करने के बाद जैसे ही आप दक्षिण की ओर जाएँगे आपको भारत का एक अन्य भाग देखने को मिलेगा। यह आकार में तिकोना है। इस तिकोने क्षेत्र के तीनों ओर **अरब सागर, हिंद महासागर** और **बंगाल की खाड़ी** स्थित हैं। एक ऐसा भूभाग जो तीनों ओर समुद्र से घिरा हुआ हो **प्रायद्वीप** कहलाता है। भारतीय प्रायद्वीप एक पठार है जिसके पश्चिम में पश्चिमी घाट और पूर्व में पूर्वी घाट स्थित हैं। यह पठारी क्षेत्र खनिज संपदा में अत्यधिक धनी है।

भारत में दो द्वीप समूह भी हैं। ये हैं– बंगाल की खाड़ी में स्थित अंडमान और निकोबार तथा अरब सागर में स्थित लक्षद्वीप। हमारे देश के दक्षिणी भाग में हिंद महासागर है। इन समुद्रों, खाड़ियों और महासागर के कारण हमारे देश की तटरेखा बहुत लंबी है। यह बंदरगाहों के विकास में सहायक है।

अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के किनारे मैदानी भूमि की संकरी पट्टियाँ हैं जिन्हें **तटीय मैदान** अथवा **निम्न भूमि** कहते हैं। पूर्वी तटीय मैदान अधिक चौड़ा और अधिक उर्वर है। इस मैदान में बहने वाली चार प्रमुख नदियाँ हैं– महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी। इन्होंने अपने मुहाने पर डेल्टाओं का निर्माण किया है। ये डेल्टाई क्षेत्र अधिक उपजाऊ और कृषि में संपन्न हैं। इसीलिए इस क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व अधिक है। पश्चिमी तटीय मैदान असमतल, चट्टानी और संकीर्ण है। इस तटीय मैदान की दो प्रमुख नदियाँ तापी और नर्मदा हैं जो अरब सागर में मिलती हैं। इन्होंने अपने मुहाने पर डेल्टाओं का निर्माण नहीं किया है। दीवार पर लटकाने वाले भारत के बड़े मानचित्र को ध्यान से देखिए। पता कीजिए कि पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ पूर्व की ओर बहने वाली बंगाल की खाड़ी में मिलने वाली नदियों से किस प्रकार भिन्न हैं।

भारत के राज्य और केंद्र शासित क्षेत्र

हमारा विशाल देश 28 राज्यों और 7 केंद्र शासित क्षेत्रों में विभाजित है। इन राज्यों और केंद्र शासित क्षेत्रों को फिर ज़िलों में बाँटा गया है। आगे दी गई सारणी में राज्यों और केंद्र शासित क्षेत्रों के नाम दिए गए हैं। इन्हें भारत के राजनीतिक मानचित्र पर पहचानंने का प्रयत्न करें और इनकी राजधानियों को भारत के रेखा मानचित्र पर दिखाइए।

भारत राजनीतिक

जम्मू और कश्मीर
श्रीनगर
हिमाचल प्रदेश
शिमला
चण्डीगढ़
पंजाब
हरियाणा
उत्तरांचल
देहरादून
दिल्ली
पाकिस्तान
चीन
(तिब्बत)
नेपाल
सिक्किम
गंगटोक
भूटान
अरुणाचल प्रदेश
ईटानगर
नागालैंड
कोहिमा
असम
दिसपुर
शिलांग
मेघालय
मणिपुर
इम्फाल
बांगलादेश
त्रिपुरा
अगरतला
आइजोल
मिज़ोरम
म्यांमार
कर्क वृत्त
राजस्थान
जयपुर
उत्तर प्रदेश
लखनऊ
बिहार
पटना
भारत
गांधीनगर
गुजरात
भोपाल
मध्य प्रदेश
झारखंड
राँची
पश्चिम बंगाल
कोलकाता
छत्तीसगढ़
रायपुर
भुवनेश्वर
उड़ीसा
न्यू मूरे द्वीप (भारत)
दादरा नगर हवेली
सिलवासा
दीव दमन (द.व दी.)
मुंबई
महाराष्ट्र
बंगाल की खाड़ी
हैदराबाद
अरब सागर
आंध्र प्रदेश
यानाम (पा.)
गोवा
पणजी
कर्नाटक
बंगलौर
चेन्नई
माहे (पांडिचेरी)
तमिल नाडु
पाण्डिचेरी
करिकाल (पा.)
केरल
लक्षद्वीप (भारत)
कवरत्ती
तिरुवनंतपुरम
श्रीलंका
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)
पोर्ट ब्लेयर
इंदिरा प्वाइंट
हिंद महासागर

निर्देशिका
अंतर्राष्ट्रीय सीमा
राज्य सीमा
राज्य राजधानी

किलोमीटर
100 0 100 200 300 400 500

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।
समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।
चंडीगढ़, पंजाब और हरियाणा के प्रशासी मुख्यालय चंडीगढ़ में है।

सारणी 6.1 भारत के राज्य और केंद्र शासित क्षेत्र

राज्य	*राजधानी*	*राज्य*	*राजधानी*
आंध्र प्रदेश	हैदराबाद	महाराष्ट्र	मुंबई
अरुणाचल प्रदेश	ईटानगर	मणिपुर	इंफाल
असम	दिसपुर	मेघालय	शिलांग
बिहार	पटना	मिज़ोरम	आइज़ोल
छत्तीसगढ़	रायपुर	नागालैंड	कोहिमा
गोवा	पणजी	उड़ीसा	भुवनेश्वर
गुजरात	गाँधीनगर	पंजाब	चंडीगढ़
हरियाणा	चंडीगढ़	राजस्थान	जयपुर
हिमाचल प्रदेश	शिमला	सिक्किम	गंगटोक
जम्मू और कश्मीर	श्रीनगर	तमिलनाडु	चैन्नई
झारखंड	राँची	उत्तरांचल	देहरादून
कर्नाटक	बंगलौर	उत्तर प्रदेश	लखनऊ
केरल	तिरुवनंतपुरम	त्रिपुरा	अगरतला
मध्य प्रदेश	भोपाल	पं. बंगाल	कोलकाता

केंद्र शासित क्षेत्र	*राजधानी*
अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	पोर्टब्लेयर
चंडीगढ़	चंडीगढ़
दादरा और नगर हवेली	सिलवास
दमन और दीव	दमन
लक्षद्वीप	कवरत्ती
पांडिचेरी	पांडिचेरी
राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली	दिल्ली

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए

(1) कौन सा अक्षांश वृत्त भारत को लगभग दो बराबर भागों में विभाजित करता है?
(2) हमारे उत्तर में किन दो देशों में राजतंत्र है?
(3) भारतीय प्रायद्वीप को घेरे हुए कौन से तीन समुद्र हैं?
(4) स्वेज नहर ने विश्व में भारत की स्थिति को किस प्रकार प्रभावित किया है?
(5) भारतीय गणराज्य में कितने राज्य हैं?

2. रिक्त स्थान भरिए

(1) भारत में ....केंद्र शासित क्षेत्र हैं। (5/7/9)
(2) भारत का दक्षिणतम बिंदु .... है। (कन्याकुमारी/इंदिरा पॉइंट)
(3) ....हमारे देश को लगभग दो समान भागों में विभाजित करता है। (विषुवत वृत्त/मकर वृत्त/कर्क वृत्त)

3. सही जोड़े बनाइए

(1)	अंडमान और निकोबार	**(क)**	हमारा पूर्वी पड़ोसी
(2)	मालदीव	**(ख)**	हिमालय क्षेत्र में बसा राजतंत्र
(3)	म्यांमार	**(ग)**	भारत के द्वीप समूह
(4)	नेपाल	**(घ)**	समुद्र पार के पड़ोसी देश

करने के लिए कार्य

* भारत के मानचित्र पर उन **दो** प्रमुख बंदरगाहों को मालूम कीजिए जो राजधानी शहर भी हैं।
* **तीन** ऐसे राजधानी शहरों के नाम लिखिए जो कर्क वृत्त के निकट स्थित हैं।
* हिमालय पर्वत श्रेणियों के निकट पश्चिम से पूर्व की ओर स्थित **पाँच** राज्यों के नाम लिखिए।
* हमारे पड़ोसी देशों – अफ़गानिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश और म्यांमार में बोली जाने वाली भाषाएँ मालूम कीजिए। क्या इन भाषाओं में से कोई भाषा भारत में भी बोली जाती है?
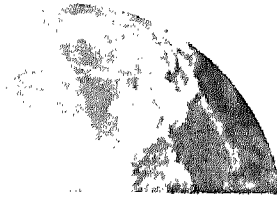
7

हमारी जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति और वन्य जीवन

जलवायु

भारत को मानसूनी जलवायु की भूमि कहा जाता है। आप में से अधिकतर ने 'मानसून' शब्द अवश्य सुना होगा। बड़े-बूढ़े इसके विषय में बातचीत करते हैं, समाचार पत्र इसके पहले आने अथवा देर से आने की सूचना देते हैं। आपके आस-पास के लोग **मानसून** के विषय में इसलिए चिंतित होते हैं क्योंकि उनका जीवन और आजीविका मानसून से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं।

'मानसून' शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के शब्द *मौसिम* से हुई है जिसका अर्थ है ऋतु। भारत उष्ण कटिबंध में स्थित है। हमारे यहाँ अधिकतर वर्षा मानसूनी पवनों से होती है। इसीलिए भारत को मानसून की भूमि कहा जाता है। हमारे किसान अच्छी फसल लेने के लिए मानसूनी वर्षा पर बहुत अधिक निर्भर हैं। अगर मानसून समय से पहले आ जाता है तो हमारी फसलों को क्षति पहुँचती है क्योंकि हमारी कृषिभूमि वर्षा प्राप्त करने के लिए तैयार नहीं होती। यदि यह देर से आती है तो सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसलिए जलवायु की दृष्टि से मानसून एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना है। चूँकि यह हमारे जीवन और आजीविका को प्रभावित करता है, इसका समय से आना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

भारत में मुख्य रूप से चार ऋतुएँ होती हैं —

(क) ठंडे मौसम की ऋतु (शीत ऋतु) — दिसंबर से फ़रवरी

(ख) गर्म मौसम की ऋतु (ग्रीष्म ऋतु) — मार्च से मई

(ग) आगे बढ़ते मानसून की ऋतु (वर्षा ऋतु) — जून से सितंबर

(घ) पीछे हटते मानसून की ऋतु (शरद ऋतु) — अक्तूबर से नवंबर

मोटे तौर पर भारत को उष्ण कटिबंधीय मानसून जलवायु की भूमि कहा जाता है, परंतु इसकी जलवायु में प्रादेशिक अंतर स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। जलवायु में ये विभिन्नता इसकी स्थिति एवं व्यापक उच्चावच लक्षणों के कारण उत्पन्न होती है। यदि आप विभिन्न स्थानों की यात्रा करें तो आपको पता चलेगा कि जलवायु में प्रादेशिक विविधता ने हमारे भोजन, वस्त्र तथा मकानों में भी विविधता उत्पन्न की है। यदि आप किसी पहाड़ी स्थल पर जाएँ तो वहाँ की जलवायु अति शीतल होगी और प्रायः वहाँ हिमपात भी देखेंगे। मरुस्थलों में दिन बहुत अधिक गर्म और रातें ठंडी होती हैं। तटीय क्षेत्रों की जलवायु कुछ मृदुल होती है। ये न तो बहुत अधिक गर्म और न ही बहुत अधिक ठंडे होते हैं। परंतु यदि आप अंडमान

और निकोबार द्वीप समूह की यात्रा पर जाएँगे तो आपको पता चलेगा कि वहाँ की जलवायु गर्म और आर्द्र है। कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जैसे मेघालय, जहाँ जून और सितंबर के बीच भारी वर्षा होती है। परंतु उत्तर-पश्चिम मरुस्थल कभी-कभी वर्ष भर बिना किसी वर्षा के शुष्क रह जाता है।

ठंडे मौसम की ऋतु

इस ऋतु की अवधि में मुख्य रूप से हमारे देश के उत्तरी भाग में तापमान कम और वायुदाब अधिक होता है। साधारणतया यह शुष्क ऋतु होती है।

गर्म मौसम की ऋतु

मार्च से मई तक सूर्य की उत्तरायण गति के फलस्वरूप धीरे-धीरे तापमान बढ़ने लगता है और वायुदाब घटने लगता है। इस समय गर्म और शुष्क हवाएँ चलने लगती हैं जिन्हें स्थानीय लोग **लू** कहते हैं।

आगे बढ़ते मानसून की ऋतु

यह वर्षा ऋतु होती है। हमें अपनी कुल वर्षा की लगभग 80 प्रतिशत मात्रा इसी अवधि में प्राप्त होती है। हमारी फसलों का उत्पादन अधिकतर

भारतीय मानसून

इसी ऋतु पर निर्भर करता है। इसे मानसून ऋतु भी कहते हैं।

पीछे हटते मानसून की ऋतु

अक्तूबर और नवंबर में मानसून पीछे लौटने लगता है। अधिक आर्द्रता के कारण मौसम कष्टदायक और असहनीय हो जाता है। इस ऋतु में हमारे देश के दक्षिणी भागों में कुछ वर्षा होती है।

प्राकृतिक वनस्पति

विविध जलवायु की दशाओं के कारण, भारत में कई प्रकार की प्राकृतिक वनस्पति पाई जाती हैं। विविध उच्चावच लक्षणों जैसे पर्वतों, पठारों, मैदानों और घाटियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की वनस्पति होती है। जलवायु में अंतर के कारण वनस्पति में अंतर आ जाता है। आप अंडमान में **वर्षा-वन** और थार मरुस्थल में **नागफली** जैसी वनस्पति देख सकते हैं। हिमालय में **अल्पाइन** वन हैं तो सुंदरवन में **मैंग्रोव वन** मिलते हैं।

उष्ण कटिबंधीय सदाहरित वन अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, उत्तर-पूर्वी राज्यों के कुछ भागों और पश्चिमी घाट की पश्चिमी ढलानों पर एक संकीर्ण पट्टी के साथ-साथ पाए जाते हैं। इन वनों में वृक्ष काफी लंबे होते हैं। ऐसी कोई निश्चित ऋतु नहीं है जब ये वृक्ष अपनी पत्तियाँ गिराते हों। इसलिए पूरे वर्ष ये वन हरे-भरे दिखाई देते हैं। इसीलिए इन वनों को सदाहरित वन कहा जाता है। महोगनी, रोज़वुड और बाँस इन वनों में पाए जाने वाले वृक्षों की कुछ प्रमुख जातियाँ हैं।

उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन अथवा मानसूनी वन मध्य प्रदेश, बिहार, झारखंड, उड़ीसा तथा महाराष्ट्र के कुछ भागों में मिलते हैं। साल, टीक, पलाश, शीशम, अर्जुन, चंदन, पीपल तथा बाँस यहाँ पाए जाने वाले मुख्य वृक्ष हैं।

घास भूमियाँ तथा कंटीली झाड़ियाँ उन क्षेत्रों में पाई जाती हैं जहाँ वर्षा कम होती है जैसे राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, गुजरात तथा पश्चिमी घाट के पूर्वी ढाल।

पर्वतीय वनस्पति हमारे देश का अत्यंत विशिष्ट लक्षण है। ऊँचाई में अंतर के कारण एक बहुत संकीर्ण भौगोलिक क्षेत्र में विभिन्न स्तरों पर वृक्षों की बहुत सी प्रजातियाँ पाई जाती हैं। जैसे ही आप किसी पर्वत पर ऊपर जाएँगे, तापमान और वर्षा की मात्रा घटती जाएगी। इसलिए विभिन्न ऊँचाइयों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की वनस्पति मिलेगी। पर्वतों पर चीड़, देवदार, स्प्रूस, सिल्वर फर, ओक, लॉरेल, मेपल, रेडोडेनड्रोन, बर्च और यूकेलिप्टस के वृक्ष पाए जाते हैं। बहुत अधिक ऊँचाई पर केवल अल्पाइन घास, मॉस और लिचन जैसी वनस्पति ही पाई जाती हैं।

मैंग्रोव वन खारे पानी में फल-फूल सकते हैं। इसलिए हमारे यहाँ मैंग्रोव वन पश्चिम बंगाल में सुंदरवन तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह तक ही सीमित हैं। आंध्र प्रदेश तमिलनाडु, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात, गोवा और कर्नाटक के तटीय क्षेत्रों में मैंग्रोव वन छिटपुट भागों में मिलते हैं। मैंग्रोव वनों की जानी-मानी प्रजाति सुंदरी वृक्ष है जिसके नाम पर सुंदरवन का नामकरण हुआ है।

हमें वनों की आवश्यकता क्यों है

हम वनों को विभिन्न कारणों जैसे कृषि अथवा उद्योगों के विस्तार अथवा मानव बस्तियों के लिए बड़ी निर्दयता से काटते आ रहे हैं। इसने हमारी प्राकृतिक वनस्पति का बहुत सीमा तक विनाश कर दिया है। वनों के कम होने से मृदा अपरदन होता है। इससे नदियों में नौकायन कम हो जाता है। हमारे देश में आने वाली बाढ़ों से होने वाले विनाश का यह एक प्रमुख कारण है। वन हमें बहुत से प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध कराते हैं। हमें वनों से प्राप्त होने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण संसाधन इमारती लकड़ी है। वनों से प्राप्त होने वाले अन्य उत्पाद हैं – शहद, लाख, राल, गोंद, बेंत-बाँस और औषधीय जड़ी-बूटियाँ। पहले हमें वनों से घरेलू और औद्योगिक कार्यों के लिए ईंधन भी प्राप्त होता था। लेकिन अब वनों का ईंधन के रूप में प्रयोग न किए जाने की जागरूकता का विकास किया जा रहा है। लकड़ी के ईंधन के रूप में प्रयोग पर रोक लगाने से हमारे वन भविष्य में होने वाले विनाश से बच जाएँगे। अगर आप में से प्रत्येक अपने जन्म दिन पर एक पौधा अपना ले तो आप देखेंगे कि कुछ ही वर्षों में हमारे आस-पास का वातावरण कितना हरा-भरा हो जाएगा।

वन्य जीवन

भारत पशु संसाधनों में धनी है। हमारे यहाँ पशुओं की लगभग 80,000 प्रजातियाँ और रेंगने वाले जीवों, पक्षियों और कीड़े-मकोड़ों की हज़ारों प्रजातियाँ पाई जाती हैं। हमारे देश में पाई जाने वाली महत्त्वपूर्ण वन्य जीवों की प्रजातियों में से कुछ हैं – हाथी, शेर, बाघ, गेंडा, भालू, तेंदुआ, हिरण आदि। इन प्रजातियों के प्राकृतिक आवास पूरे देश में फैले हुए हैं। यदि आप काज़ीरंगा (असम) अथवा दुआर (प. बंगाल) जाएँ तो आपको एक सींग वाला गैंडा देखने का अवसर मिल सकता है। यह एक दुर्लभ प्रजाति है। गुजरात में गिर वन शेरों का आवास है। गिर वनों से यदि आप पूरे देश को पार करके पूर्व की ओर जाएँ तो
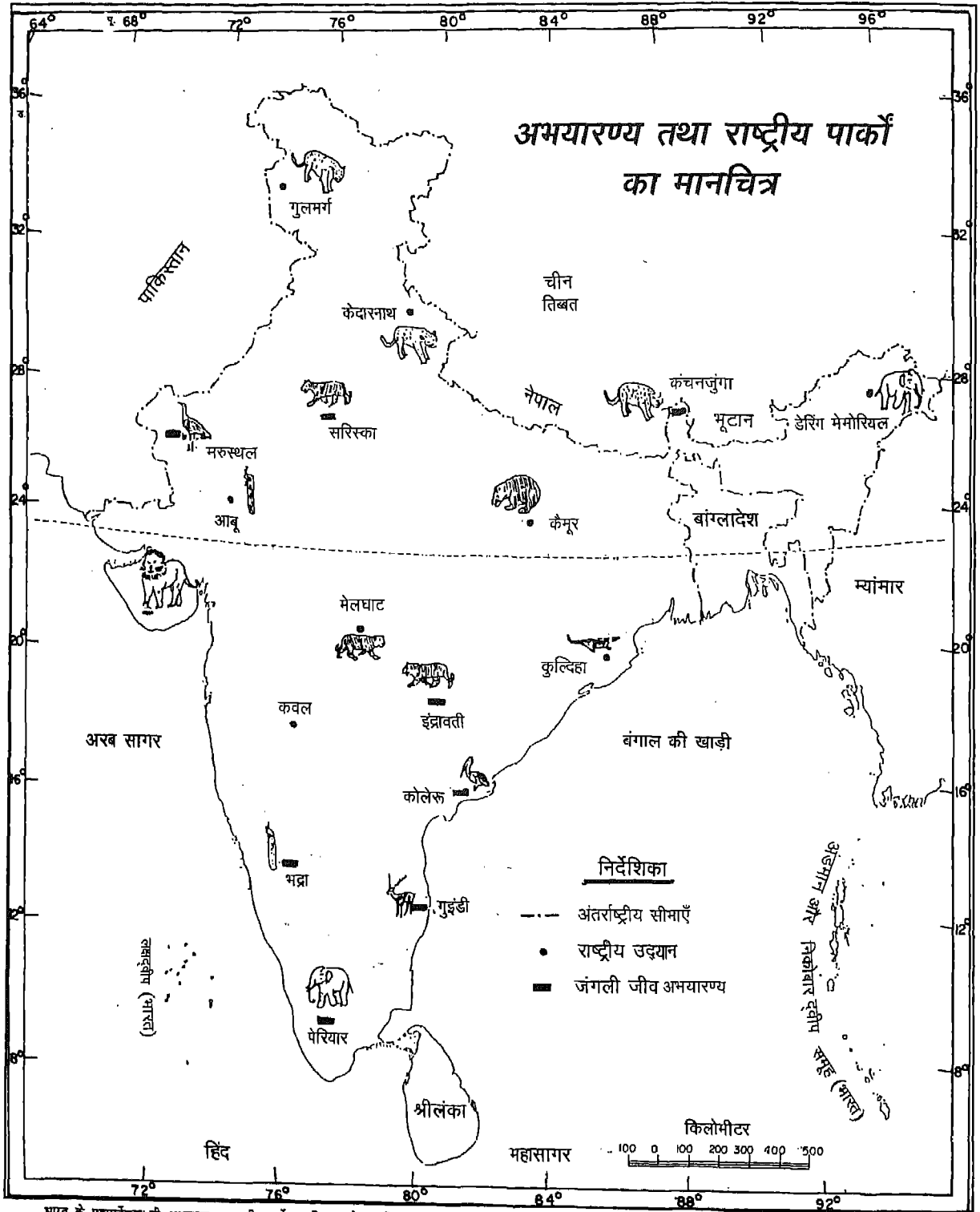
अभयारण्य तथा राष्ट्रीय पार्कों का मानचित्र

गुलमर्ग

पाकिस्तान

चीन
तिब्बत

केदारनाथ

सरिस्का

नैपाल

कंचनजुंगा

भूटान

डेरिंग मेमोरियल

मरुस्थल

आबू

कैमूर

बांग्लादेश

म्यांमार

मेलघाट

कुल्दिहा

कवल

इंद्रावती

अरब सागर

बंगाल की खाड़ी

कोलेरू

भद्रा

गुइंडी

लक्षद्वीप (भारत)

पेरियार

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह (भारत)

श्रीलंका

हिंद महासागर

निर्देशिका

- —·— अंतर्राष्ट्रीय सीमाएँ
- • राष्ट्रीय उद्यान
- ▬ जंगली जीव अभयारण्य

किलोमीटर
100 0 100 200 300 400 500

भारत के महासर्वेक्षक की अनुज्ञानुसार भारतीय सर्वेक्षण विभाग के मानचित्र पर आधारित।

समुद्र में भारत का जलप्रदेश, उपयुक्त आधार रेखा से मापे गए बारह समुद्री मील की दूरी तक है।

इस मानचित्र में अरूणाचल प्रदेश, असम और मेघालय के मध्य में दर्शायी गयी अंतर्राज्य सीमा, उत्तरी पूर्वी क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम 1971 के निर्वाचनानुसार दर्शित है, परंतु अभी सत्यापित होनी है।

आंतरिक विवरणों को सही दर्शाने का दायित्व प्रकाशक का है।

आप सुंदरवन पहुँच जाएँगे। यहाँ पर आप बंगाल के बाघ को देखकर प्रसन्न हो जाएँगे। **बाघ** हमारा **राष्ट्रीय पशु** है। हाथी पश्चिम बंगाल, असम, कर्नाटक, केरल और तमिलनाडु में पाए जाते हैं।

बाघ को भारत सरकार ने **संकटापन्न प्रजाति** घोषित कर दिया है। बाघों की संख्या को बनाए रखने और उन्हें संरक्षण प्रदान करने के लिए हमारे देश के विभिन्न भागों में बाघ आरक्षित क्षेत्र बनाए गए हैं। भारत के मानचित्र में ऐसे दो आरक्षित क्षेत्रों को ढूँढ़ने का प्रयत्न कीजिए। वन्य जीवन की सबसे अधिक व्यापक रूप में पाई जाने वाली प्रजाति हिरण है, जिसे देश के अधिकतर वनों में देखा जा सकता है। बंदर भी प्रायः सभी जगह देखे जा सकते हैं। वे खेलप्रिय होते हैं परंतु कभी-कभी आपके शरारती मित्र भी! नहीं क्या?

भारत में साँपों की सैकड़ों प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इसमें प्रमुख हैं – कोबरा और करैत। अजगर, घड़ियाल और छिपकलियाँ भी यहाँ पाए जाते हैं। एक बहुत ही दुर्लभ कछुए की किस्म **ओलिव रिडले** उड़ीसा तट के पास पाई जाती है।

भारत में हमारे पास पक्षियों की बहुत अधिक किस्में हैं। इनमें से कुछ हैं – मोर, गरुड़, बाज़, कंठफोड़, फेजेंट, (चेड़), तोता, पराकीट और कौड़िल्ला। **मोर** हमारा **राष्ट्रीय पक्षी** है जिसके पंख असाधारण रूप से रंगीन होते हैं। पक्षियों को उनका प्राकृतिक आवास प्रदान करने के लिए सैकड़ों पक्षी अभयारण्य बनाए गए हैं। ये पक्षियों को शिकारियों से सुरक्षा प्रदान करते हैं।

इस अध्याय में आपने प्राकृतिक संसाधनों, वनस्पति तथा वन्य जीवों के विषय में अध्ययन किया। दोनों का ही अनावश्यक उपयोग और विनाश होने से रक्षा करनी है। प्राकृतिक वनस्पति एवं वन्य जीवन की इन प्रजातियों को संरक्षित करने के लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ कठिन परिश्रम कर रही हैं। लेकिन हममें से प्रत्येक का भी उत्तरदायित्व है कि हम इनकी रक्षा करें।

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए

(1) 'मानसून' शब्द का क्या अर्थ है?

(2) भारत में प्रमुख ऋतुएँ कौन सी हैं?

(3) सदाहरित वनों का वर्णन कीजिए।

(4) भारत का राष्ट्रीय पशु कौन सा है?

2. रिक्त स्थान भरिए

(1) .... हमारा राष्ट्रीय पक्षी है। (गरुड़/मोर)

(2) मानसूनी वनों में प्रायः सबसे अधिक पाए जाने वाला वृक्ष..................है। (सागौन/चंदन)

(3) भारत में वर्षा ऋतु..................से................तक होती है। (जून-सितंबर/अक्तूबर दिसंबर)

3. सही जोड़े बनाइए

(1)	गिर वन	**(क)**	हाथी
(2)	काज़ीरंगा	**(ख)**	शेर
(3)	केरल	**(ग)**	बाघ
(4)	सुंदरवन	**(घ)**	गैंडा

करने के लिए कार्य

- भारत में पाए जाने वाले वन्य पशुओं और पक्षियों के चित्रों का संग्रह तैयार कीजिए।
- अपने घर के निकट उगे एक छोटे से पौधे को अपनाइए और कुछ महीनों तक प्रत्येक पखवाड़े अथवा महीने में उसमें होने वाले परिवर्तनों का अवलोकन कीजिए।
- किसी सुहावने रविवार को सुबह का एक घंटा एक पार्क में व्यतीत कीजिए और उन छः पक्षियों के नाम लिखिए जिन्हें आपने देखा।

इकाई दो

में मानव और समाज
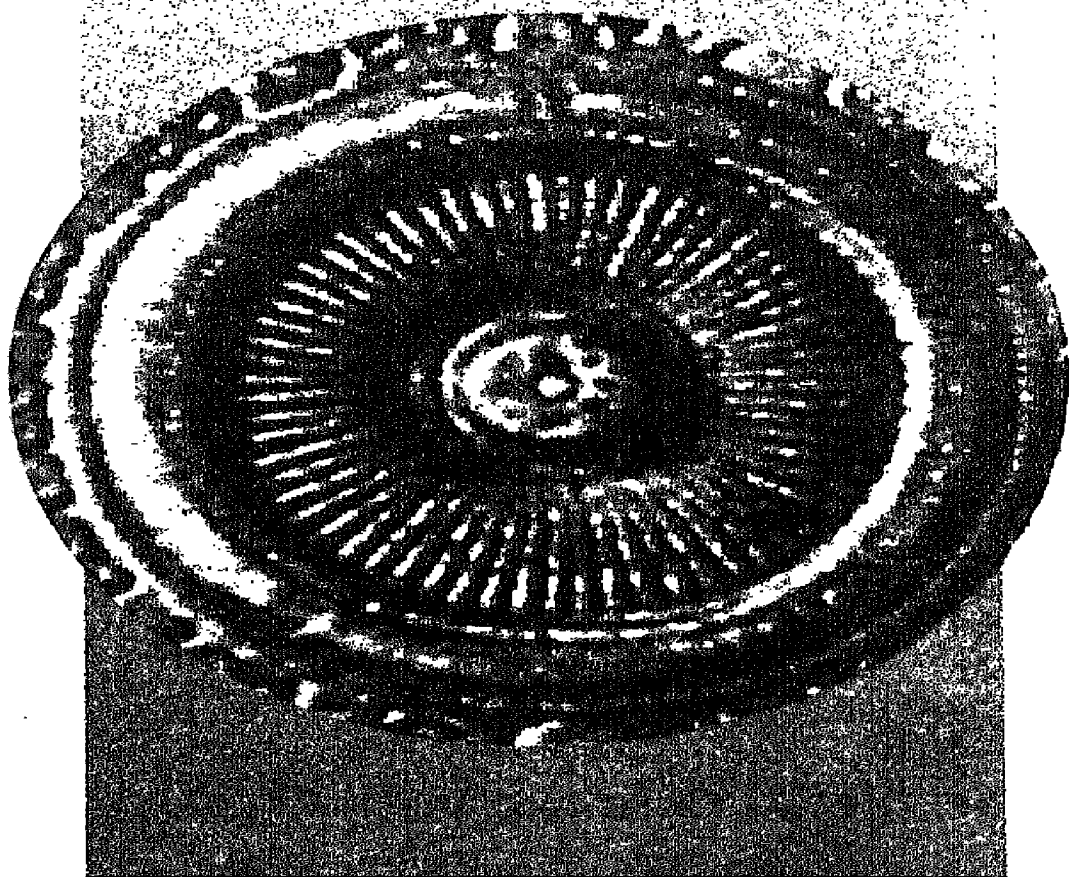
पिछली इकाई में आपने पृथ्वी के बारे में पढ़ा, जहाँ सभी प्रकार का जीवन संभव है। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि मानव प्राचीन काल में कैसे रहता था। यह मानव की आदि कालीन प्रगति से सभ्यताओं के विकास तक, तत्पश्चात राज्यों एवं साम्राज्यों की उत्पत्ति तक की कहानी है। इसी इकाई में आप विश्व की प्रमुख प्राचीन सभ्यताओं की कुछ सामान्य विशेषताओं का भी अध्ययन करेंगे । ये सामान्य विशेषताएँ हैं – उनका भौगोलिक क्षेत्र, उनकी जीवन-शैली तथा मानव के विकास में उनका योगदान । आप भारतीय सभ्यता के बारे में भी थोड़ा अधिक विस्तार से पढ़ेंगे ।
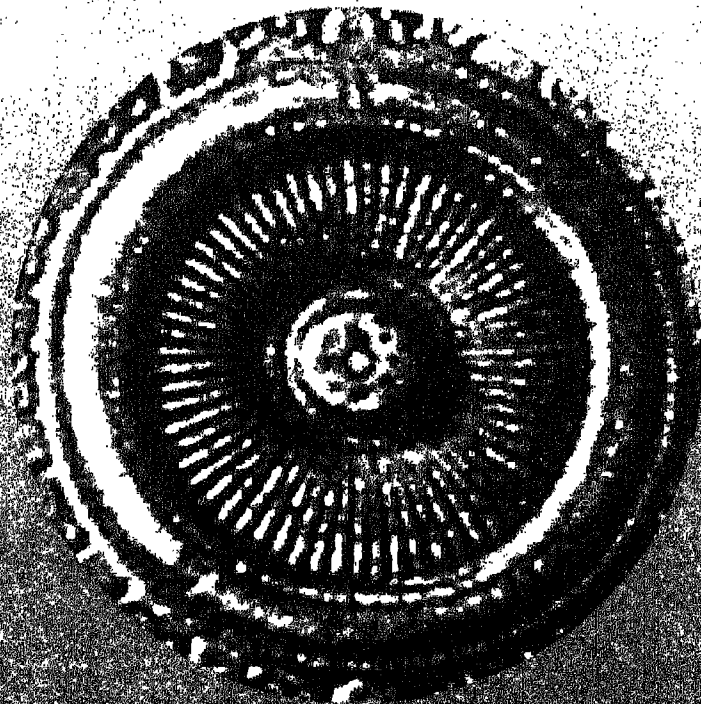
परिचय
इतिहास का स्रोत

पिछले भाग में आपने पृथ्वी ग्रह के विषय में जानकारी प्राप्त की। पृथ्वी पर करोड़ों लोगों का निवास है। वे इसके विभिन्न क्षेत्रों में रहते हैं। क्या आपने कभी सोचा है कि प्राचीन काल में मानव पृथ्वी पर किस प्रकार रहता था? उस समय टेलीविजन, रेडियो, रेलें अथवा बसें या कारें नहीं थीं। एक लंबी अवधि तक मानव लिखना-पढ़ना नहीं जानता था। फिर हम उन लोगों के विषय में कैसे जानते हैं जो पृथ्वी पर बहुत समय पहले रहते थे? हम उनके विषय में कुछ निश्चित साधनों के माध्यम से जानते हैं। ये साधन हैं, उस समय के औज़ार, बर्तन व पात्र, आभूषण, भवन, सिक्के और अभिलेख आदि।

इन साधनों को हम स्रोत कहते हैं। स्रोतों के कई प्रकार हैं। बहुत-सी पाण्डुलिपियाँ/हस्तलेख अथवा प्राचीन पुस्तकें हमें भूतकाल के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी देती हैं। भारत में **वेद**, **पुराण**, **उपनिषद्**, **स्मृतियाँ**, **रामायण**, **महाभारत**, **संगम साहित्य** और **त्रिपिटक** जैसी पुस्तकों से हमें प्राचीन काल के बारे में जानकारी मिलती हैं। भूतकाल के अध्ययन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण साधन है – **पुरातत्व विज्ञान**। पुरातत्व विज्ञान भूतकाल के अवशेषों का अध्ययन होता है। मानव जहाँ कहीं भी रहा वहाँ हमें उसके मिट्टी के बर्तन, गहने, खिलौने और उसके द्वारा प्रयुक्त घर व औज़ार आदि मिले हैं। समय के साथ ये सब मलबे के नीचे दब गए हैं। उन्हें सावधानी से खुदाई द्वारा निकालना पड़ता है जिससे उन्हें कोई क्षति न हो। **अभिलेख** और **सिक्के** भी ऐसे ही साधनों के अन्य रूप हैं। सम्राट अशोक के अभिलेखों से उसके प्रशासन, युद्ध और जनहित के लिए उठाए गए विभिन्न कदमों की जानकारी मिलती है। प्राचीन काल में कई भवनों, स्मारकों, मंदिरों और घरों का निर्माण किया गया था। इनसे भी हमें उस समय के लोगों के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

8
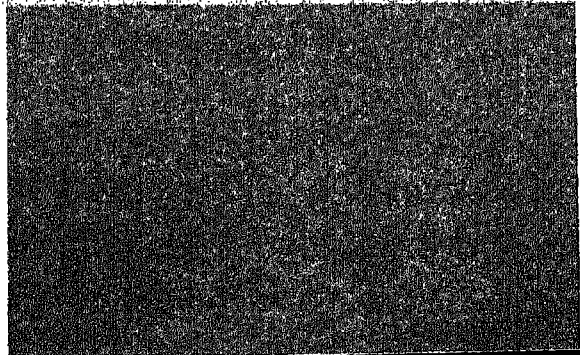
आदि - मानव

हमारी पृथ्वी अरबों वर्ष पुरानी है, लेकिन ऐसा समझा जाता है कि पृथ्वी पर मानव लगभग 40 लाख वर्ष पूर्व अफ्रीका में प्रकट हुए।

कालांतर में वह एशिया और यूरोप में भी फैल गए। आदि-मानव द्वारा उपयोग किए गए औज़ार एवं अन्य वस्तुओं के अवशेष आज भी उपलब्ध हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उस प्रकार के औज़ारों में से कुछ जैसे कुल्हाड़ी, भाला और अनाज पीसने की चक्की आज भी उपयोग में लाए जाते हैं।

काफी समय तक मानव प्रकृति पर निर्भर था। उसने, उसके निकट खान-पान से लेकर जीवन-यापन तक जो भी उपलब्ध था, उसका लाभ उठाया। उस काल को, जब पत्थरों के औज़ार उपयोग किए जाते थे, **पाषाण युग** कहा जाता है। पाषाण युग लंबे समय तक रहा। इसे तीन कालों में विभक्त किया जाता है – **पुरा पाषाण युग, मध्य पाषाण युग** और **नव पाषाण युग**। प्रत्येक काल में मानव ने विशेष प्रकार के पत्थर से बने हथियार उपयोग किए। प्रत्येक काल में उनमें कुछ उन्नति हुई। धीरे-धीरे औज़ार हल्के और आकार में छोटे होने लगे तथा विशेष कार्यों के लिए विशिष्ट औज़ार बनाए जाने लगे।

शिकारी और संग्राहक : पुरा पाषाण और मध्य पाषाण युग

प्रारंभ में मानव को खाद्यान्न उगाना नहीं आता था। वे मूलतः भोजन संग्राहक व शिकारी थे। वे खानाबदोश थे तथा भोजन और आश्रय की तलाश में वे एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमते थे। पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे खूँखार जानवरों से अपने को बचाने के लिए झुण्ड बनाकर रहते थे।

शिकारी और संग्राहक प्रायः पहाड़ी क्षेत्रों, किसी नदी या झील के किनारे रहते थे। भारत में पुरा-ऐतिहासिक पाषाण औज़ार गंगा एवं पंजाब के मैदानी भागों को छोड़कर सब जगह से मिले हैं। पाषाण युग के औज़ार विश्व के अन्य भागों जैसे अफ्रीका, फ्राँस, इंग्लैंड, स्पेन, चीन और पाकिस्तान से भी मिले हैं।

वे इन औज़ारों का उपयोग जानवरों के शिकार, मांस काटने, लकड़ी काटने और कंद-मूल खोदने के लिए करते थे। मानव ने औज़ार बनाने के लिए लकड़ी, हाथी-दाँत और हड्डियों का भी उपयोग किया।

आज भी ऐसे लोग हैं जो शिकार एवं भोजन-संग्रह पर निर्भर हैं। क्या आप ऐसे समूहों की पहचान कर सकते हैं?

लोग जंगली जानवरों, पक्षियों और मछलियों के मांस पर जीवन-यापन करते थे। शहद, फल, कंद-मूल, बीज और गिरियाँ भी उपभोग में लाई जाती थीं। इस प्रकार भोजन के लिए वह पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर था। प्रारंभ में शायद अनपका (कच्चा) भोजन खाया जाता था क्योंकि मानव

पुरा पाषाण युग के औज़ार – कुल्हाड़ी और फाड़ने के औज़ार तथा उनके उपयोग के तरीके

को तब तक आग का उपयोग करना नहीं आता था।

लाखों वर्ष पूर्व पुरा पाषाण युग में ही मानव ने आग का उपयोग करना सीखा और भोजन पका कर खाने लगा। सर्दी में आग उन्हें गर्मी प्राप्त करने में सहायता करती थी। वे इसके इर्द-गिर्द इकट्ठे हो कर बुज़ुर्गों से कहानियाँ सुनते थे। यह उन्हें जंगली जानवरों से भी बचाती थी क्योंकि जानवर आग से डरते हैं।

प्रारंभ में मानव गुफ़ाओं, शैलाश्रयों अथवा खुले में झुण्ड बना कर रहते थे, लेकिन बाद में उन्होंने छोटी झोपड़ियाँ बनाना प्रारंभ कर दिया जो लकड़ी के डण्डों और घास-फूस की छत के सहारे बनती थीं। गुफाओं और शैलाश्रयों में वे अपना खाली समय चित्रकारी और पहाड़ी सतह
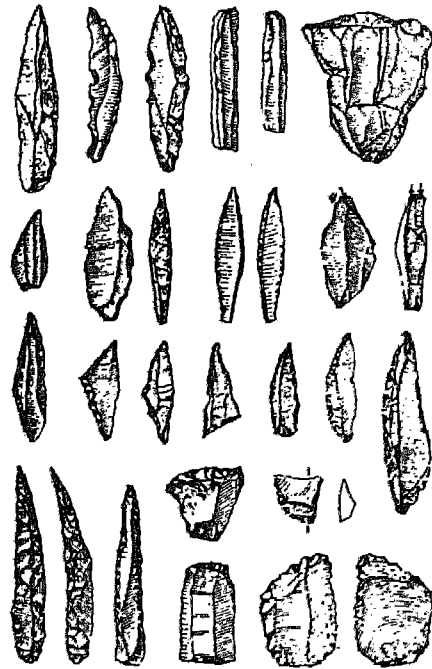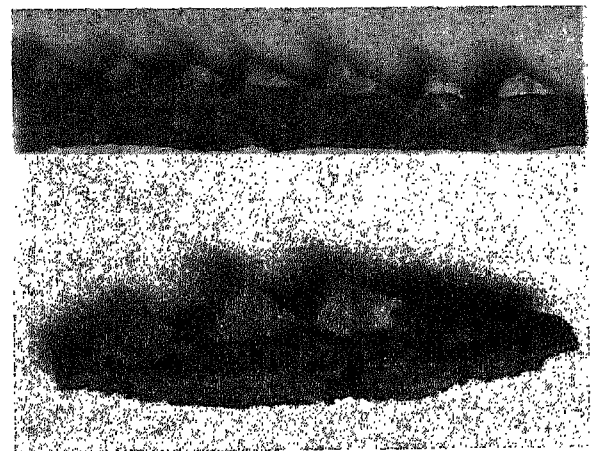
मध्य पाषाण युग के औज़ार

मध्य पाषाण काल के औज़ारों का उपयोग लकड़ी या हड्डियों की मूठ या दस्ता बना कर किया जाता था

मध्य पाषाण युग के भीमबेटका नामक स्थान पर बनी शैल चित्रकारी

पर नक्काशी करने में व्यतीत करते थे। ये चित्र तथा नक्काशी हमें उनके जीवन के विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी देते हैं। इन चित्रों में पशुओं के झुण्ड, नाचते हुए स्त्री-पुरुष, शिकार तथा भोजन एकत्र करने जैसे जीवन के अन्य पहलू दर्शाए गए हैं।

कृषि एवं स्थिर जीवन का प्रारंभ : नव पाषाण युग

लाखों वर्ष तक मानव शिकारी और भोजन संग्राहक का जीवन जीता रहा। लगभग दस हज़ार वर्ष पूर्व उन्होंने अपना भोजन स्वयं पैदा करना सीखना प्रारंभ किया। उन्होंने चावल, गेहूँ, जौ जैसे खाद्यान्नों की खेती करना सीखा। यह खोज लिया गया कि मिट्टी में बीज डालने और सींचने से पौधा उगता है। यह **कृषि** का प्रारंभ था। वे अब कुत्ता, बकरी, भेड़, सूअर तथा अन्य पशु भी पालने लगे। कुत्तों के अतिरिक्त सर्वप्रथम **भेड़** और **बकरी** ही पालतू पशु थे।

कृषि और पशु पालन से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। लोग, कुछ चुने हुए क्षेत्रों जैसे नदी की घाटियों में बस गए क्योंकि वहाँ पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था तथा भूमि उपजाऊ थी। भारत में नव पाषाण युग की कई बस्तियाँ जम्मू-कश्मीर, असम, मेघालय, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा आंध्र प्रदेश में पाई गई हैं।

औज़ार पत्थर से बनते थे जिन्हें घिस कर धारदार बनाया जाता था। उनके द्वारा उपयोग किए कुछ औज़ारों में मिट्टी खोदने के लिए **नोकदार छड़ी**, पेड़ काटने तथा गिराने के लिए **कुल्हाड़ी**, फसल और घास काटने के लिए **हँसिया (दरांती)**, आटा पीसने के लिए **पत्थर की चक्की** सम्मिलित थे। आपको आश्चर्य हो रहा होगा कि वे पैदा किए गए अनाज को रखते कहाँ थे। उन्होंने मिट्टी के बर्तन, विशाल भण्डारक तथा बाँस की टोकरियाँ बनाना सीख लिया था और उनमें अनाज रखते थे। कभी-कभी वे गड्ढ़ा खोदकर अंदर से चूने का पलस्तर कर उसे भण्डारण के लिए उपयोग करते थे।

> कुत्ता ऐसा पहला जानवर था जिसे पालतू बनाया गया।

प्रारंभ में मिट्टी के बर्तन हाथ से बनाए जाते थे तथा उन्हें धूप में सुखा कर भट्ठी में पकाया जाता था। बाद में बर्तन बनाने के लिए चाक का उपयोग किया जाने लगा। पहिये के आविष्कार

नव पाषाण युग के उपकरण

से उल्लेखनीय परिवर्तन आया। कपास तथा ऊन कातने और कपड़ा बुनने में भी इसका उपयोग किया जाने लगा। कुछ समय पश्चात यह परिवहन के साधनों जैसे बैलगाड़ी, रथ इत्यादि में प्रयुक्त होने लगा।

क्या आप कुछ ऐसी गतिविधियों की पहचान कर सकते हैं जिनमें पहिये का उपयोग होता है?

वे पृथ्वी को माँ मानते थे जो अपने बच्चों का पालन-पोषण और जीवन की रक्षा करती है। इसलिए पृथ्वी का सम्मान होना ही चाहिए। माँ देवी के रूप में पृथ्वी की मिट्टी की छोटी-छोटी मूर्तियों को पूजा जाता था। मृतकों को दफ़ना दिया जाता था और कभी-कभी किसी बड़े पात्र में लिटाकर दबा दिया जाता था। मृतक के साथ बर्तन, मनके और औज़ार जैसी वस्तुओं को रखा जाता था। उनका विश्वास था कि मृतक को इनकी आवश्यकता हो सकती है। मृतकों का दाह-संस्कार भी किया जाता था।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) हम अतीत के विषय में कैसे जान सकते हैं? अतीत के अध्ययन के लिए उपयोग में लाए जाने वाले साधनों का वर्णन कीजिए।

(2) पुरातत्व विज्ञान क्या है? अतीत के अध्ययन के लिए कौन से पुरातात्विक साधन हैं?

(3) साहित्यिक साधन क्या हैं? भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए कौन से साहित्यिक साधन हैं?

(4) पाषाण युग का मानव कहाँ रहता था?

(5) पौधों को उगाने और पशुओं को पालतू बनाने से आप क्या समझते हैं?

(6) कृषि के प्रारंभ से जीवन किस प्रकार परिवर्तित हुआ?

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	पुरा पाषाण युग	**(क)**	पाषाण युग का मध्य चरण।
(2)	नव पाषाण युग	**(ख)**	पाषाण युग का प्रथम चरण।
(3)	मध्य पाषाण युग	**(ग)**	पाषाण युग का तृतीय चरण।

3. सही के सामने (✓) तथा गलत के सामने (✗) का चिह्न लगाइए

(1) प्रारंभ में मानव अनपका भोजन खाता था। ( )

(2) पौधों को उगाना तथा पशु-पालन पुरा पाषाण युग में प्रारंभ हुआ। ( )

(3) व्यवस्थित और स्थिर जीवन का प्रारंभ नव पाषाण युग में हुआ। ( )

(4) कुत्ता सबसे पहला पालतू जानवर था। ( )

करने के लिए कार्य

- किसी संग्रहालय में जाकर आदि मानव द्वारा प्रयुक्त औज़ार देखिए।
- पत्रिकाओं अथवा पुरानी पुस्तकों से पुराने औज़ारों तथा प्राप्त हुए विभिन्न अवशेषों के चित्र काट कर चिपकाएँ।
- कुछ औज़ारों के चित्र बनाइए।
- अपनी चित्रकला की कापी में पुरा ऐतिहासिक काल के कुछ चित्र बनाएँ।

9
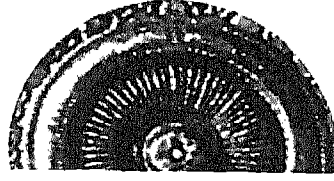
प्रारंभिक गैर-भारतीय

कृषि के प्रारंभ के साथ मानव संस्कृति एवं सभ्यता का विकास तेज़ी से हुआ । शीघ्र ही उसने औज़ार तथा हथियार बनाने के लिए धातुओं का उपयोग सीख लिया। लगभग 7000 वर्ष पूर्व पहली धातु के रूप में **ताँबे** का उपयोग किया गया । कुछ समय बाद उन्होंने ताँबे में थोड़ा टीन मिला कर इसे अधिक कठोर बनाना सीखा क्योंकि ताँबा अपेक्षाकृत अधिक नरम एवं कमज़ोर होता है । इसे **कांस्य** कहा जाता है । धातुओं के उपयोग से उनकी कार्यक्षमता एवं उत्पादन में वृद्धि हुई और इससे विकास के अगले चरण 'सभ्यता' का उद्भव हुआ जिसमें हमें गाँव, नगर, बड़े भवन तथा कला, शिल्प व अभिलेखों के बेहतरीन नमूने मिलते हैं । इसके लिए न केवल लोगों की बड़े पैमाने पर प्रतिभागिता आवश्यक थी अपितु नियम-कानून का पालन तथा राष्ट्र, संस्कृति, समाज और समुदाय का सदस्य होने के नाते दायित्व बोध भी आवश्यक था।

सभ्यताओं के अध्ययन को दो भागों में बाँटा गया है । पहले भाग में आप गैर-भारतीय सभ्यताओं जैसे

मिस्र, रोम, यूनान, मेसोपोटामिया, चीन और ईरान की सभ्यताओं का अध्ययन करेंगे। उसके बाद आप भारतीय सभ्यता का अध्ययन करेंगे जिसका **नव पाषाण** युग से लेकर अब तक लगभग 8000 वर्षों तक का निरंतर इतिहास है। इस पुस्तक में भारतीय इतिहास को कई पाठों में विभक्त किया गया है जिससे आप भारतीय इतिहास और सभ्यता को थोड़ा विस्तार से जान सकें।

आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि केवल चीन और भारत की सभ्यताएँ ही ऐसी हैं जो प्रारंभिक काल से आज तक जीवित हैं। उनमें अपनी अतीत से जोड़ने वाली मूल एवं अंतर करने वाली विशेषताएँ आज भी विद्यमान हैं। अन्य सभी प्रारंभिक सभ्यताएँ लुप्त हो चुकी हैं और आज के लोगों की सभ्यता का अतीत की सभ्यताओं से कोई संबंध नहीं है।

मिस्त्र की सभ्यता

मिस्त्र अफ्रीका के उत्तर-पूर्वी भाग में स्थित है। मिस्त्र की सभ्यता सबसे पुरानी है । यह 7500 वर्ष (5500 ई.पू.) पूर्व विकसित हुई और लगभग 5000 वर्ष तक चली । मिस्त्र का अधिकांश भाग सूखा है और वहाँ कम वर्षा होती है । यह पश्चिम और पूर्व में मरुस्थल से घिरा है । नील नदी पूरे मिस्त्र से बह कर जाती है और भूमध्य सागर में जाकर मिलती है । नील नदी की घाटी मिस्त्र का सर्वाधिक उपजाऊ भाग है । इसी कारण मिस्त्र की सभ्यता का उदय भी यहीं हुआ और यह नील नदी के दोनों किनारों पर विकसित हुई ।

नील नदी के बिना संभवतः मिस्त्र मरुस्थल ही बना रहता । प्राचीन इतिहासकार हेरोडोटस ने मिस्त्र को 'नील नदी का उपहार' कहा है ।

जीवन-शैली

मिस्त्र के राजा को **फ़ैरो** कहा जाता था और उसे **'रे'** नामक देवता का पुत्र माना जाता था । साम्राज्य के कार्यों में कई कर्मचारी फ़ैरो की सहायता करते थे । फ़ैरो के बाद पुजारी, कर्मचारी, कलाकार, हस्त-शिल्पी और किसानों का स्थान था। गुलामों को सबसे निम्न स्थान प्राप्त था। मिस्त्र की महिलाएँ संपत्ति की उत्तराधिकारी तथा स्वामी हो सकती थीं । उन्हें सिंहासन प्राप्त करने तक की अनुमति थी। रानी **हत्शेपुत** मिस्त्र के सिंहासन पर बैठने वाली पहली महिला थीं ।

कृषि उनका मुख्य व्यवसाय था। गेहूँ, जौ, ज्वार तथा कपास की खेती की जाती थी । भेड़, बकरी और सूअर जैसे जानवर पाले जाते थे । व्यापार भी एक मुख्य आर्थिक कार्यकलाप था । सोना, चाँदी, हाथी-दाँत, गेहूँ इत्यादि व्यापार की मुख्य वस्तुएँ थीं । यातायात के साधन के रूप में भू-भाग पर गधों तथा नदियों में नावों का उपयोग होता था ।

मिस्त्र के इतिहास को मुख्यतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है, पुराना साम्राज्य, मध्य साम्राज्य और नवीन साम्राज्य । पुराने साम्राज्य को पिरामिडों का युग भी कहा जाता है ।
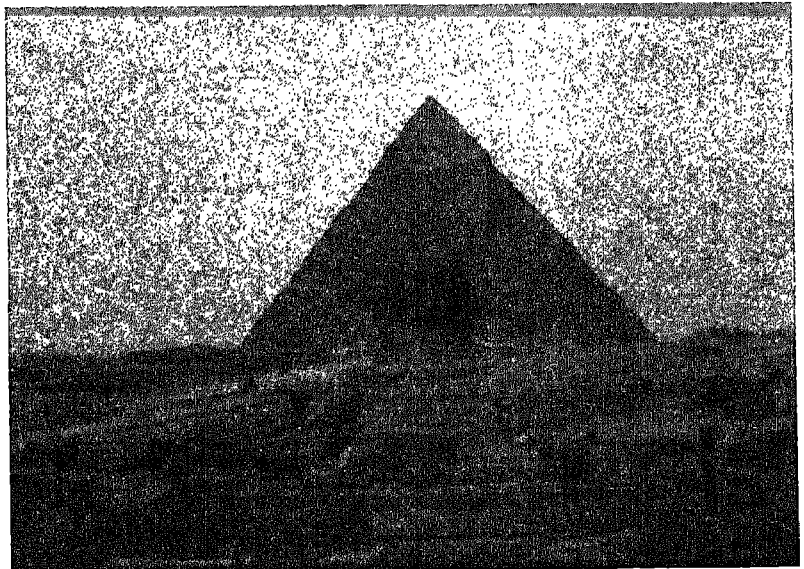
मिस्त्र के पिरामिडों की रक्षा हेतु बनाए गए स्फिंक्स

मिस्र के लोगों के जीवन में धर्म का विशेष स्थान था । सूर्य देवता **'रे'** को सबसे महत्त्वपूर्ण देवता के रूप में माना जाता था । कुछ देवताओं को बाज़, मगरमच्छ इत्यादि के प्रतीक चिह्नों से दर्शाया जाता था । मिस्रवासियों का पुनर्जन्म में विश्वास था । उनका विश्वास था कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य में जीवन रहता है । शरीर को संरक्षित रखने के लिए विशेष प्रबंध किए जाते थे । शरीर के अंदरूनी अंगों को पहले निकाल लिया जाता था और फिर इस पर जड़ी बूटियों और मसालों का लेप किया जाता था । उसके बाद कपड़े की पट्टियों में लपेटकर रखा जाता था । इसे **ममीकरण** कहा जाता था । इसके पश्चात शरीर को एक ताबूत में सजा कर पिरामिड में रखा जाता था । मृत शरीर के साथ ऐसी कई वस्तुओं को, जो मृतक उपयोग में लाता था, इस विश्वास के साथ रख दिया जाता था कि मृतक को उनकी आवश्यकता होगी ।
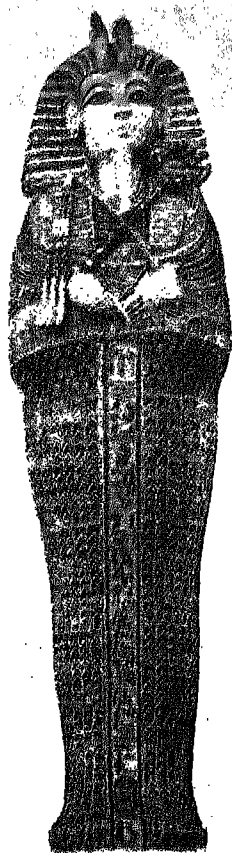
मिस्र के राजा तूतनखामन का ताबूत

योगदान

मिस्र की लिपि चित्रात्मक है जिसे **हेरोग्लिफ़** कहते हैं । इसमें लगभग 600 चिह्न थे । वे सरकंडे से बनी कलम से लिखते थे । वे **पेपीरस** की छाल पर लिखते थे जिससे हमें 'पेपर' शब्द प्राप्त हुआ । यह हमारे यहाँ के भुर्जपत्र की तरह था।
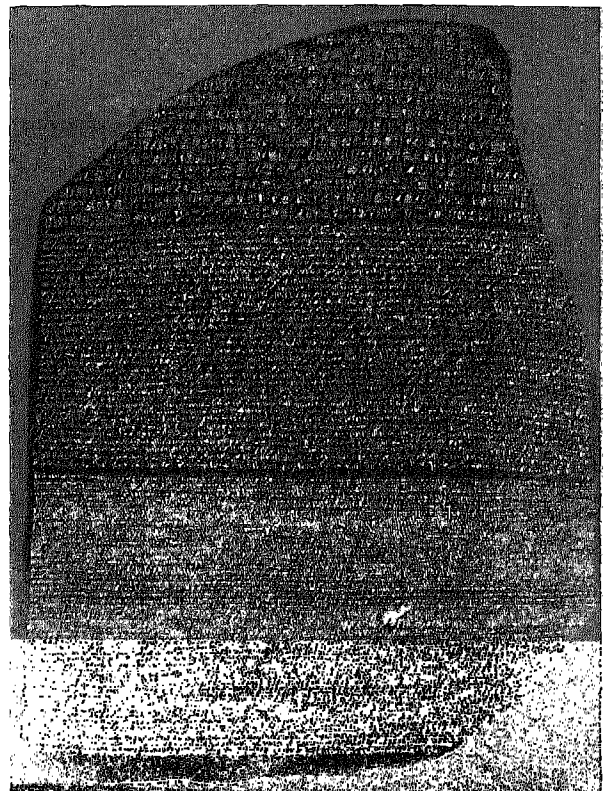
तीन लिपियों में रोजेट्टा पाषाण अभिलेख

मिस्र के सबसे प्रभावशाली स्मारक **पिरामिड** हैं जो त्रिभुजाकार ढाँचे के हैं । फ़ैरो **खुफु** और **खाफ्रे** के पिरामिड देखने योग्य हैं । वे काहिरा के निकट गीज़ा में स्थित हैं । सन् 1920 के दशक में **तूतनखामन** का मकबरा ठीक अवस्था में पाया गया था। जैसा कि और मकबरों के साथ हुआ था,

मिस्री अभिलेख

तूतनखामन के मकबरे में लूट-पाट नहीं हुई थी। इस मकबरे में सोने की कई वस्तुएँ जैसे सिंहासन, ताबूत, संदूकची, गहने इत्यादि पाए गए थे ।

गीज़ा में **स्फिंक्स** मिस्र की मूर्तिकला का श्रेष्ठ उदाहरण है । स्फिंक्स एक पौराणिक जानवर है जिसका सिर मानव का और धड़ शेर का होता है। स्फिंक्स पिरामिड की रक्षा के लिए होता था।

एक प्रसिद्ध पत्थर **रोजेट्टा** नील नदी के निकट खोजा गया जिस पर तीन लिपियों में अभिलेख खुदे थे । **शैंपोलियाँ** नामक फ्राँसीसी व्यक्ति ने इस लिपि को समझने की विधि खोज निकाली ।

मिस्रवासियों ने मंदिर भी बनवाए । कार्णाक और अबू सिंबल के मंदिर देवताओं, राजाओं और

बाँध के निर्माण से अबू सिंबल और कार्णाक के मंदिरों को खतरा था । दोनों ही नील नदी के किनारे पर स्थित थे । भारत सहित कई देशों के पुरातत्व वैज्ञानिकों के एक दल ने उन स्मारकों को एक सुरक्षित स्थान पर स्थानांतरित करने में सहायता की ।

दैनिक जीवन को दर्शाते हुए विभिन्न दृश्यों की मूर्तियों से सुसज्जित हैं ।

चंद्र एवं सूर्य की गणनाओं पर आधारित मिस्र के पंचांग (कैलेण्डर) में बारह मास और हर मास में तीस दिन निश्चित थे। वे एक वर्ष में 360 दिन और पाँच दिन **अनुपूरक भोज** के मानते थे । **जूलियस सीज़र** ने मिस्रवासियों के इस कैलेण्डर को अपनाया और रोम के कैलेण्डर में 365 दिन सम्मिलित किए । मिस्र का **नया वर्ष सिरियस** तारे के उदय से प्रारंभ होता है ।
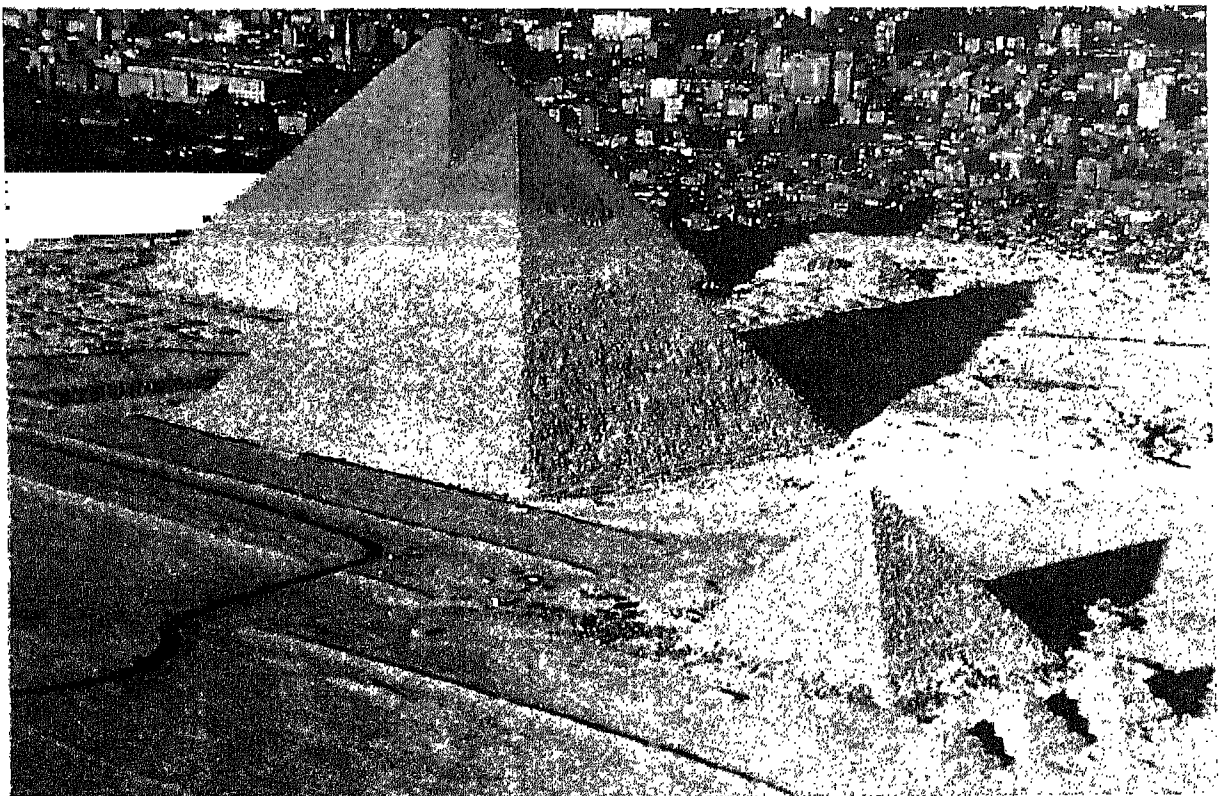
मिस्र के पिरामिड

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) मिस्र की सभ्यता को 'नील नदी का उपहार' क्यों कहा जाता है?
(2) फ़ैरो कौन थे?
(3) मिस्रवासियों के धार्मिक विश्वास क्या थे?
(4) ममी और पिरामिड से आप क्या समझते हैं?
(5) अबू सिंबल का मंदिर किन कारणों से प्रसिद्ध है?

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	पिरामिड	**(क)**	राजा
(2)	फ़ैरो	**(ख)**	नव वर्ष का प्रारंभ
(3)	चित्र-लेख (हेरोग्लिफ़)	**(ग)**	मकबरा
(4)	सिरियस तारे का उदय	**(घ)**	लिपि

3. सही के सामने (✔) तथा गलत के सामने (✘) का चिह्न लगाइए

(1) मिस्र की सभ्यता नील नदी के किनारे पल्लवित हुई । ( )
(2) स्फिंक्स का अर्थ है 'महल' । ( )
(3) फ़ैरो सूर्य देवता 'रे' के पुत्र माने जाते हैं । ( )
(4) मिस्र के लोगों ने लिखने के लिए पेपीरस का उपयोग किया। ( )

करने के लिए कार्य

- मिस्र के स्मारकों और वस्तुओं के चित्र एकत्रित कर एक कोलाज तैयार कीजिए ।
- अपनी चित्रकला की कापी में कुछ स्मारकों के रेखाचित्र बनाइए ।

मेसोपोटामिया की सभ्यता

मेसोपोटामिया (वर्तमान इराक और ईरान के कुछ क्षेत्र) पश्चिमी एशिया में स्थित है । इस क्षेत्र में 7000 वर्ष पूर्व (5000 ई.पू.) एक सभ्यता का विकास हुआ जो 500 ई.पू. तक चलती रही । मेसोपोटामिया का अर्थ है दो नदियों के बीच का भू-भाग। ये दो नदियाँ हैं – **दजला** एवं **फ़रात**। ये नदियाँ फ़ारस की खाड़ी में जाकर मिलती हैं । मेसोपोटामिया दक्षिण और पश्चिम में सीरिया तथा अरब के मरुस्थल और उत्तर में ज़ैगरोस और कुर्द की पहाड़ियों से घिरा हुआ है। इस क्षेत्र की भूमि अति उपजाऊ है । मेसोपोटामिया के लोगों ने इन नदियों से खेतों तक पानी लाने के लिए नहरें बनाई थीं । चूँकि मेसोपोटामिया में बरसात की हमेशा कमी रही है, अतः वहाँ के लोगों ने पानी के महत्त्व को समझा और उसे बचाने के लए बाँध भी बनाए।

जीवन-शैली

मेसोपोटामिया की सभ्यता के विकास में मुख्य भूमिका निभाने वाले **सुमेर** के लोग थे। वे दक्षिणी मेसोपोटामिया में बस गए थे । उर, उरूक, लगाश,- बेबीलोन और निनवेह मेसोपोटामिया के कुछ प्रमुख नगर थे। मेसोपोटामिया के लोग तीन सामाजिक वर्गों में बँटे हुए थे। पहले वर्ग में पुरोहित, सरकारी अधिकारी और सैनिक थे । इस वर्ग के लोग राज्य की सुरक्षा, प्रशासन तथा समाज व राज्य के कल्याण का कार्य देखते थे । दूसरे वर्ग में व्यापारी, व्यवसायी और मज़दूर श्रेणी के लोग थे जो समाज के आर्थिक पक्ष का ध्यान रखते थे और उनके बाद दास थे जिन्हें कृषि, दस्तकारी और व्यापार में काम पर लगाया जाता था । कपड़ा, औज़ार, हथियार, बर्तन और दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुओं का निर्माण करना, उनके प्रमुख उद्योग थे । उनके हड़प्पा तथा मिस्र सभ्यताओं के साथ व्यापारिक संबंध थे । व्यापार समुद्र और नदियों के जलमार्ग तथा भू-मार्ग दोनों से होता था । यातायात के लिए उनके पास नावें तथा बैलगाड़ियाँ थीं ।

मेसोपोटामिया की सभ्यता के प्रमुख चरण सुमेर, बेबीलोन, एसीरिया और क्लेडिया की सभ्यताएँ थीं ।

मेसोपोटामिया के लोग **एन, एनलिल, एंकी, मार्दुक, इस्तान** तथा **नाबू** आदि देवताओं की पूजा करते थे। मेसोपोटामिया के प्रत्येक नगर के अपने अलग देवी-देवता थे । नगर के प्रमुख देवता के सम्मान में **ज़िगुरात (मंदिर)** बना होता था । मेसोपोटामिया के लोग मृत्यु के बाद भी जीवन में विश्वास करते थे । मृतकों को, उनके द्वारा जीवन में उपयोग की गई वस्तुओं के साथ दफ़नाया जाता था । पुरोहितों के लिए शिक्षा आवश्यक थी क्योंकि उन्हें प्रशासनिक एवं धार्मिक कार्य देखने होते थे ।

योगदान

सुमेरिया के लोग **लेखन कला** को विकसित करने में अग्रणी थे । उन्होंने मिट्टी की छोटी -छोटी पट्टियों

पर और बाद में पत्थरों तथा अन्य सामग्री पर भी लिखा । विचार व्यक्त करने के लिए चित्रों अथवा संकेतों का उपयोग किया जाता था । इसे **कीलाकार** लिपि अथवा नुकीली लेखन विधि कहा जाता था। बहुत-से **नुकीले पच्चरों** के मेल से प्रतीक बनता था। वे एक नहन्नी जैसे तेज़ धारदार कलम से लिखते थे जिसे **स्टाईलस** कहा जाता था ।

हम्मूराबी की विधि संहिता   *मेसोपोटामिया का अभिलेख*

हेनरी रालिन्सन नामक एक ब्रिटिश अधिकारी कीलाक्षरों को पढ़ना चाहता था । उसने एक ऊँची चट्टान पर बेहिस्तून नामक शिलालेख खोजा। प्रत्येक सुबह वह पहाड़ पर जाया करता और पूरा दिन इसकी नकल किया करता । इस काम में उसे कई दिन लगे । लेकिन लिपि को पढ़ने में उसे 12 वर्ष लग गए । उसके इस प्रयास ने मेसोपोटामिया की सभ्यता के प्रति हमारे ज्ञान को समृद्ध किया है ।

बेबीलोन के राजा **हम्मूराबी** ने मेसोपोटामिया का एकीकरण किया और **कानूनों** की एक नियमावली लागू की जिसे हम्मूराबी की विधि संहिता कहते हैं। लोगों और उनकी गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए कानूनों की आवश्यकता थी । ये कानून गिनती में 282 थे । इस नियमावली के अंतर्गत समाज को अमीर, साधारण और दास की तीन श्रेणियों के रूप में विभाजित किया गया। समान अपराध के लिए विभिन्न श्रेणियों के लिए दंड के अलग-अलग प्रावधान थे ।

मेसोपोटामिया के लोग धातु के बर्तन, बहुमूल्य तथा कम मूल्य के पत्थरों से सुंदर गहने बनाते थे।
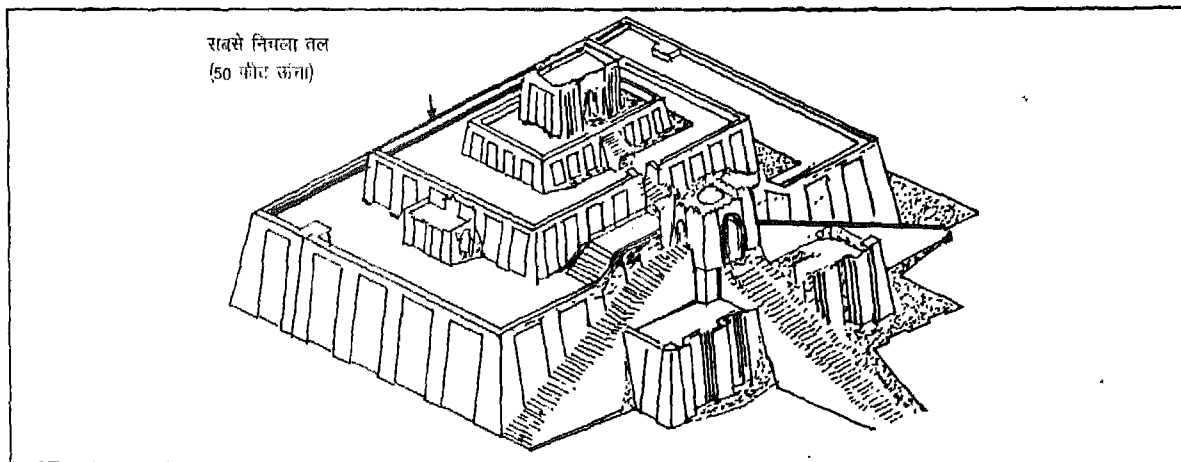
ज़िगुरात की भवन योजना

वे मोहरें एवं मूर्तियाँ बनाने तथा शिलाओं पर खुदाई करने में सिद्धहस्त थे। **ज़िगुरात** मेसोपोटामिया की कला के सुंदर नमूने हैं जिन्हें पिरामिड के आकार में बनाया गया था। ऊँचाई पर निर्मित इन मंदिरों तक जाने के लिए बहुत-सी सीढ़ियाँ होती थीं। ज़िगुरात के साथ स्कूल, आवासीय तथा प्रशासनिक भवन भी जुड़े होते थे। बेबीलोन में कृत्रिम रूप से बनाए गए चबूतरों पर एक सुंदर लटकता हुआ बगीचा ***(हैंगिंग गार्डन)*** भी था ।

गणित के क्षेत्र में मेसोपोटामिया के लोगों ने गुणा और भाग की पद्धति खोजी । मेसोपोटामिया के कैलेंडर को **चंद्र पंचांग** कहते हैं क्योंकि लोग दिनों की गणना चाँद के चक्र से करते थे । इस प्रकार उनके अनुसार महीने में 29½ दिन होते थे। जिससे वर्ष के 12 महीनों में केवल 354 दिन बनते थे जो आधुनिक कैलेंडर से 11 दिन कम है।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए

(1) मेसोपोटामिया का क्या अर्थ है?
(2) मेसोपोटामिया के कौन से नगर प्रसिद्ध थे?
(3) मेसोपोटामिया के देवता कौन थे?
(4) ज़िगुरात क्या है?
(5) हम्मूराबी इतिहास में क्यों प्रसिद्ध है?

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	कीलाक्षर	**(क)**	नगर
(2)	ज़िगुरात	**(ख)**	राजा
(3)	हम्मूराबी	**(ग)**	मंदिर
(4)	बेबीलोन	**(घ)**	लिपि

3. सही कथन के सामने (✔) तथा गलत कथन के सामने (X) का चिह्न लगाइए

(1) मेसोपोटामिया की सभ्यता आधुनिक इराक और ईरान में विकसित हुई। (   )
(2) मेसोपोटामिया के लोगों के हड़प्पा से व्यापारिक संबंध थे । (   )
(3) मेसोपोटामिया का पंचांग सूर्य पंचांग था । (   )
(4) लटकता हुआ बगीचा बेबीलोन में नहीं था । (   )

करने के लिए कार्य

* मेसोपोटामिया से संबंधित स्मारक एवं वस्तुओं के चित्र एकत्रित करके एक कोलाज बनाइए ।
* ज़िगुरात का रेखाचित्र बनाइए ।

यूनानी सभ्यता

यूरोप की पहली सभ्यता दो हज़ार वर्ष पूर्व भूमध्य सागरीय क्षेत्र के पूर्वी भाग में विकसित हुई। सर्वप्रथम क्रीट द्वीप पर **मिनोस की सभ्यता** प्रारंभ हुई। तत्पश्चात यूनान के मुख्य भू-भाग पर **माइसीनिया की सभ्यता** का विकास हुआ। यूनान तीन ओर से एजियन सागर, आयोनियाई सागर और भूमध्य सागर से घिरा हुआ है। यूनान का अधिकांश भू-भाग पहाड़ी क्षेत्र है जिसमें कृषि योग्य भूमि थोड़ी सी है। देश को नगर-राज्यों में विभक्त किया हुआ था जिन्हें पोलिस कहते थे। यूनानी सभ्यता को तीन मुख्य भागों में बाँटा गया है –

हेलेडिक - कांस्य युग : मिनोस एवं माइसीनियाई सभ्यताएँ

हेलेनिक - लौह युग : माइसीनियाई सभ्यता तथा प्राचीन यूनानी सभ्यता

हेलेस्टिक युग : सोक्रेटीज़ एवं सिकंदर का काल-यूनान की सीमाओं के बाहर विस्तार

मिनोस सभ्यता का उद्‌भव लगभग 3400 ई.पू. में हुआ और यह 1400 ई.पू. तक रही। माइसीनियाई सभ्यता का विकास लगभग 2000 ई.पू. में ग्रीस में हुआ और यह लौह युग में भी लगभग 800 ई.पू. तक चलती रही।

जीवन-शैली

यूनान के नगर-राज्यों को **पोलिस** कहा जाता था। प्रत्येक नगर-राज्य में एक किला होता था और उसके इर्द-गिर्द नगर बसा होता था। स्पार्टा, एथेंस, थीव्स और कॉर्निथ इसके प्रमुख नगर-राज्य थे। प्रारंभ में नगर-राज्यों पर राजा शासन करते थे जिसे **राजतंत्र** कहते थे। बाद में राजनैतिक परिवर्तनों के कारण लगभग 500 ई.पू. में एक नए प्रकार के शासन तंत्र की स्थापना हुई। इसे **लोकतंत्र** कहा गया जिसका अर्थ था लोगों की सरकार। एथेंस यूनानी लोकतंत्र के सबसे श्रेष्ठ उदाहरणों में से एक था। एथेंस के लोकतंत्र की आधारशिला रखने वाले थे– **क्लीस्थनीज़** और **पेरिक्लीज़**।

भारत विश्व के विशालतम लोकतांत्रिक देशों में से एक है।

वर्तमान काल में लोग अपने प्रतिनिधि चुनते हैं जो उनकी ओर से शासन चलाते हैं। प्राचीन यूनानी लोकतंत्र का अर्थ था **एसेंबली** की बैठकों में लोगों की प्रतिभागिता। केवल **नागरिकों** को ही सभा (एसेंबली) में बैठने और मत देने का अधिकार था। जो पोलिस के मूल निवासी नहीं थे उन्हें नागरिक नहीं माना जाता था। गुलाम और महिलाओं को नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। एक परिषद् भी हुआ करती थी जिसमें प्रमुख कबीलों के मुखिया
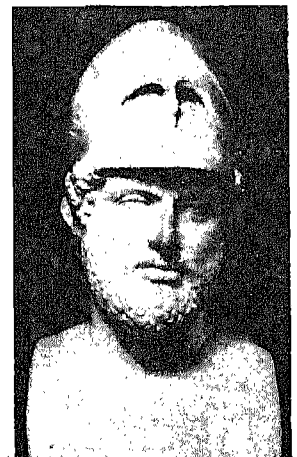
पेरिक्लीज़

एवं लोग होते थे। यह एसेंबली को सुचारु रूप से चलाने में सहायता करती थी । सभी वयस्क युवकों के लिए सैनिक सेवा करना अनिवार्य था।

कृषि उनका मुख्य व्यवसाय था । गेहूँ, जैतून और अलसी जैसी मुख्य फसलों की खेती होती थी । भेड़, बकरियाँ और सूअर पाले जाते थे । व्यापार मुख्यतः समुद्री और नदी मार्ग से होता था । सोना, चाँदी, जैतून का तेल, गेहूँ, शराब इत्यादि व्यापार की मुख्य वस्तुएँ थीं । लेन-देन एवं व्यापार के लिए सिक्कों का उपयोग एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी ।

आजकल किसी भी रूप में दास-प्रथा का प्रचलन निषेध है। यह मानव अधिकारों का हनन माना जाता है।

समाज नागरिक, स्वतंत्र अनागरिक और गुलामों की **तीन श्रेणियों** में बँटा हुआ था। गुलाम मज़दूरों का बड़े पैमाने पर उपयोग करने वालों में यूनान प्रथम था । उन्हें कृषि, खनन, हस्तशिल्प उत्पादन, घरेलू और छोटे कार्यों में लगाया जाता था । गुलामों के साथ बहुत अमानवीय व्यवहार किया जाता था ।

त्योहार बड़े पैमाने पर मनाए जाते थे । इन त्योहारों में लोग अपने देवी -देवताओं की पूजा के लिए एकत्रित होते थे । त्योहारों में संगीत, रंगमंच और खेलों का बहुत महत्त्व होता था । ओलंपिया में ज़्यूस उत्सव के अवसर पर प्रत्येक चार वर्ष में **ओलंपिक खेल** आयोजित किए जाते थे । अतः आजकल होने वाले ओलंपिक खेलों की शुरुआत प्राचीन यूनान से हुई थी ।

यूनानी देवता अपोलो

देवताओं के सम्मान और आदर में बड़े भव्य मंदिर बनाए गए जैसे कि एथेंस में **पार्थेनोन** ।

अरस्तू

यूनान के लोग कई देवताओं की पूजा करते थे । उनकी मान्यता थी कि ये देवता थेस्ले में माऊंट ओलंपस पर रहते हैं । इसलिए उन्हें **ओलंपियन देवता** कहा जाता था । ज़्यूस, पोसीदन और अपोलो कुछ देवता हैं जिनकी पूजा की जाती थी । **ज़्यूस** को देवताओं का राजा माना जाता था । नगरों के अपने-अपने देवी-देवता होते थे । उदाहरण के लिए **एथीना** एथेंस की संरक्षक देवी थी ।
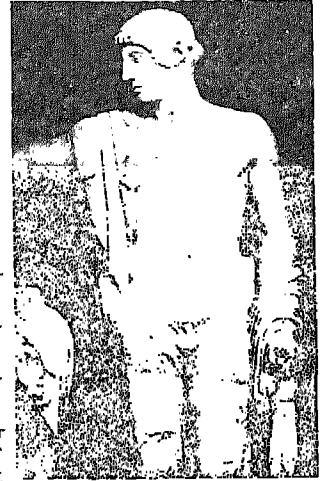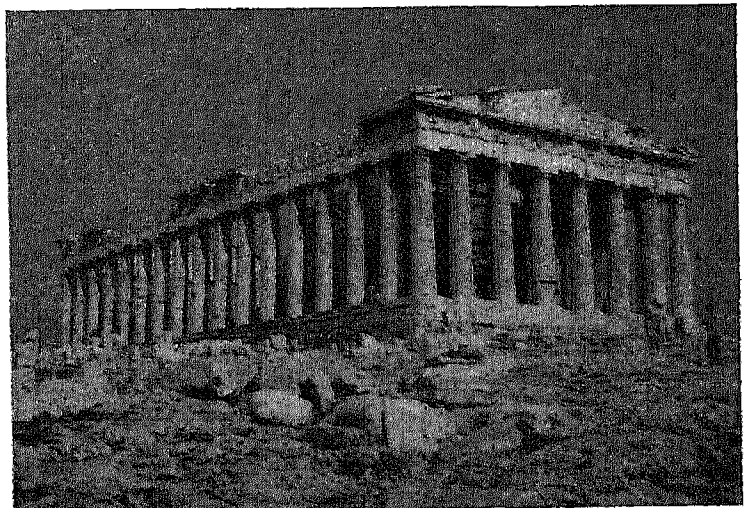
पार्थेनोन का मंदिर

योगदान

दार्शनिकों में **सुकरात, प्लेटो** और **अरस्तू** यूनान के प्रमुख दार्शनिक थे । सुकरात एक महान विचारक था । प्लेटो का विश्वास था कि ज्ञान सद्व्यवहार की ओर तथा अज्ञान बुराई की ओर ले जाता है। अरस्तू दार्शनिक और वैज्ञानिक दोनों ही थे ।

साहित्य के क्षेत्र में यूनान का महाकाव्य, कविता, नाटक एवं इतिहास में उल्लेखनीय योगदान रहा । **इलियड** और **ओडिसी** होमर द्वारा लिखे गए प्रसिद्ध महाकाव्य हैं । यह भारतीय **रामायण** और **महाभारत** जैसे ही हैं । यूनानियों को विश्व के पहले इतिहासकारों के रूप में माना जाता है । **हेरोडोटस** को 'इतिहास का जनक' माना जाता है ।

यूनानियों ने गणित के क्षेत्र में विशेषतः ज्यामिति के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । **थेल्स, यूक्लिड** एवं **पाईथागोरस** ने ज्यामिति विज्ञान को विकसित किया । **हिप्पोक्रेट्स** को पश्चिमी औषधि विज्ञान का पिता माना जाता है । उसने चिकित्सिकीय दवाओं की आधारशिला रखी और शल्य-क्रिया को समुन्नत किया । **अरिस्टार्कस** ने पृथ्वी और अन्य ग्रहों के सूर्य के इर्द-गिर्द घूमने के सिद्धांत को प्रचारित किया, लेकिन यह विचार सोलहवीं सदी तक स्वीकार नहीं किया गया। **इरेटोस्थिनीज़** ने विश्व का मानचित्र तैयार किया। एलेक्ज़ेंड्रिया शिक्षा और ज्ञान का एक बड़ा केंद्र था ।

यूनानियों ने मंदिर और भवन बनवाए और वे मूर्तिकला में सबसे आगे थे । देवी **एथेना** को समर्पित मंदिर पार्थेनोन में था । मूर्तिकला में उन्होंने मानव आकृतियाँ, विशेष रूप से खिलाड़ियों एवं देवी-देवताओं की आकृतियाँ बनाईं ।

मैसीडोनिया के राजा **फ़िलिप** और उसके पुत्र **एलेक्ज़ेंडर (सिकंदर)** ने यूनान की महानता को स्थापित किया । एलेक्ज़ेंडर ने नील नदी के मुहाने पर **एलेक्ज़ेंड्रिया** नगर की स्थापना की । उसकी विजय-यात्रा उसे उत्तर -पश्चिमी भारत की सीमाओं तक ले आई जहाँ उसने झेलम के किनारे राजा पोरस को परास्त किया । भारत से लौटते समय एलेक्ज़ेंडर की 32 वर्ष की अल्पायु में बेबीलोन में मृत्यु हो गई । बाद में रोम की विजय के कारण यूनान रोम साम्राज्य का एक भाग बन गया।

 अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) पोलिस क्या था?

(2) यूनानी लोकतंत्र से क्या अभिप्राय है?

(3) ओलंपिक खेलों के विषय में लिखिए ।

(4) यूनानी देवताओं के नाम लिखिए ।

(5) एलेक्ज़ेंडर (सिकंदर) क्यों प्रसिद्ध है?

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	पार्थेनोन	(क)	होमर
(2)	इलियाड और ओडिसी	(ख)	मंदिर
(3)	इतिहास	(ग)	नगर
(4)	एलेक्ज़ेंड्रिया	(घ)	हेरोडोटस

3. सही कथन के सामने (✓) तथा गलत कथन के सामने (✕) का चिह्न लगाइए

(1) मिनोस सभ्यता क्रीट द्वीप पर विकसित हुई । (   )

(2) क्लीस्थनीज़ को यूनानी लोकतंत्र का पिता कहा जाता है । (   )

(3) अरस्तू यूनान का राजा था । (   )

करने के लिए कार्य

* यूनानी स्मारकों एवं मूर्तियों का एक कोलाज बनाइए ।
* अपनी चित्रकला की कॉपी में कुछ स्मारकों के रेखाचित्र बनाइए ।

एक माइसेनी, सुनहला मुखौटा

रोम की सभ्यता

प्राचीन समय में यूनान के बाद रोम की सभ्यता यूरोप की महान सभ्यताओं में से एक थी । रोम की सभ्यता का उद्‌भव इटली में हुआ । यह 600 ई.पू. के बाद पल्लवित हुई । रोम की सभ्यता के विकास में भौगोलिक स्थितियों ने भरपूर सहयोग दिया ।
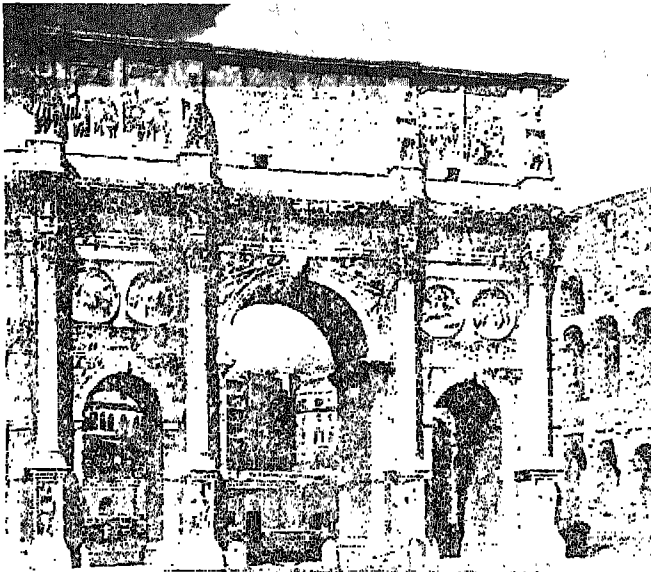
कांस्टेनटाइन का मेहराब

जीवन-शैली

इटली की राजधानी रोम टाइबर नदी पर स्थित है । पुराने रोमवासियों की भाषा लैटिन थी । रोमवासियों ने एक नए प्रकार की सरकार की स्थापना की जिसे **रिपब्लिक (गणतंत्र)** कहा जाता है । **सीनेट** राज्य की गतिविधियों पर नज़र रखती थी। सीनेट के अधिकांश सदस्य आभिजात्य वर्ग के तथा ज़मींदार लोग थे ।

रोम का समाज दो श्रेणियों में बँटा हुआ था – **पैट्रीशियंस** (उच्च वर्ग) एवं **प्लेबियंस** (सामान्य वर्ग)। पैट्रीशियंस में आभिजात्य और बड़े ज़मींदार थे। वे सत्ता एवं सुविधा का सुख भोगते थे । प्लेबियंस में छोटे किसान, दस्तकार, व्यापारी और सैनिक थे । उनके पास मात्र कुछ कानूनी अधिकार थे और वे कर देने को विवश थे । बाद में उन्होंने विद्रोह किया और कुछ रियायतें प्राप्त कीं । पुराने रोमन कानूनों को बारह सूत्री कानून कहा जाता है ।

धनी लोग भव्य मकानों में रहते थे और अपना समय खाने-पीने और मनोरंजन में व्यतीत करते थे । **ग्लैडियेटोरियल** प्रतियोगिता ऐसा ही लोकप्रिय मनोरंजन था । यह एक मनुष्य और जानवर के बीच लड़ाई थी । ग्लैडियेटोरियल प्रतियोगिताएँ अधिकतर विशाल अथवा गोलाकार रंगशाला (कोलोसियम) में आयोजित की जाती थीं ।

रोम के कुछ महत्त्वपूर्ण सम्राटों में **जूलियस सीज़र** और **ओक्टेवियन सीज़र** थे। ओक्टेवियन ने कई सुधार लागू किए । रोम के लोग **जुपीटर**, **मिनर्वा** और **वीनस** इत्यादि की पूजा करते थे ।

जूलियस सीज़र

योगदान

रोम का कानून मानव समाज को रोमवासियों की अमिट देन है । आज भी

यूरोप में रोम की कानूनी शब्दावली का उपयोग किया जाता है। रोम के कानूनों की तीन शाखाएँ थीं – **नागरिक कानून, मानव कानून** और **प्राकृतिक कानून** ।

नागरिक कानून रोम और उसके नागरिकों पर लागू होते थे । मानव कानून एक दर्शन की उपज थी जिसके अनुसार प्राकृतिक रूप से सभी मनुष्य एक समान हैं और वे कुछ मौलिक अधिकारों के हकदार हैं । **सिसरो** को प्राकृतिक कानूनों का जनक कहा जाता है ।

रोम के भवन शक्ति और वैभव के प्रतीक के रूप में निर्मित किए जाते थे । सामान्यतः इनके लिए ईंट, पत्थर के बड़े टुकड़े और कंक्रीट का उपयोग किया जाता था । रोम की वास्तुकला के श्रेष्ठ उदाहरण विशाल मंच एवं गोलाकार रंगशालाएँ हैं। मूर्तिकला में सम्राटों और देवताओं इत्यादि की अर्धप्रतिमा तथा मानवाकार मूर्तियाँ सम्मिलित थे ।

रोमवासियों ने पानी की बड़ी नहरों का निर्माण किया जिन्हें **एक्वाडक्ट्स** कहा जाता है । ये निकटवर्ती पहाड़ियों से नगरों तक पानी लाने के लिए निर्मित की गई थीं ।

रोमवासी यूनानी दर्शन का अनुसरण करते थे । ल्यूक्रेटियस, सिसरो, मारकस, आर्लियस और सेनेका कुछ प्रख्यात विचारक थे । **टैसीटस** रोम का एक प्रसिद्ध इतिहासकार था । **प्लिनी** ने विज्ञान का विश्व-कोश बनाया था । इसे **प्राकृतिक इतिहास** कहा जाता है ।
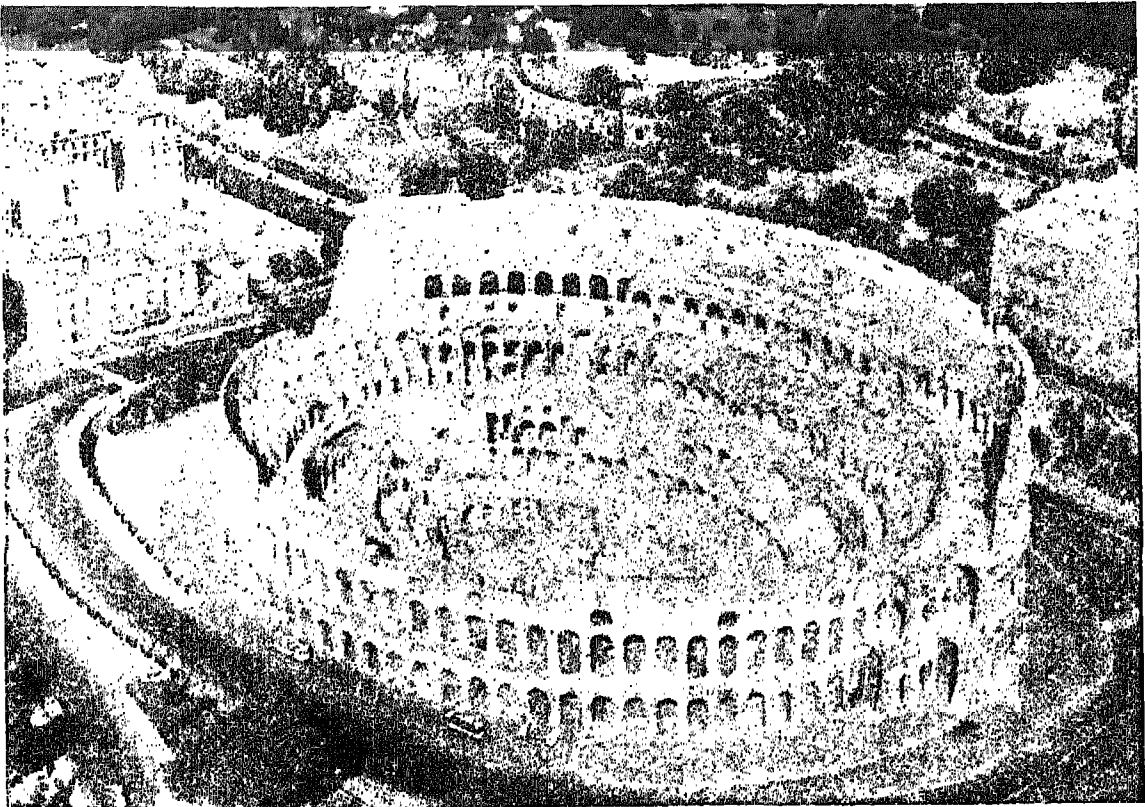
रोम की गोलाकार रंगशाला (कोलोसियम)

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) आप गणतंत्र (Republic) से क्या समझते हैं?

(2) रोम के समाज पर संक्षिप्त नोट लिखिए ।

(3) ग्लैडियेटोरियल प्रतियोगिता क्या है?

(4) जूलियस सीज़र क्यों प्रसिद्ध है?

(5) रोम के कानून क्या हैं?

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	कोलोसियम	(क)	इतिहासकार
(2)	एक्वाडक्ट्स	(ख)	पानी की नहरें
(3)	टैसीटस	(ग)	रंगशाला

3. सही कथन के सामने (✓) तथा गलत कथन के सामने (✗) का चिह्न लगाइए

(1) रोम टाइबर नदी के किनारे स्थित है । (   )

(2) सीनेट राजनीतिक संस्था नहीं थी । (   )

(3) आगस्टस रोम का प्रसिद्ध राजा था । (   )

(4) रोमवासी ग्रीक भाषा का उपयोग करते थे । (   )

करने के लिए कार्य

* रोम के स्मारकों के कुछ चित्र एकत्रित कर एक कोलाज बनाइए ।
* प्राचीन भारत और रोम से संबंधित कुछ सामग्री एकत्रित कीजिए ।
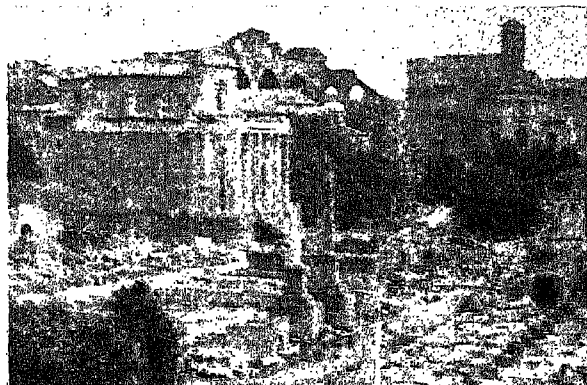
रोम के एक विशाल मंच (फोरम) के अवशेष

चीन की सभ्यता

चीन की सभ्यता का उदय **ह्वांगहो** नदी के तटों पर हुआ । ह्वांगहो का अर्थ है पीली नदी । इसके साथ की भूमि अत्यधिक उपजाऊ एवं कृषि योग्य है । इस नदी को भयानक बाढ़ों एवं बार-बार अपना रास्ता बदलने के लिए भी जाना

चीनी अपनी सभ्यता का वर्गीकरण वंशावली के आधार पर करते हैं । इनके प्रारंभिक वंश थे– शांग, चाऊ, चिन और हान।

जाता है । इससे जीवन और संपत्ति को क्षति पहुँचती है । इसी कारण इस नदी को **'चीन का शोक'** भी कहते हैं । चीनी सभ्यता का प्रारंभिक विकास **शांग** राजकुल के समय में हुआ । शांग की राजधानी अन्यांग थी ।

शांग वंश ने 1750 से 1100 ई.पू. तक राज्य किया । उसके बाद **चाऊ वंश** का काल आया जिसने 1100 से 256 ई.पू. तक राज्य किया। चाऊ काल को चीन का **उत्कर्ष काल** भी कहते हैं क्योंकि इस अवधि में चीन की संस्कृति विकास की नई ऊँचाइयों तक पहुँची । चाऊ वंश के बाद **चिन वंश** ने केवल 14 वर्ष तक राज्य किया । इन वर्षों ने चीन की संस्कृति और इतिहास पर स्थायी प्रभाव डाला । चिन वंश के राजा **शी-हुआँग-ती** ने देश को एक किया, नौकरशाही को केंद्रीकृत किया तथा एक समान मुद्रा एवं लेखन पद्धति को प्रचलित किया । इस के पश्चात **हान वंश** सत्ता में आया । हान वंश ने 220 ई. तक शासन किया । इन सभी राजकुलों के शासन काल में चीनी समाज का मूल स्वरूप लगभग एक-सा रहा ।

जीवन-शैली

कृषि मुख्य व्यवसाय था । वे ज्वार, बाजरा, गेहूँ तथा चावल की फसलें उगाते थे । दुधारू पशु, भेड़-बकरियाँ तथा मुर्गियाँ पाली जाती थीं । वे **रेशम** के कीड़े पालना भी जानते थे । रेशम उत्पादन एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक स्रोत बन गया था । चीन के लोग चीनी मिट्टी के सुंदर बर्तन बनाने में निपुण थे । सुंदर रंगीन कलात्मक ढंग से अलंकृत सफेद कलश चीनी बर्तनों (पॉट्रीज़) के उत्कृष्ट उदाहरण हैं । चीनी अपनी सुंदर कांस्य वस्तुओं के लिए भी प्रसिद्ध हैं । बाद के काल में चीनवासियों ने सोने-चाँदी और हरे-सफ़ेद पत्थरों की वस्तुओं को भी बनाया ।
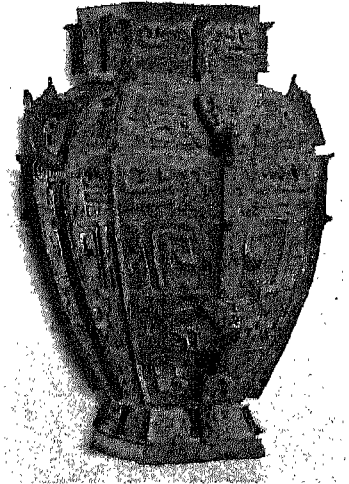
चीन का एक कांस्य पात्र

चीन का समाज कई श्रेणियों में बँटा हुआ था । समाज में राजा का स्थान सर्वोपरि था। उसके

लोक सेवकों का चयन प्रतियोगी परीक्षाओं के आधार पर करने की पद्धति को विकसित करने में चीन अग्रणी था।

बाद राजकीय अधिकारियों का स्थान था । उनसे नीचे क्रमशः विद्वानों, लेखकों, व्यापारियों, कलाकारों और गुलामों का स्थान था ।

चीन के लोग अपने पूवर्जों की पूजा करते थे। उनका विश्वास था कि मृत्यु के बाद मनुष्य प्रेतात्माओं में बदल जाते हैं, जिनके पास बहुत शक्ति होती है । ये युद्ध में विजय दिला सकती थीं, अच्छी फसल सुनिश्चित कर सकती थी और अकाल, महामारी और पराजय के रूप में दण्ड भी दे सकती थी।

चीनी प्रकृति की शक्तियों की भी पूजा करते थे । पृथ्वी की पूजा एक मिट्टी के टीले के रूप में होती थी । वह उस देवता की पूजा करते थे जिसे **शांग ती** अर्थात 'सर्वोच्च शासक' कहा जाता था।

ताओ और **कन्फ़्यूशियस** लोकप्रिय धर्म थे । कंफ्यूशियस धर्म की स्थापना कंफ्यूशियस ने की थी । वह बुज़ुर्गों के सम्मान तथा परिवार में एकता पर बल देता था । **ताओ धर्म** की स्थापना लाओ-त्से द्वारा की गई थी । यह धर्म साधारण जीवन एवं निस्वार्थ जीवन के सद्गुणों पर बल देता है । चीन में **बौद्ध धर्म** का प्रवेश हान शासन में व्यापारियों एवं धर्मप्रचारकों द्वारा हुआ । चीनियों ने दूसरी सदी ई.पू. से भारत में शिक्षा एवं बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करने हेतु आना प्रारंभ किया । उन्होंने बौद्ध धर्म की कई पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद भी किया ।

योगदान

चीन की लिपि भी उस समय की अन्य सभ्यताओं की भाँति **चित्र-लिपि** ही थी । बाद में यह भाव-

चीन की महान दीवार जो अंतरिक्ष से भी दिखाई देती है
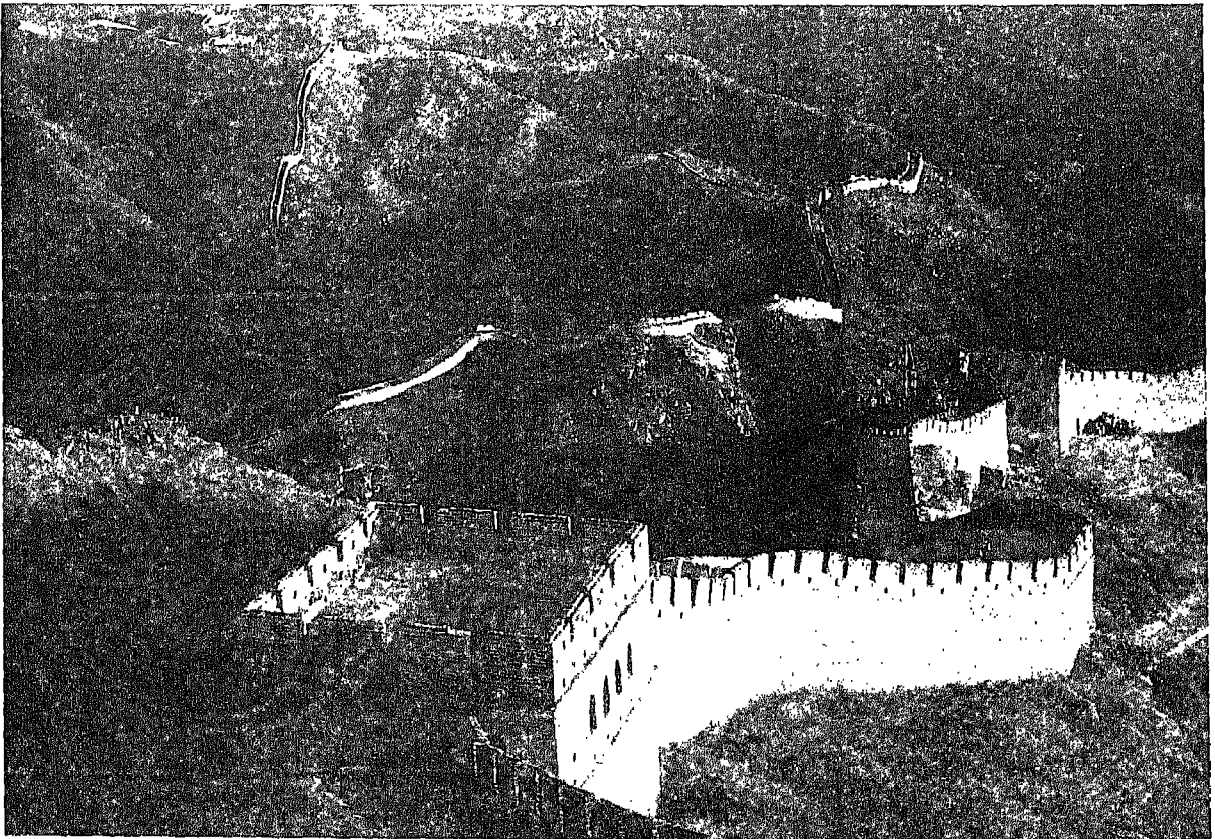
सूचक लिपि के रूप में परिवर्तित हो गई जिसमें एक भाव को एक चिह्न से दर्शाया जाता था। चीन के लोग बाँस के ब्रुश से रेशमी कपड़े पर लिखते थे। उनका पंचांग 30 दिनों के 12 महीनों अर्थात 360 दिनों का था। पाँच दिन नियतकालिक रूप से भारतीय पंचांग की तरह एक अतिरिक्त महीना जोड़कर समायोजित किए जाते थे।

चीन विश्व में सबसे ऊँची और लंबी 'दीवार' के लिए प्रसिद्ध है। यह 2,400 किलोमीटर लंबी है। चीन में महत्त्वपूर्ण खोजों में से एक है— एक राजा के मकबरे की खोज जिसमें राजा के शव के साथ 800 सैनिक पूरे गणवेश के साथ पद एवं रैंक अनुसार खड़े हैं। ये सभी सैनिक टैराकोटा (पक्की मिट्टी) से बने हुए हैं। चीन के लोगों ने महल एवं **पैगोडा** भी निर्मित किए। चित्रकारी में उनका कोई जवाब नहीं था। वास्तव में चित्रकारी, लेखन कला अथवा सुलेखन (कैलीग्राफ़ी) से बहुत निकट से जुड़ी हुई थी।

प्रारंभ में चीनी रेशमी कपड़े अथवा हड्डियों पर लिखते थे। बाद में चीनियों द्वारा इस कार्य के लिए **कागज़** का आविष्कार किया गया। कागज़ का निर्माण वृक्ष की छालों तथा बाँस की लुगदी बना कर किया जाता था। रेशम और कागज़ का आविष्कार चीन की विश्व को सबसे महान देन है।

चीनियों ने एक ऐसे यंत्र का निर्माण किया जिससे वे भूकंप के उद्गम स्थल का पता लगा सकते थे। वे ग्रहण लगने का कारण जानते थे और उसका पूर्वानुमान लगा सकते थे। उन्होंने ऐसे मानचित्रों का निर्माण किया जिनमें विभिन्न तारों की स्थिति दर्शाई गई थी। पानी की घड़ी भी उनके द्वारा आविष्कृत की गई थी।

खुदाई से प्राप्त टैराकोटा की सेना
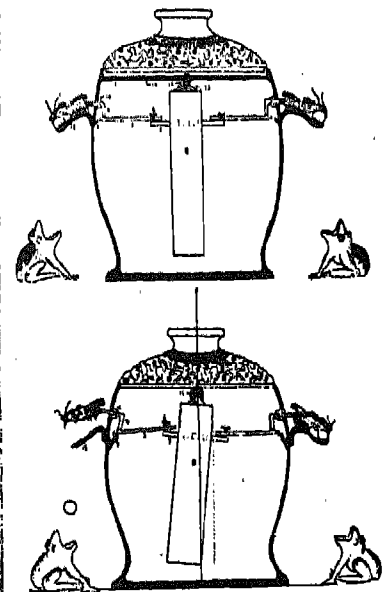
भूकंप की पूर्व सूचना देने वाले चीनी यंत्र का रेखा-चित्र

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए

(1) ह्वांगहो नदी को 'चीन का शोक' क्यों कहते हैं?
(2) शी-हुआँग-ती क्यों प्रसिद्ध है?
(3) चीन के लोगों के धार्मिक विश्वास क्या थे?
(4) कन्फ़्यूशियस कौन था?
(5) चीन की हस्तकलाएँ क्या थीं?
(6) चीन का समाज कितनी श्रेणियों में बँटा हुआ था?

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	शांग-ती	(क)	मंदिर
(2)	पैगोडा	(ख)	देवता
(3)	चाऊ	(ग)	लेखन
(4)	चित्र-लिपि	(घ)	राजकुल

3. सही कथन के सामने (✓) तथा गलत कथन के सामने (✗) का चिह्न लगाइए

(1) चीन की दीवार अंतरिक्ष से दिखाई नहीं देती। ( )
(2) रेशम, चीन का उपहार है। ( )
(3) चीन में बौद्ध धर्म का प्रसार भारत से हुआ। ( )
(4) कागज़ का आविष्कार चीनियों द्वारा किया गया। ( )
(5) चीनियों ने भूकंप का पूर्वानुमान लगाने वाले यंत्र को नहीं बनाया। ( )

करने के लिए कार्य

- चीन के स्मारकों तथा मूर्तियों का कोलाज बनाइए।
- चीन की दीवार की लंबाई ज्ञात कीजिए।

ईरान की सभ्यता

ईरान के पहाड़ी क्षेत्रों में कृषि का प्रारंभ उतना ही पुराना है जितना विश्व के किसी अन्य भाग में। **अलीकोश** और **गंजदारेह टेपे** जैसे पुरातत्व महत्त्व के स्थल दर्शाते हैं कि इस क्षेत्र में 8000 वर्ष पूर्व कृषि का प्रारंभ हुआ था। दजला और फरात नदियों के किनारे के कुछ मैदानी क्षेत्रों में मेसोपोटामिया की सभ्यता पाई जाती थी।

दूसरी सदी ई. पू. दजला-फरात की घाटी के पूर्व में रहने वाले लोग विभिन्न मैदानी एवं पर्वतीय क्षेत्रों में समूह बना कर रहते थे । इनमें से प्रमुख क्षेत्र थे परसिस, मेदिया और पार्थिया ।

पुरानी ईरानी संस्कृति और धर्म वैदिक काल के लोगों जैसे ही थे। देवताओं के नाम और बहुत से धार्मिक संस्कार एक जैसे ही थे । इस पुरातन धर्म को **ज़रथ्रुष्ट धर्म** कहते हैं जिसके विषय में आप 'भारत के धर्म' अध्याय के अंतर्गत पढ़ेंगे। सातवीं और आठवीं ईस्वी और उसके पश्चात इस्लाम के प्रचार-प्रसार से ज़रथ्रुष्ट धर्म मुख्य धर्म के रूप में नहीं रहा। फिर भी इसकी परंपराओं का निर्वाह, अपने विश्वास और धर्म की रक्षार्थ ईरान छोड़ कर भारत आए **पारसियों** के माध्यम से होता रहा ।

प्राचीन ईरान के इतिहास को तीन कालों में बाँटा जा सकता है। इन तीन कालों का समय है 550 ई.पू. से 600 ईस्वी तक। ये तीन काल हैं — एकेमेनी काल, पार्थियन काल और ससानी काल ।

ईरान के कुछ प्रसिद्ध शासकों में **साईरस II**, **डेरियस I**, **आर्दशीर I** और **शापुर II** के नाम आते हैं । ईरानी साम्राज्य की सर्वाधिक प्रसिद्ध राजधानी **पर्सीपोलिस** थी । इतिहास में **'शहंशाह'** उपाधि का उपयोग ईरानी राजाओं ने सबसे पहले किया।

समाज और आर्थिक व्यवस्था

एकेमेनी साम्राज्य ईरान में स्थायित्व लाया । एकेमेनी शासकों ने इसका एकीकरण किया और इसे एक प्रशासन के अंतर्गत करने के साथ एक ही मुद्रा का चलन प्रारंभ किया । उनके पास विशाल सैन्य शक्ति थी। उनके पास सक्षम प्रशासनिक व्यवस्था थी । साम्राज्य को प्रांतों में बाँटा गया था जिन पर गवर्नर शासन
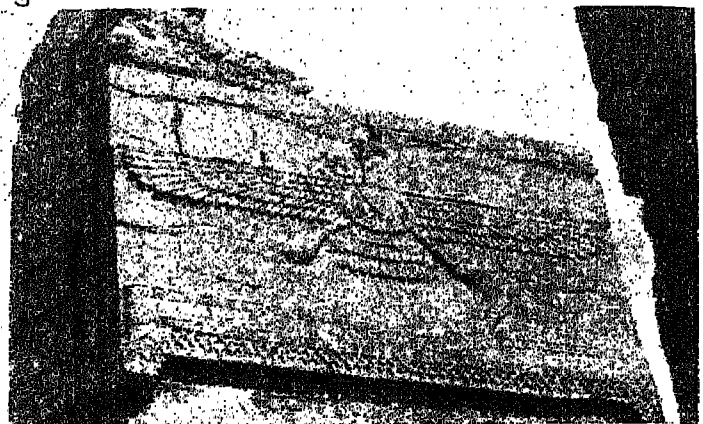
अहूर माज़दा का मंदिर

करते थे जिन्हें **क्षत्रप** कहते थे । उनकी उत्पादन-आधारित निश्चित कर व्यवस्था थी। **डाक व्यवस्था** प्रारंभ करने का श्रेय भी उन्हीं को जाता है।

समाज को चार श्रेणियों में बाँटा गया था – पुरोहित, सैनिक, लेखक और कृषक । राजा, पुरोहित और सैनिक को उच्च स्थान प्राप्त था जबकि हस्तशिल्पियों, व्यापारियों और किसानों को निम्न स्थान प्राप्त था।

अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित थी । भूमि पर शाही परिवार के कुछ सदस्यों, कुलीन परिवारों तथा पुरोहितों जैसे थोड़े से लोगों का स्वामित्व था । व्यापार और व्यापारिक काफ़िलों पर कर लगाया जाता था। यह कर कृषि एवं अन्य उत्पादनों पर लगे करों के अतिरिक्त था ।

कला एवं वास्तुकला

ईरानियों ने **पर्सीपोलिस** एवं **शापुर** जैसे बड़े नगर बनाए जिनमें अनेक भवन तथा महल थे । पर्सीपोलिस अपने समय की सर्वाधिक सुंदर राजधानी थी । दीवारें सुंदर सजी हुई थीं। **100 खंभों का सभागार** सबसे प्रसिद्ध इमारत थी । **अहूर माज़दा** के मंदिर जिन्हें **अग्नि मंदिरों** के नाम से भी जाना जाता है, का भी निर्माण किया गया था ।
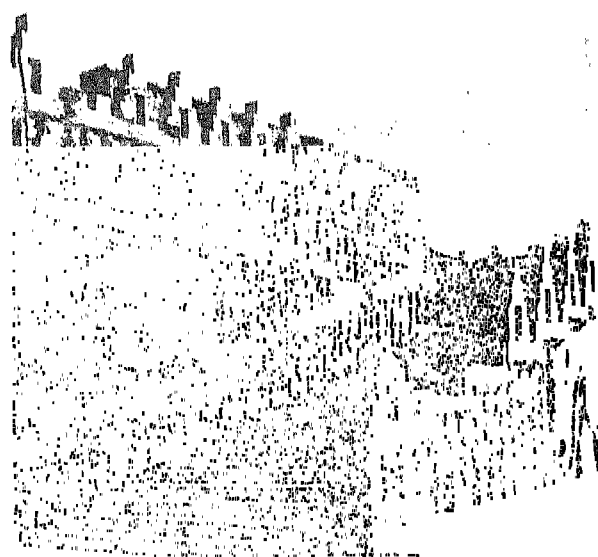
पर्सीपोलिस के महल की सीढ़ियाँ
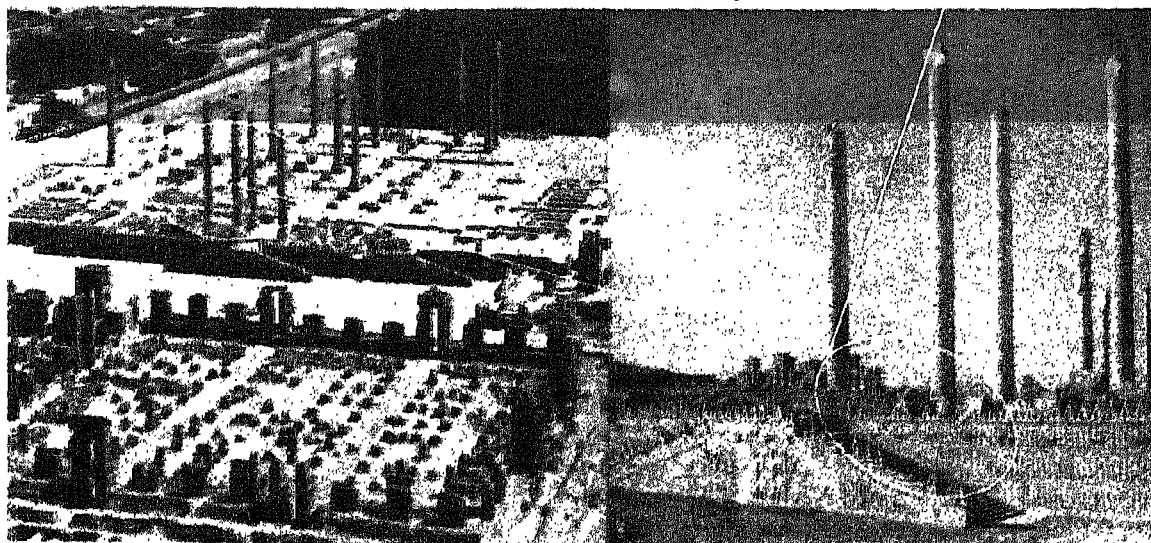
100 खंभों वाले सभागार के अवशेष तथा पर्सीपोलिस के महल की सीढ़ियाँ एवं मुख्य द्वार

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए

(1) डेरियस-I क्यों प्रसिद्ध है?

(2) ईरानी लोगों के विषय में लिखें ।

(3) पर्सीपोलिस क्यों प्रसिद्ध है?

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	अग्नि मंदिर	(क)	राजाओं की उपाधि
(2)	पर्सीपोलिस	(ख)	गवर्नर
(3)	क्षत्रप	(ग)	राजधानी
(4)	शहंशाह	(घ)	ज़रथ्रुष्ट

3. सही कथन के सामने (✓) तथा गलत कथन के सामने (✗) का चिह्न लगाइए

(1) ईरानी संस्कृति कुछ-कुछ भारत की वैदिक संस्कृति जैसी ही थी । (   )

(2) पारसी भारत में ईरान से आए थे । (   )

(3) ईरान के राजा किसी उपाधि का उपयोग नहीं करते थे । (   )

(4) ईरानियों ने अपने साम्राज्य को प्रांतों में नहीं बाँट रखा था । (   )

(5) अहूर माज़दा ईरानी लोगों का देवता था । (   )

करने के लिए कार्य

* पारसी सभ्यता से संबंधित चित्र इकट्ठे करके एक कोलाज तैयार कीजिए ।
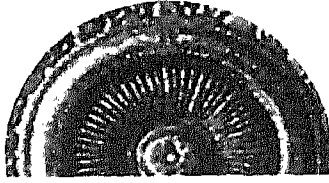
10

भारतीय हड़प्पा सभ्यता

भारत और पाकिस्तान के उत्तरी और पश्चिमी भाग में **सिंधु** और घघ्घर/हकड़ा **(प्राचीन सरस्वती)** के किनारे एक सभ्यता का विकास हुआ जिसे हड़प्पा, सिंधु या सिंधु-सरस्वती सभ्यता कहा जाता है। इसका विकास लगभग 4600 ई.पू. प्रारंभ हुआ जो 2600 ई.पू. में अपने शिखर पर पहुँची और लगभग 700 वर्ष तक अपने शिखर पर रही। 1900 ई.पू. से इसका पतन प्रारंभ हुआ। भौगोलिक दृष्टि से यह विश्व की सबसे बड़ी सभ्यता थी। इसका भौगोलिक क्षेत्र मिस्र की सभ्यता के क्षेत्र से **20 गुणा** था मिस्र तथा मेसोपोटामिया सभ्यता को मिला कर यह **12 गुणा** क्षेत्र तक फैली थी। इसका विकास पाकिस्तान, दक्षिणी अफ़गानिस्तान और भारत में राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हुआ।
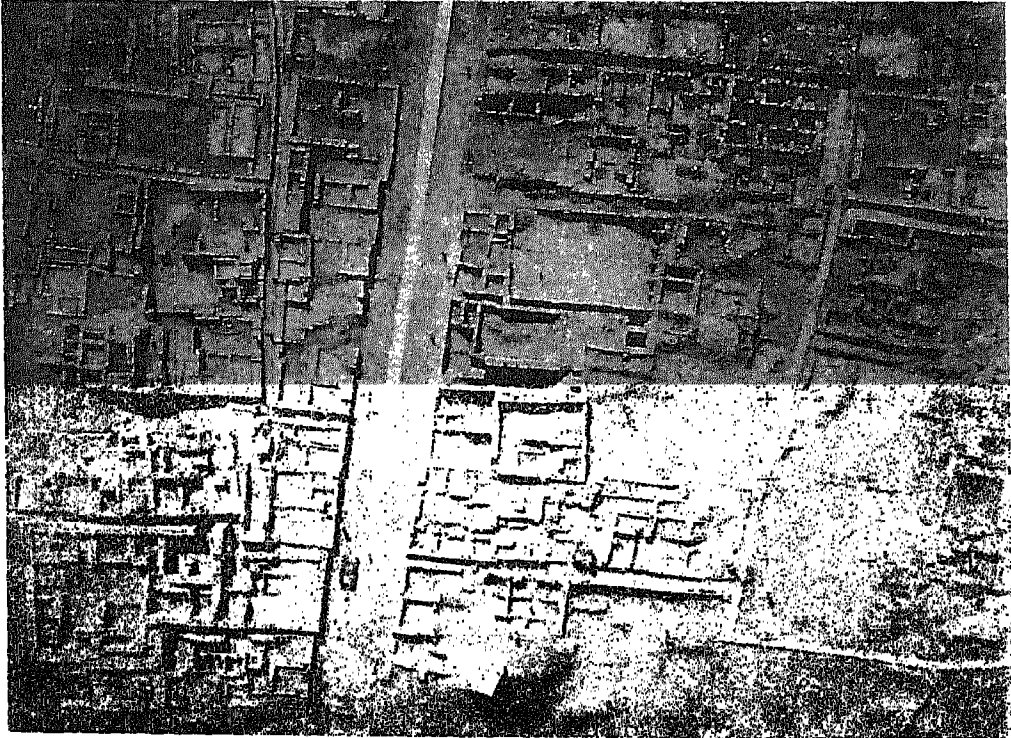
खुदाई में प्राप्त मोहनजोदड़ो के अवशेषों का विहंगम दृश्य

हड़प्पा सभ्यता का विस्तार

नगरीय जीवन
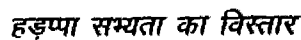
योजनाबद्ध नगर निर्माण हड़प्पा सभ्यता का सबसे अधिक विशिष्ट पहलू है। अधिकतर नगरों को दो भागों में बाँटा गया था। ऊपरी भाग को **किला** और नीचे के भाग को **निचला नगर** कहा जाता है। सड़कें बिल्कुल सीधी थीं तथा एक-दूसरे को लंबवत काटती थीं। इस योजना के अनुसार नगर को आयताकार खण्डों में बाँटा गया है। इस प्रकार की सचेष्ट नगर योजना विश्व की किसी अन्य समकालीन सभ्यता में नहीं पाई जाती। आधुनिक

विश्व में भी इस प्रकार की नगर योजना 18 वीं ईस्वी के लगभग ही प्रारंभ हुई है।

हड़प्पा निवासी विश्व के प्रथम लोग थे जिन्होंने विस्तृत सड़कों और नालियों से युक्त सुनियोजित निर्माण किया था।

किलों में बड़ी-बडी इमारतें थीं। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध **विशाल स्नानागार,** खंभों वाला सभागार, तथा अन्नागार मोहनजोदड़ो में स्थित है। हड़प्पा, लोथल और कालिबंगन में भी **अन्नागार** पाए गए हैं। इनका उद्देश्य अनाज का भंडार रखना था।

निचले नगर में लोगों के आवासीय मकान थे। बड़े घरों में एक आँगन, निजी कुआँ, प्रसाधन कक्ष एवं कई कमरे होते थे। छोटे घरों में केवल कुछ कमरे एवं शौचालय तथा स्नानघर होते थे। भवन निर्माण में ईंटों, लकड़ी तथा पत्थरों का उपयोग किया जाता था। नगरों में सफ़ाई की भी सुंदर व्यवस्था थी। प्रत्येक घर का स्नानागार गली की नाली से जुड़ा होता था। ये छोटी घरेलू नालियाँ गली की ढकी हुई नालियों से जुड़ी होती थीं। इससे प्रतीत होता है कि हड़प्पावासी स्वच्छता को महत्त्व देते थे।

जीवन-शैली

गेहूँ, जौ, ज्वार, सरसों, कपास तथा ज्वार की फसलें उगाई जाती थीं। कालिबंगन में पाए गए जुताई के मैदान से प्रतीत होता है कि उनका खेती का तरीका आज की तरह ही था। वे **कपास** उगाने वाले प्रारंभिक लोगों में थे। यूनान के लोगों ने कपास के विषय में भारतीयों से ज्ञान प्राप्त किया, अतः वे इसे सिंधु नदी के नाम पर **सिंदों** कहने लगे। गाँव प्रायः मैदानी भागों में थे। गाँव और शहर की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त अन्न उगाया जाता था। हड़प्पावासियों के पास कुत्ते, भेड़ें, बकरियाँ, बैल, भैंसें, ऊँट, हाथी तथा सूअर जैसे पालतू पशु होते थे। टैराकोटा (मिट्टी

विशाल स्नानागार

की बनी मूर्तियों) तथा उत्खनन में प्राप्त हड्डियों से घोड़े की उपस्थिति का ज्ञान होता है।

व्यापार हड़प्पावासियों की महत्त्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि थी। व्यापार की मुख्य वस्तुएँ थीं – टीन, ताँबा, सोना, इमारती लकड़ी, चाँदी और बहुमूल्य पत्थर। वे भारत से बाहर भी, जैसे मेसोपोटामिया से व्यापार करते थे। प्रायः सामान को बैलगाड़ियों और नावों द्वारा ढोया जाता था। नाव के चित्र मुद्राओं पर मिलते हैं। हड़प्पा सभ्यता के लोग व्यापार (लेन-देन) के लिए मानक बाटों और पैमानों का प्रयोग करते थे।
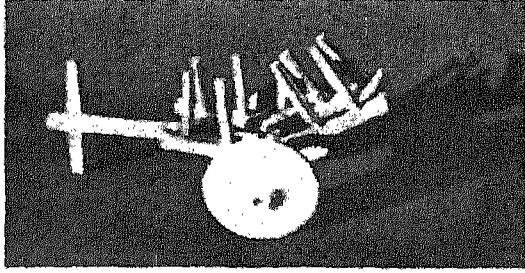
हड़प्पा सभ्यता की मिट्टी की एक बैलगाड़ी

एक मुद्रा पर दर्शाई गई नाव

किसी अनुष्ठान को दर्शाने वाली मुद्रा

हम हड़प्पावासियों के धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं को विभिन्न वस्तुओं जैसे मुद्राओं (मोहरों), मृणमूर्तियों इत्यादि के माध्यम से जानते हैं। मोहनजोदड़ो के **विशाल स्नानागार** को धार्मिक उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता था। मिट्टी की बनी स्त्री की आकृतियों को **देवी माता** की पूजा से जोड़ा जाता है। हड़प्पावासियों द्वारा **पीपल** की पूजा की जाती थी एवं उसे सम्मान दिया जाता था जो आज भी है। कई पशु जैसे डीलवाले बैलों और हाथियों की भी पूजा
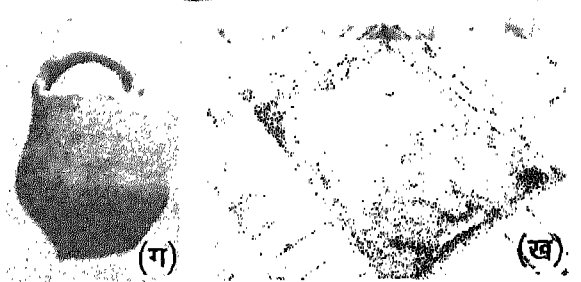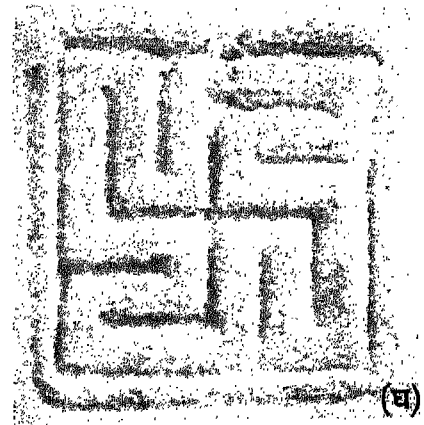
धार्मिक वस्तुएँ : (क) शिवलिंग (ख) यज्ञ वेदी (ग) कमंडल (घ) स्वस्तिक

की जाती थी। ये लोग **शिव** को **लिंग** के रूप में पूजते थे जो आज भी प्रचलित है। मृतकों को दफ़नाया तथा जलाया जाता था।

योगदान

हड़प्पावासियों को **लिखने** की कला आती थी परंतु यह दुर्भाग्य की बात है कि आज तक कोई भी उसे पढ़ नहीं पाया है।

हड़प्पावासी पत्थर, ताँबे और कांस्य से निर्मित औज़ारों तथा सामान का प्रयोग करते थे। वे अन्य कलाओं, जैसे पत्थरों को तराशना, मनके बनाना, हाथी-दाँत का काम करना, मिट्टी की मूर्तियाँ बनाना, चूड़ियाँ बनाना, मोहरें (मुद्राएँ) बनाना, बुनना और कातना, शंख-सीपियों इत्यादि पर काम करने में भी निपुण थे। ईंटें बनाना एक मुख्य हस्तशिल्प था। मिट्टी के बर्तन बनाने के लिए चाक का प्रयोग किया जाता था। अधिकांश बर्तनों पर पत्तियों, मछलियों, पक्षियों, जानवरों
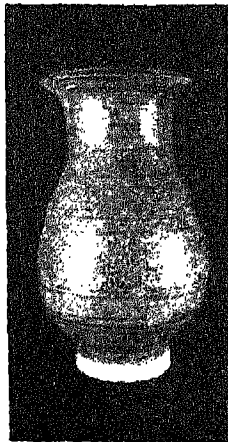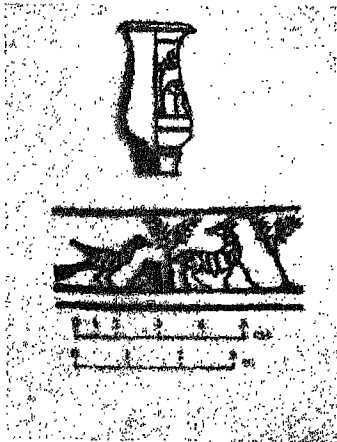
'प्यासे कौवे' की कहानी

चित्रकारीयुक्त पात्र

और कुछ कथाओं इत्यादि के नमूने चित्रित होते थे। एक बर्तन पर चित्रित की गई **प्यासे कौवे की कहानी** को हम आज भी कहानी की पुस्तकों में पढ़ते हैं। एक अन्य पर **चालाक लोमड़ी** की कहानी चित्रित है।

माप-तौल पैमानों का उपयोग, कांस्य निर्माण की विधि, ईंटों का निर्माण, नगर विन्यास, घर एवं गलियों की योजना, नाली व्यवस्था, मोहरें, मनके तथा बर्तन इत्यादि बनाना – ये सब **विज्ञान**, **गणित** और **ज्यामिति** के ज्ञान की ओर इंगित करते हैं। हड़प्पा के लोगों को योजनाबद्ध नगर बसाने, विशाल स्नानागार तथा जहाज़ों के रुकने के लिए **गोदी** का निर्माण करने में प्रथम होने का सम्मान प्राप्त है।

स्त्री-पुरुषों, पक्षियों, कुत्तों, दुधारू पशुओं, कूबड़वाले बैलों, भेड़ों इत्यादि की मिट्टी की अनेक आकृतियाँ मिली हैं। इन आकृतियों को या तो खिलौनों के रूप में अथवा पूजा के लिए उपयोग में लाया जाता था। **योगी** की पत्थर की प्रसिद्ध मूर्ति और मोहनजोदड़ो से प्राप्त **कांस्य की नृत्यांगना** हड़प्पावासियों की कला के उत्कृष्ट
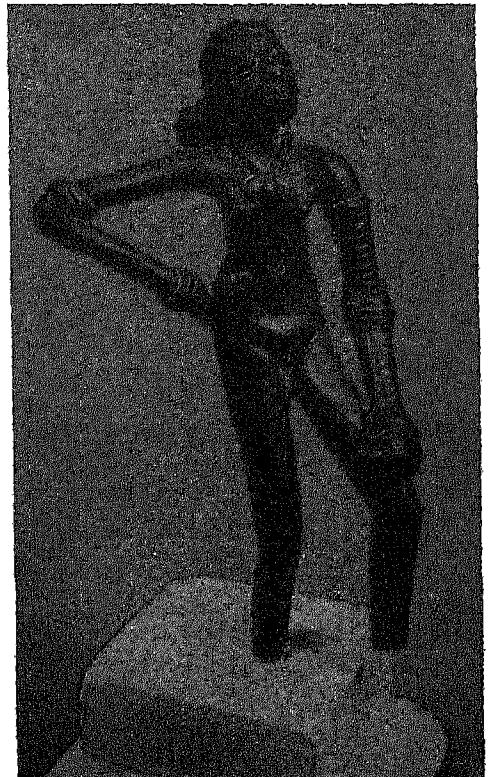
कांस्य की नृत्यांगना
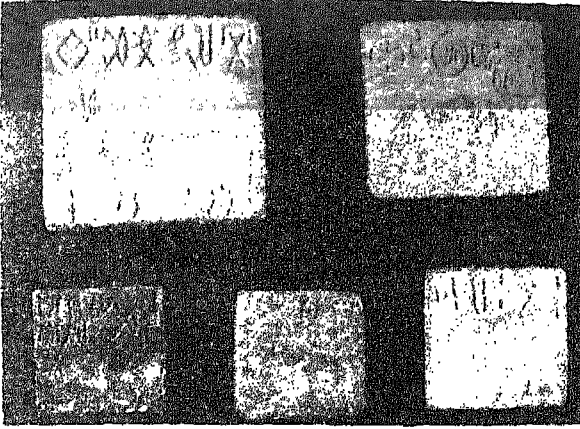
मुद्राओं पर चित्र

मिट्टी की बनी मानव एवं पशुओं की आकृतियाँ

माँग में सिंदूर लगाए हुए महिला मृणमूर्ति
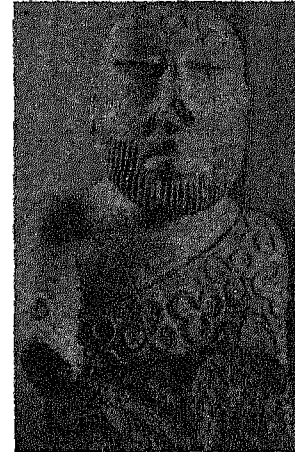
योगी की आकृति
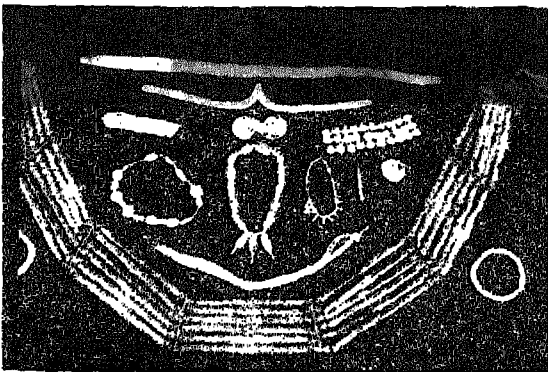
हड़प्पा सभ्यता के आभूषण

उदाहरण हैं। मानवीय आकृतियाँ उनके गहनों, केश-सज्जा और वेशभूषा को जानने में हमारी सहायता करती हैं।

मोहरें इन लोगों का विशेष योगदान है। ये प्रायः एक नरम पत्थर (स्टियाटाइट) से बनाई जातीं थीं। मोहरों पर डिज़ाइन बने हैं जिनमें कई प्रकार के पशु, पेड़, मानव इत्यादि सम्मिलित हैं। मोहर पर बनी आकृति के ऊपर हड़प्पावासियों की लिपि अंकित है। मोहरें शायद व्यापार के साथ जुड़ी हुई थीं। मोहरों पर प्रायः दिखाया जाने वाला जानवर बैल है। योग मुद्रा में बैठे एक देवता की पशुओं से घिरी हुई आकृति वाली मोहर को **पशुपति** की आकृति माना जाता है जो **शिव** का ही दूसरा नाम है।

पतन

हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, कालिबंगन, धोलावीरा और लोथल जैसे नगरों का धीरे-धीरे पतन हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि हड़प्पा सभ्यता की अधिकांश जनसंख्या गुजरात, उत्तरी पंजाब और हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में चली गई। हड़प्पा की सभ्यता का विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न कारणों से सैकड़ों साल तक धीरे-धीरे पतन होता रहा। सिंधु घाटी क्षेत्र में इसका पतन निरंतर बाढ़ के कारण हुआ और सरस्वती नदी के क्षेत्र में नदी के मार्ग बदलने से उत्पन्न पानी की कमी के कारण यह पतन की ओर अग्रसर हुई।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए

(1) हड़प्पा सभ्यता का विकास किस क्षेत्र में हुआ?
(2) हड़प्पा सभ्यता में किस प्रकार के नगर थे?
(3) हड़प्पा सभ्यता के कुछ महत्त्वपूर्ण भवनों के नाम लिखिए।
(4) हड़प्पा सभ्यता के काल में कौन सी फसलें उगाई जाती थीं?
(5) हड़प्पा के लोग मेसोपोटामिया के साथ किन वस्तुओं का व्यापार करते थे?
(6) हड़प्पा सभ्यता के धर्म पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
(7) हड़प्पा सभ्यता के हस्तशिल्प के विषय में लिखिए।

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	व्यापारिक संबंध	**(क)**	मोहनजोदड़ो
(2)	जुता हुआ खेत	**(ख)**	कालिबंगन
(3)	कांस्य की नृत्यांगना	**(ग)**	मेसोपोटामिया

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) प्रसिद्ध शिव पशुपति की मोहर .... से प्राप्त हुई।
(2) हड़प्पा सभ्यता के नगर .... थे।
(3) नगर का ऊपरी भाग .... कहलाता था।
(4) हड़प्पा सभ्यता की .... को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है।

4. सही कथन के सामने (✓) तथा गलत कथन के सामने (✗) का चिह्न लगाइए

(1) हड़प्पा सभ्यता का भौगोलिक क्षेत्र विश्व की उस समय की किसी भी सभ्यता से बड़ा है। (   )
(2) हड़प्पा सभ्यता के नगर योजनाबद्ध थे। (   )
(3) हड़प्पा सभ्यता की लिपि पढ़ी जा चुकी है। (   )
(4) कहीं-कहीं बर्तनों पर चित्रों के माध्यम से कहानियाँ दर्शाई गई हैं। (   )
(5) योगी की प्रसिद्ध मूर्ति कालिबंगन में मिली थी। (   )
(6) हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न स्थानों से शिवलिंग की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। (   )

करने के लिए कार्य

- हड़प्पा सभ्यता से संबंधित सामग्री रखने वाले किसी संग्रहालय को देखिए।
- हड़प्पा के विभिन्न स्थलों को मानचित्र पर अंकित कीजिए।
- हड़प्पा की मोहर जैसा चित्र अपनी चित्रकला की कापी में बनाइए।
- पुरानी इतिहास की पुस्तक से कुछ चित्र काट कर एक कोलाज बनाइए।
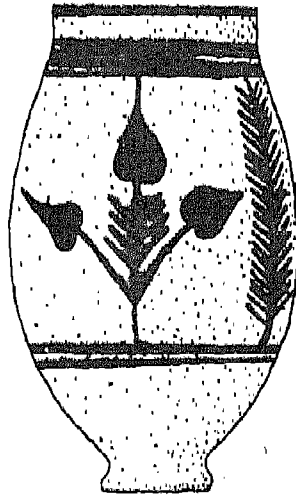
एक मृदभाण्ड पर पीपल वृक्ष का चित्रण

योगी 'शिव पशुपति'

योग मुद्रा में मानव आकृति

11
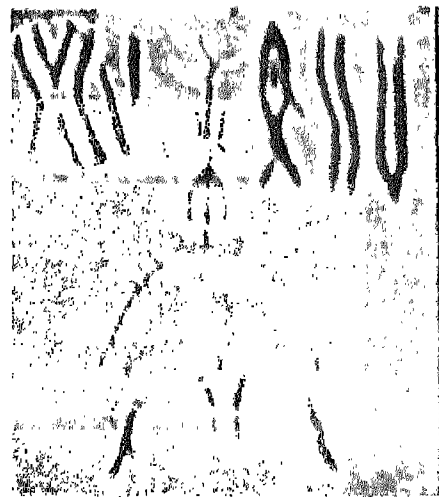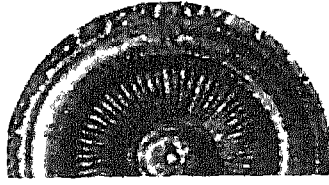
वैदिक सभ्यता

आपने शायद **वेद, ब्राह्मण, अरण्यक** और **उपनिषदों** के विषय में सुन रखा होगा। इन सबको सम्मिलित रूप से **वैदिक साहित्य** कहा जाता है। इन्हें हिंदुओं का धार्मिक साहित्य भी कहा जाता है। इन्हें आदर से देखा जाता है। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि वैदिक साहित्य **कुरान** और **बाईबल** की तरह किसी वैयक्तिक धार्मिक ग्रंथ को परिलक्षित नहीं करता। **वेद** का अर्थ है **ज्ञान** अथवा **पवित्र अध्यात्मिक ज्ञान**। विद्वान लोग वैदिक काल और वैदिक साहित्य को दो भागों में बाँटते हैं — **प्रारंभिक दौर** का प्रतिनिधित्व **ऋग्वेद** करता है और बाद के दौर में बाकी तीनों वेद, ब्राह्मण, अरण्यक और उपनिषद् आते हैं।

वैदिक साहित्य को समृद्ध होने में लंबा समय लगा। इनमें से कुछ तो अभी भी उपलब्ध हैं जबकि कई सदा के लिए विलुप्त हो चुके हैं। वैदिक साहित्य से हम वैदिक काल के लोगों तथा उनके निवास के क्षेत्र के विषय में जान पाते हैं।

वैदिक क्षेत्र

वैदिक साहित्य में उल्लिखित नदियों, पर्वतों और क्षेत्रों के नाम से हमें उस काल के भौगोलिक विस्तार का ज्ञान होता है। ऋग्वेद में **गंगा, यमुना, सरस्वती, सिंधु** और **सतलुज** जैसी नदियों के नाम हैं। सरस्वती को सबसे पवित्र नदी माना जाता था। ऋग्वेद के काल में लोग उन्हीं क्षेत्रों में बसे हुए थे जो **हड़प्पा सभ्यता** का प्रतिनिधित्व करते थे जैसे अफ़गानिस्तान, पाकिस्तान, पंजाब, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश। उत्तर वैदिक काल में लोग उत्तर भारत के अन्य क्षेत्रों मुख्यतः उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल और मध्य प्रदेश में फैल गए थे। ऋग्वेद में **सरस्वती नदी** को सबसे पावन और माँ के समान माना गया है। आप पहले ही यह जान चुके हैं कि हड़प्पा काल की अधिकांश बस्तियाँ सरस्वती नदी पर पाई गई थीं।

राजनैतिक स्थिति

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभ में बहुत छोटे-छोटे राज्यों पर राजा राज्य करते थे। ऐसे राज्यों, लोगों और राजाओं के नाम का ऋग्वेद में उल्लेख है। उनमें से कुछ थे – **भरत, यदु, पुरु, पक्त** इत्यादि जिनका नाम हम अन्य पुस्तकों में भी पाते हैं। ऐसा विश्वास है कि ऋग्वेद के काल में **भरत राज्य** के नाम से ही इस देश का नाम **भारत** पड़ा।

बाद में जब लोग उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल तक फैल गए तब **कुरु, पंचाल** और **विदेह** जैसे राज्यों की स्थापना हुई।

पैतृक राजतंत्र अर्थात पिता के बाद पुत्र का राजा बनना सामान्य शासन पद्धति थी, परंतु कभी-कभी जनता द्वारा चुने गए राजाओं की भी चर्चा आई है। प्रशासन में राजा के सहायतार्थ **सभा** और **समिति** के अतिरिक्त **पुरोहित**, **मंत्री** और अन्य अधिकारी भी होते थे। किसी भी स्थिति में राजा को राज्य की एकमात्र परम शक्ति अथवा स्वामी नहीं माना जाता था। राजा को मात्र राज्य रूपी न्यास (ट्रस्ट) का न्यासी (ट्रस्टी) माना जाता था। लोगों के हितों एवं कल्याण के लिए कार्य करना ही राजा का कर्तव्य था।

प्रारंभ में राज्य छोटे थे और राजाओं को **राजन** कहा जाता था परंतु बाद के काल में हमें बड़े राज्यों के विषय में जानकारी मिलती है और उनमें से कुछ राजाओं को **महाराजा** अथवा **सम्राट** कहा जाता था। राज्य को **राष्ट्र** कहा जाता था। प्रशासन में सभा और समिति की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती थी। समिति एक बड़ी संस्था प्रतीत होती है जो नीतिगत निर्णय लेती थी जबकि सभा एक छोटी और अनुभवी, योग्य तथा बुज़ुर्गों की चयनित संस्था थी। हमारी आज की संसद की भाँति उस समय भी सभा और समिति में सदस्यों के व्यवहार एवं वाद-विवाद को संचालित करने के लिए नियम बने हुए थे।

आर्थिक जीवन

वैदिक काल के लोगों का आर्थिक जीवन कृषि, कला, हस्तशिल्प और व्यापार पर केंद्रित था। बैलों और साँडों का खेती करने एवं गाड़ियाँ खींचने के लिए उपयोग किया जाता था। रथ खींचने के लिए घोड़ों का उपयोग किया जाता था। पशुओं में **गाय** को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं पवित्र स्थान दिया जाता था। वैदिक काल में गाय को चोट पहुँचाना अथवा उसकी हत्या करना वर्जित था। गाय को **अघ्न्य** (जिसे न तो मारा जा सकता है और न ही चोट पहुँचाई जा सकती है) कहा जाता था। वेदों में गोहत्या अथवा गाय को चोट पहुँचाने पर परिस्थिति अनुसार **देश निकाला** अथवा **मृत्यु-दंड** देने का प्रावधान है।

प्रारंभिक काल में बर्तन बनाना, कपड़ा बुनना, धातु कर्म, बढ़ई का काम इत्यादि अन्य व्यवसाय थे। प्रारंभिक काल में धातुओं में केवल **ताँबा** धातु की ही जानकारी थी। दूर-दूर तक व्यापार होता था। वेदों में समुद्री मार्ग से व्यापार की चर्चा आती है। बाद के काल में हमें अन्य कई व्यवसायों, जैसे गहने बनाना, रंगरेज़ी, रथ बनाना, तीर-कमान बनाना तथा धातु पिघलाने आदि की जानकारी मिलती हैं। हस्तशिल्पियों की **श्रेणियाँ** (संघ) भी बनीं और उनके मुखिया को **श्रेष्ठी** कहा जाता था। बाद के काल में लोहे की जानकारी होने के बाद ताँबा **लोहित अयस** और लोहा **श्याम अयस** के नामों से जाने जाते थे।

प्रारंभिक काल में लोग स्वेच्छा से राजा को उसकी सेवाओं के फलस्वरूप उपहार के रूप में **बलि** (ऐच्छिक उपहार) दिया करते थे जो बाद में एक नियमित कर बन गया जिसे **शुल्क** कहा जाता था। उस समय उपयोग किए जाने वाले सिक्कों को **निष्क** कहा जाता था।

सामाजिक जीवन

ऋग्वेदिक काल में समाज में मुख्यतः चार **वर्ण** थे– **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य** और **शूद्र**। यह वर्गीकरण लोगों के कर्म (कार्यों) पर आधारित था न कि जन्म पर। गुरुओं अर्थात शिक्षकों को **ब्राह्मण;** शासक और प्रशासकों को **क्षत्रिय;** किसानों,

व्यापारियों और साहूकारों को **वैश्य** तथा दस्तकारों और मज़दूरों को **शूद्र** कहा जाता था। एक ही परिवार में सभी वर्ण पाए जा सकते थे। लेकिन बाद में व्यवसाय पैतृक होते चले गए और एक व्यवसाय से जुड़े लोगों को एक **जाति** के रूप में माना जाने लगा। हुनर में विशेषज्ञता बढ़ने के साथ-साथ जातियाँ भी बढ़ने लगीं और जाति तथा वर्ण-व्यवस्था कठोर बनती गई। एक वर्ण से दूसरे में जाना कठिन हो गया।

समाज की आधारभूत इकाई परिवार थी। बाल विवाह नहीं होते थे। युवक एवं युवतियाँ अपनी पसंद से विवाह कर सकते थे। सभी सामाजिक और धार्मिक अवसरों पर पत्नी पति की सहभागिनी होती थी। महिलाओं का सम्मान था और कुछ को तो **ऋषि** का दर्जा भी प्राप्त था। पिता की संपत्ति में उसकी सभी संतानों का हिस्सा होता था। भूमि पर व्यक्तियों तथा समाज का स्वामित्व था। मुख्यतः चारे वाली भूमि, जंगल तथा जलाशयों जैसे तालाब और नदियों पर समाज का स्वामित्व होता था जिसका अभिप्राय था कि गाँव के सभी लोग उनका उपयोग कर सकें।

खान-पान

वैदिक काल में आजकल के सभी अनाजों की खेती की जाती थी और इसी प्रकार उन्हें सभी पशुओं की जानकारी भी थी। लोग चावल, गेहूँ के आटे तथा दालों से बने पकवान खाते थे। **दूध, मक्खन** और **घी** का प्रयोग आम था। फल, सब्ज़ियाँ, दालें और मांस भी भोजन में सम्मिलित थे। वे **मधु** तथा नशीला पेय **सुरा** भी पीते थे। धार्मिक उत्सवों पर **सोम** पान किया जाता था। **सोम** और **सुरा** पीने को हतोत्साहित किया जाता था क्योंकि यह व्यक्ति के अशोभनीय व्यवहार का कारण बनते थे।

धर्म और दर्शन

ऋग्वेद काल के लोग प्रकृति की शक्ति दर्शाने वाले बहुत से देवताओं की पूजा करते थे जैसे— अग्नि, सूर्य, वायु, आकाश और वृक्ष। इनकी पूजा आज भी होती है। हड़प्पा सभ्यता में हम कई वस्तुओं जैसे **पीपल, सप्तमातृकाओं** और **शिवलिंगों** का चित्रण पाते हैं जिन पर हिंदू आज भी श्रद्धा रखते हैं। अग्नि, वात और सूर्य से समाज की रक्षा के लिए प्रार्थना की जाती थी। **इंद्र, अग्नि** और **वरुण** सबसे अधिक मान्य देवता थे। **यज्ञ** एक जाना-माना धार्मिक कृत्य था। कभी-कभी बड़े विशाल यज्ञों का आयोजन किया जाता था जिसमें बहुत से पुरोहितों की आवश्यकता होती थी।

उत्तर वैदिक काल में कर्मकांड और यज्ञ को बहुत मँहगा माना जाने लगा। साथ ही ईश्वर तक पहुँचने और अध्यात्मिक लाभ (पुण्य) कमाने का एकमात्र तरीका नहीं माना जाने लगा। इसके स्थान पर अन्य साधन जैसे **ज्ञान मार्ग** को भी विकसित किया गया। इस मार्ग की जड़ें ऋग्वेद में ही दिखाई देती हैं। **उपनिषद्** किसी भी धर्म में निहितार्थ गहन दर्शन के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ हैं। उपनिषदों में जिस प्रकार के प्रश्नों पर चर्चा की गई है वे हैं- ईश्वर क्या है? ईश्वर कौन है? जीवन क्या है? संसार क्या है? मृत्यु के पश्चात मनुष्य कहाँ जाता है? आत्मा क्या है? इत्यादि ।

विज्ञान

वेद, ब्राह्मण और उपनिषद् इस समय के विज्ञान के विषय में पर्याप्त जानकारी देते हैं। **गणित** की सभी

शाखाओं को सामान्यतः गणित नाम से ही जाना जाता था जिसमें **अंकगणित**, **रेखागणित**, **बीजगणित**, **खगोल विद्या** और **ज्योतिष** सम्मिलित थे।

वैदिक काल के लोग **त्रिभुज** के बराबर क्षेत्रफल का वर्ग बनाना जानते थे। वे **वृत्त** के क्षेत्रफलों के वर्गों के योग और अंतर के बराबर का **वर्ग** भी बनाना जानते थे। **शून्य** का ज्ञान था और इसी कारण बड़ी संख्याएँ दर्ज की जा सकीं। इसके साथ ही प्रत्येक अंक के स्थानीय मान और मूल मान की जानकारी भी थी। उन्हें घन, घनमूल, वर्ग और वर्गमूल की जानकारी थी और उनका उपयोग किया जाता था।

वैदिक काल में **खगोल विद्या** अत्यधिक विकसित थी। वे आकाशीय पिण्डों की गति के विषय में जानते थे और विभिन्न समयों पर उनकी स्थिति की गणना भी करते थे। इससे उन्हें सही पंचांग बनाने तथा सूर्य एवं चंद्र ग्रहण का समय बताने में सहायता मिलती थी। वे यह जानते थे कि **पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है। चाँद, पृथ्वी के इर्द-गिर्द घूमता है।** उन्होंने पिण्डों के घूर्णन का समय ज्ञात करने तथा आकाशीय पिण्डों के बीच की दूरियाँ मापने के प्रयास भी किए। यह गणनाएँ लगभग आज की वैज्ञानिक विधि द्वारा की गई गणनाओं जैसी ही हैं।

कुछ सामान्य निष्कर्ष

वैदिक सभ्यता काफी उन्नत प्रतीत होती है। लोग **नगरों**, प्राचीर से घिरे नगरों **(पुरों)** तथा गाँवों में रहते थे। वे दूर-दराज़ तक व्यापार करते थे। विज्ञान पढ़ा जाता था और विज्ञान की विभिन्न शाखाएँ अत्यधिक विकसित थीं। उन्होंने सही पंचांग बनाए और चंद्र एवं सूर्य ग्रहणों के समय की पूर्व सूचना दी। आज भी हम उनकी विधि से गणना कर ग्रहण का समय ज्ञात कर सकते हैं जिसमें मात्र एक या दो घंटे का अंतर भले ही हो जाए।

बहुत सी समानताओं जैसे भौगोलिक क्षेत्र, सभ्यता का समुन्नत होना और धार्मिक व्यवहार के आधार पर कुछ विद्वान वैदिक सभ्यता और हड़प्पा की सभ्यता को एक ही मानते हैं, यद्यपि कुछ विद्वान इस विचार से सहमत नहीं हैं। उनका मानना है कि ऋग्वेद और हड़प्पा की सभ्यताएँ एक नहीं है। यह मुद्दा तभी सुलझ सकता है जब हड़प्पा से मिले अभिलेखों को पढ़ा जा सके।

अभ्यास

1. **निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए**
   - (1) वैदिक साहित्य की कुछ पुस्तकों के नाम लिखिए।
   - (2) वैदिक काल के भौगोलिक क्षेत्रों का वर्णन कीजिए।
   - (3) सभा और समिति क्या थीं? उनके क्या कार्य थे?
   - (4) उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ वैदिक राज्यों के नाम लिखिए।
   - (5) वर्ण और जाति का क्या अर्थ है?
   - (6) वैदिक धर्म क्या था?

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	ऋग्वेद	(क)	राजनैतिक संस्थाएँ
(2)	सभा और समिति	(ख)	पवित्र पुस्तक
(3)	श्याम अयस	(ग)	ज्यामिति
(4)	रेखा गणित	(घ)	लोहा

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) हमारे देश का नाम 'भारत' ऋग्वेद काल के .... के नाम पर रखा गया।

(2) वैदिक काल में .... को सबसे पवित्र पशु माना जाता था।

(3) ऋग्वेद में राजा को .... कहा जाता था।

(4) गणित की सभी शाखाओं का सामान्य नाम .... था।

(5) वैदिक काल के लोग सूर्य और चंद्र .... का पूर्वानुमान लगा सकते थे।

(6) वैदिक काल के लोग जानते थे कि .... के इर्द-गिर्द .... घूमता है।

4. सही कथन के सामने (✓) तथा गलत कथन के सामने (✗) का चिह्न लगाइए

(1) पुरोहित वैदिक काल में राजा था। ( )

(2) बलि स्वैच्छिक उपहार था। ( )

(3) वैदिक काल के लोग शून्य के उपयोग को जानते थे। ( )

(4) गाय को चोट पहुँचाने अथवा मारने पर मृत्यु-दंड का प्रावधान था। ( )

(5) वैदिक काल के लोग त्रिभुज अथवा वृत्त के क्षेत्रफल के बराबर वर्ग बनाना जानते थे। ( )

करने के लिए कार्य

* मानचित्र पर ऋग्वेदकालीन नदियों की पहचान कीजिए।
* वेदों के कुछ श्लोक एकत्र कीजिए।

12
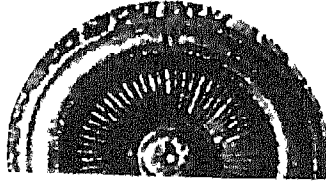
भारतीय इतिहास (छठी से प्रथम शताब्दी ई.पू.)

जनपदों और महाजनपदों का युग

यद्यपि ऋग्वेद काल के अनेक राज्यों के विषय में हम जान चुके हैं तथापि बाद के वैदिक साहित्य यथा ब्राह्मण और आरण्यक से हमें कई **जनपदों** जैसे गंधार (आज का अफ़गानिस्तान एवं उ.-प. पाकिस्तान), कुरु, पंचाल और विदेह के नाम मिलते हैं। हमें कई नगरों जैसे हस्तिनापुर, अहिच्छत्र, कोसांबी, काशी, चंपा और राजगृह के विकास के बारे में भी जानकारी प्राप्त हुई।

बौद्ध और जैन साहित्य से ज्ञात होता है कि 600 ई.पू. संपूर्ण उत्तरी भारत 16 राज्यों में बँटा हुआ था जिन्हें **महाजनपद** कहा जाता था। इसमें प्रत्येक की अपनी राजधानी थी। कुछ मुख्य थे – कुरु, पंचाल, शूरसेन, मत्स्य, अंग, काशी, कोशल और मगध। इन पर राजा शासन करते थे। कुछ महाजनपदों की राजधानियाँ राजगृह, कोसांबी, मथुरा और काशी थीं।

उसी समय ऐसे बहुत से राज्य थे जहाँ वंशगत राजा नहीं थे। इन राज्यों को **गणसंघ** (रिपब्लिक) कहा जाता था। यहाँ राज्य के राजा को जनता चुनती थी जैसे आज हम अपनी सरकार चुनते हैं। इन गणसंघों में कुछ थे – मिथिला के **वज्जि**, कपिलवस्तु के **शाक्य** और पावा के **मल्ल**। **बुद्ध** शाक्य गणसंघ में पैदा हुए थे।

विभिन्न जनपदों और गणसंघों के राजाओं के बीच वैवाहिक संबंध थे, परंतु इन कारणों से उनके पारस्परिक युद्ध और राज्य विस्तार की गतिविधियाँ नहीं रुक सकीं।

मगध का उदय

सोलह महाजनपदों में से चार अति शक्तिशाली थे। ये थे – मगध, कोशल, वत्स और अवंति। धीरे-धीरे अन्य महाजनपदों को हरा कर मगध एक अति शक्तिशाली राज्य के रूप में उभरा। इसे बिहार के आजकल के पटना, गया और नालंदा से पहचाना जाता है। मगध **बिम्बिसार** के नेतृत्व में उभर कर आया। मगध की राजधानी पटना के निकट **राजगृह** थी। इसे राजगीर भी कहते हैं। अजातशत्रु बिम्बिसार का उत्तराधिकारी था। **अजातशत्रु** ने विस्तार की नीति अपनाई। उसने कोशल, काशी और वैशाली को जीता।

अजातशत्रु की मृत्यु के उपरांत मगध पर दो राजकुलों **शिशुनाग** और **नंद वंश** ने राज्य किया। नंदों के बाद **मौर्य वंश** आया जिसके बारे में हम अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

प्रशासन

इस काल में राजा बहुत शक्तिशाली बन गया। वह अपने लोगों की रक्षा और युद्ध में नेतृत्व करता था। वह अपने राज्य का प्रशासन बहुसंख्यक

महाजनपद

कंबोज
पेशावर
गंधार
तक्षशिला
कुरु
सुतुद्री
सिंधु
कुरुक्षेत्र
पंचाल
इंद्रप्रस्थ
गंगा
मल्ल
कपिलवस्तु
विदेह
शूरसेन
मथुरा
यमुना
कोशल
श्रावस्ती
शाक्य
मत्स्य
अयोध्या
लिच्छवी
काशी
कोसांबी
प्रयाग
पाटलिपुत्र
अवंति
चेदि
वत्स
मगध
राजगृह
अंग
चंपा
उज्जयिनी
नर्मदा
भरुकच्छ
ताम्रलिप्ति
महानदी
प्रतिष्ठान
अश्मक
गोदावरी
कृष्णा
कावेरी
ताम्रपर्णी (श्रीलंका)

● प्राचीन नगर
वर्तमान भारत की सीमा
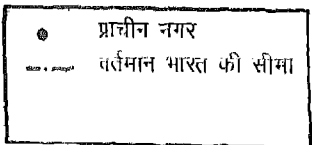
अधिकारियों की सहायता से चलाता था जिनमें से कुछ को **आमात्य** (मंत्री), **पुरोहित** (धर्मगुरु), **संग्रहत्री** (कोषाध्यक्ष) और **सेनापति** (सेना प्रमुख) कहते थे। गाँव के मुखिया (**ग्रामिणि**) भी प्रशासन में सहायता करते थे।

कस्बों को **पुर** और **नगर** तथा बड़े कस्बों को **महानगर** कहा जाता था। उज्जयिनी (म.प्र.), श्रावस्ती, अयोध्या, काशी और कोसांबी (उ.प्र.),
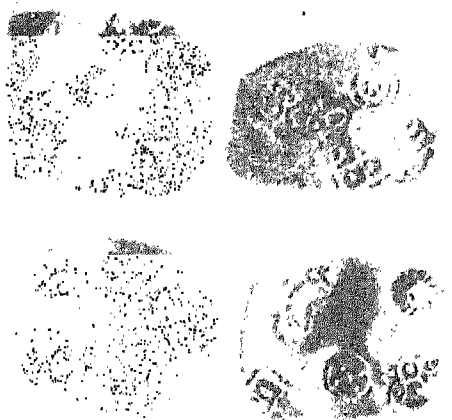
आहत सिक्के

चंपा, राजगीर और वैशाली (बिहार), प्रतिष्ठान (महाराष्ट्र) और भृगुकच्छ अथवा भरुकच्छ (बड़ौच-गुजरात) कुछ मुख्य नगर थे। मकान मिट्टी तथा पकी हुई ईंटों से निर्मित होते थे। राजा का महल प्रायः पत्थर और लकड़ी से बना होता था। राजा राजधानी से राज्य करता था। नगर के चारों तरफ प्राचीर होती थी जिसमें बड़े-बड़े प्रवेश द्वार होते थे। इन्हें सुरक्षा की दृष्टि से रात को बंद कर दिया जाता था।

जीवन-शैली

लोग खेती के विभिन्न प्रकारों से परिचित थे। वे एक वर्ष में तीन फसलें उगाते थे। अतः खाद्यान्न बड़े पैमाने पर पैदा किए जाते थे। किसान गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा, कपास, गन्ना और चारा इत्यादि पैदा करते थे। कर देना अनिवार्य बना दिया गया था। किसानों, शिल्पकारों और व्यापारियों को कर देना पड़ता था। कर दो रूपों अर्थात नकदी तथा वस्तुओं जैसे अनाज आदि के रूप में एकत्रित किया जाता था।

इस काल में मुद्रा अर्थात **सिक्कों** का नियमित प्रयोग देखने को मिलता है। सिक्के प्रायः ताँबे और चाँदी के बने होते थे। व्यापार करना सरल हो गया था। इन प्रारंभिक सिक्कों को **आहत** (ठप्पे लगे) सिक्के कहते थे। इन्हें आहत सिक्के इसलिए कहते हैं क्योंकि इन पर कुछ चिह्न ठप्पे से अंकित हैं। व्यापार के लिए कई नए मार्ग बने जिनसे भारत के विभिन्न भाग आपस में जुड़ सके। व्यापार के कुछ मार्ग असम से अफ़गानिस्तान तक लंबे थे।

समाज में मुख्यतः **चार वर्ण** थे, परंतु इस काल में हमें अनेक **जातियों** का उदय दिखाई देता है जिसमें एक ही पेशे जैसे बढ़ई, लुहार, सुनार, तेली और शराब बनाने वालों से जुड़े लोगों का समूह होता था। हम पढ़ चुके हैं कि पहले वर्ण व्यवस्था कठोर नहीं थी। एक ही परिवार के लोग अपनी योग्यता और व्यवसाय के आधार पर विभिन्न (भिन्न-भिन्न) वर्णों से संबंधित हो सकते थे। दुर्भाग्य से अब वैसी स्थिति नहीं रही। जाति जन्म से ही जानी जाती थी। वर्ण और जाति व्यवस्था को नियमित करने वाले कानून कठोर और भेद-भाव पूर्ण हो चुके थे। महात्मा बुद्ध जाति व्यवस्था के आलोचक थे और सादे जीवन का प्रचार करते थे। परिवार ही समाज की मूल इकाई बनी रही।

कला और शिल्प का बड़े पैमाने पर विकास हुआ और दूर-दूर तक व्यापार फैला। शिल्पकारों को संगठित किया गया। एक ही पेशे से जुड़े लोगों के संगठन को **श्रेणी** कहा जाता था। प्रत्येक शिल्प का अपना संगठन था। बड़े-बड़े काफ़िले देश के एक भाग से दूसरे भाग तक सामान लेकर यात्रा करते थे।

आपने पिछले अध्याय में देखा कि किस प्रकार लोग धीरे-धीरे कर्मकांड और खर्चीले यज्ञों से विमुख हो रहे थे और ज्ञान मार्ग से मुक्ति की ओर उन्मुख हो रहे थे। यह प्रक्रिया इस काल में भी जारी रही और इससे **बौद्ध** तथा **जैन संप्रदायों** का उदय हुआ जो दोनों ही सदाचार और **अहिंसा** पर ज़ोर देते हैं। इसके विषय में आप बाद में पढ़ेंगे।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए

(1) गणसंघ से क्या अभिप्राय है?
(2) महाजनपद किसे कहते हैं?
(3) किन्हीं चार महाजनपदों के विषय में लिखें।
(4) किन्हीं दो गणसंघों के विषय में लिखें।
(5) महाजनपद युग के कुछ प्रसिद्ध नगरों के बारे में लिखें।
(6) आहत सिक्के किसे कहते हैं?
(7) इस काल में समाज व्यवस्था क्या थी?

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	मगध	**(क)**	चंपा
(2)	कोशल	**(ख)**	मथुरा
(3)	अंग	**(ग)**	श्रावस्ती
(4)	शूरसेन	**(घ)**	राजगृह

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) लगभग 600 ई.पू.............................महाजनपद थे।
(2) बुद्ध ....गणसंघ से संबंध रखते थे।
(3) मल्ल गणसंघ की राजधानी .... थी।
(4) नंद .... के शासक थे।

4. सही कथन के सामने (✔) तथा गलत कथन के सामने (✗) का चिह्न लगाइए

(1) अजातशत्रु कोशल का राजा था । ( )
(2) 'ग्रामिणि' गाँव प्रशासन का मुखिया था। ( )
(3) बड़े कस्बों को महानगर नहीं कहा जाता था। ( )
(4) एक ही पेशे से जुड़े लोगों के संगठन को श्रेणी कहते हैं । ( )
(5) आहत सिक्कों पर पाँच चिह्न होते थे । ( )

करने के लिए कार्य

- भारत के रेखा मानचित्र पर महाजनपद और उनकी राजधानियों की स्थिति दर्शाइए।
- ऐसे शिल्पकार जो आप के नज़दीक रहते हैं या आपके घर आते हैं, उनका एक चार्ट तैयार कीजिए।
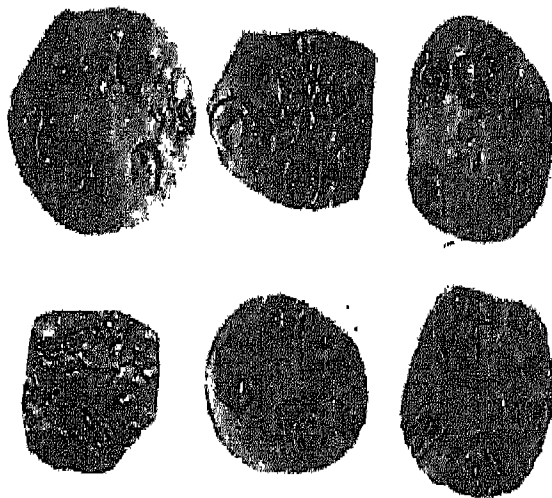
आहत सिक्के

मौर्य और शुंग काल

शिशुनाग वंश के पश्चात मगध पर नंद वंश का शासन था। नंद राजाओं को उखाड़ फेंकने का कार्य **चंद्रगुप्त मौर्य** ने किया। उसके प्रारंभिक जीवन के संबंध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। नंद राजाओं को शासन से उखाड़ने का कार्य चंद्रगुप्त मौर्य ने अपने शिक्षक **कौटिल्य**, जिन्हें **चाणक्य** के नाम से भी जाना जाता है, की सहायता से किया और वह मगध का शासक बन गया। 324 ई.पू. मगध के सिंहासन पर चंद्रगुप्त के सिंहारोहण के साथ ही मौर्य साम्राज्य का शासन प्रारंभ होता है।

मौर्य राजाओं के विषय में जानकारी अनेक साहित्यिक स्रोतों से प्राप्त होती है। अधिक महत्त्वपूर्ण जानकारी कौटिल्य द्वारा रचित ***अर्थशास्त्र*** तथा ***मैगास्थनीज़*** (जो भारत में चंद्रगुप्त की राजसभा में यवन राजदूत था) के वृत्तांतों से मिलती है। इसके अतिरिक्त सम्राट अशोक के शिलालेख भी हैं जिन्हें स्तंभों एवं शिलाओं पर खुदवाया गया है। इन्हें **राजाज्ञा** कहा जाता है। मौर्यकाल के कई प्राचीन स्थलों का पता हमें पुरातात्विक उत्खननों से चलता है। ये पुरातात्विक स्थल हमें लोगों के आर्थिक जीवन की भी जानकारी देते हैं।

चंद्रगुप्त मौर्य पहला शासक था जिसने लगभग समूचे भारत को एक राजनीतिक सत्ता के अधीन ला दिया। उसका साम्राज्य पश्चिम में अफ़गानिस्तान से लेकर पूर्व में असम तक, उत्तर में नेपाल तराई और दक्षिण में कर्नाटक तक फैला हुआ था। चंद्रगुप्त मौर्य के आने से पूर्व उत्तर-पश्चिमी भारत पर मुख्यतः गणसंघों तथा सिकंदर के सेनापति ***सैल्यूकस*** का शासन था। चंद्रगुप्त ने इन सभी को पराजित करके देश का एकीकरण किया।

देश के इस एकीकरण का श्रेय वास्तव में चाणक्य को ही जाता है। वह तक्षशिला विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के अध्यापक थे। सिकंदर के भारत पर आक्रमण के समय भारतीय राजाओं ने जिस कायरता एवं उदासीनता का प्रदर्शन किया उससे चाणक्य न केवल आहत हुए बल्कि क्रोधित भी हुए। इसलिए देश की रक्षा तथा निर्बल राजाओं को उखाड़ फेंकने हेतु चाणक्य ने अपने विद्यार्थियों को चंद्रगुप्त मौर्य के नेतृत्व में एक सेना तैयार करने की प्रेरणा दी। चंद्रगुप्त भी उसका शिष्य था। चाणक्य के मार्गदर्शन में चंद्रगुप्त को देश का एकीकरण करने में सफलता प्राप्त हुई। चाणक्य ने चंद्रगुप्त को राजा बना दिया तथा स्वयं एकीकृत राष्ट्र के **आमात्य** (प्रधानमंत्री) के रूप में कार्य किया।

मौर्य साम्राज्य की राजधानी **पाटलिपुत्र** (बिहार में स्थित वर्तमान पटना) थी। चंद्रगुप्त मौर्य ने लगभग 25 वर्ष शासन किया। उसके पश्चात उसके पुत्र **बिंदुसार** ने लगभग 27 वर्ष तक शासन किया। तत्पश्चात 272 ई.पूर्व में बिंदुसार के पुत्र **अशोक महान** ने सत्ता की बागडोर संभाली।

अशोक

अशोक महान की गणना विश्व के महानतम

मौर्य साम्राज्य
लाघमन
परोपनीसादे
शहबाजगढ़ी
मनसेरा
तक्षशिला
अरिया
अराकोसिया
हिमंद
वितस्ता
असिक्नी
परुष्णी
विपास
टोपरा
ब्रह्मपुत्र
सतुद्री
सिंधु
गेद्रोसिया
इंद्रप्रस्थ
यमुना
निगलीवा
श्रावस्ती
रामपूरवा
विराट
गंगा
कपिलवस्तु
लौरिया नंदनगढ़
लौरिया अरराज
चंबल
कोसांबी
इलाहाबाद
सारनाथ
पाटलिपुत्र
बराबर
उज्जयिनी
सांची
रूपनाथ
विदिशा
सौराष्ट्र
नर्मदा
ताम्रलिप्ति
गिरनार
ताप्ती
तोसली (धौली)
जौगदा
सोपारा
गोदावरी
कलिंग
अरब सागर
मस्की
कृष्णा
गोविमठ
तुंगभद्रा
इरागुदी
ब्रह्मगिरि
बंगाल की खाड़ी
चोल
केरल
कावेरी
पाण्ड्य
ताम्रपर्णी (श्रीलंका)
शैल राजाज्ञा
स्तंभ राजाज्ञा
मौर्य साम्राज्य की सीमा
हिंद
महासागर

शासकों में की जाती है। अपने पितामह चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा छोड़े गए साम्राज्य में वह केवल कलिंग साम्राज्य को ही जोड़ पाया। उसने 255 ई.पूर्व में कलिंग (वर्तमान उड़ीसा) पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की। परंतु युद्ध की क्रूरताओं तथा वीभत्स रूप ने उसे इतना शोकातुर बना दिया कि उसने भविष्य में कभी भी युद्ध न करने की घोषणा की। अशोक ने निर्णय लिया कि वह **धर्म** के माध्यम से लोगों का हृदय जीतने का प्रयास करेगा। इसलिए उसने शेष जीवन लोगों की भलाई तथा विश्व में धर्म के प्रचार के लिए अर्पित कर दिया। विश्व इतिहास में हिंसा एवं युद्ध का परित्याग करने वाला एक मात्र शासक अशोक महान ही था।

अशोक का धर्म

कलिंग युद्ध के पश्चात अशोक ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया। उसने अपना शेष जीवन एवं कार्य मानव-कल्याण को समर्पित किया। अशोक के शिलालेख विश्व इतिहास के किसी भी शासक द्वारा लिखवाए गए अभिलेखों में अद्वितीय स्थान रखते हैं। उसने पानी के लिए कुएँ खुदवाए, धर्मशालाएँ बनवाईं और सड़कों के किनारे छायादार वृक्ष लगवाए। उसने धर्मार्थ एवं परमार्थ के कार्यों के लिऐ चिकित्सालय बनवाए तथा उनकी देखभाल के लिए उसने अधिकारियों की नियुक्ति की। अशोक ने कहा कि लोग माता-पिता, शिक्षकों, अपने से बड़ों एवं ऋषि-मुनियों तथा श्रमणों का आदर करें तथा अपने सेवकों और सभी जीवों के प्रति दया

अशोक को कैसे याद किया जाता है? यह कहा जाता है कि, "सम्राटों के दसों हज़ारों नामों के बीच....केवल अशोक का नाम, एक तारे की भाँति चमकता है।"
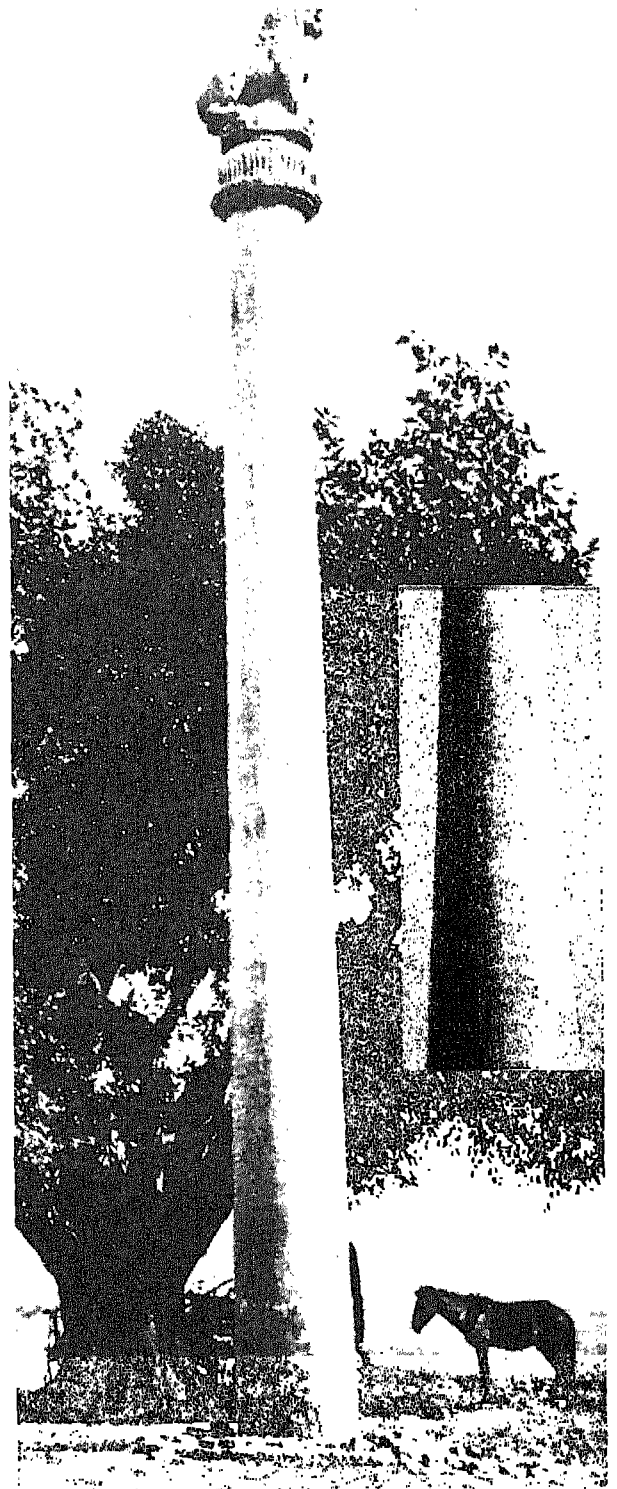
सिंह शीर्ष के साथ अशोक स्तंभ
आंतरिक चित्र : अशोक स्तंभ पर अंकित राजाज्ञा

का भाव रखें। इन सब शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार के लिए अशोक ने न केवल अपने संदेशों को स्तंभों पर अंकित करवाया बल्कि उन्हें बड़े साम्राज्य के विभिन्न हिस्सों में शिलाओं एवं चट्टानों पर भी खुदवाया। कई देशों में अपने दूत भी भेजे। उसने अपने पुत्र **महेंद्र** तथा पुत्री **संघमित्रा** को दूत के रूप में श्रीलंका भेजा।

प्रशासन

मौर्य साम्राज्य बहुत विशाल था। वास्तव में अपने समय में यह विश्व का विशालतम साम्राज्य था। ऐसे विशाल साम्राज्य के लिए विशाल प्रशासनिक ढाँचा भी आवश्यक था। इतिहास के किसी भी अन्य काल में इतने प्रकार के प्रशासनिक अधिकारी नहीं थे जितने कि मौर्य काल में थे। प्रशासनिक ढाँचे का केंद्र बिंदु राजा स्वयं होता था। पहले की तरह राजा की सहायता के लिए एक **मंत्रि-परिषद्** होती थी।

पूरे साम्राज्य को कई **प्रांतों** में बाँटा गया था। प्रमुख प्रांतों का प्रशासन किसी राजकुमार अथवा राज परिवार के सदस्य को सौंपा जाता था जिसे **कुमार** कहा जाता था। कभी-कभी किसी विश्वासपात्र अधिकारी को भी प्रांत प्रमुख बना दिया जाता था। छोटे प्रांतों का प्रशासन **राजुक** देखते थे। विभागीय अध्यक्षों को मुखिया या **महामात्र** कहा जाता था। उदाहरणस्वरूप किसी नगर के महामात्र को **नगर व्यवहारिक** कहा जाता था जबकि प्रशासनिक अधिकारी को **पुरुष** कहा जाता था। अधीनस्थ अधिकारी **युक्त** कहलाते थे। नगरों और ग्रामों की प्रशासन व्यवस्था अलग-अलग थी और उनके प्रशासक भी अलग-अलग होते थे। कौटिल्य द्वारा लिखित पुस्तक ***अर्थशास्त्र*** राजनीति पर लिखित महानतम ग्रंथ है। इसमें मौर्य साम्राज्य की प्रशासन व्यवस्था का विस्तृत वर्णन है।

अशोक ने कहा– "सभी मनुष्य मेरी संतान हैं ; जैसे कि मैं अपनी संतान के लिए कामना करता हूँ कि वे इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त करें, वैसे ही मैं सभी मनुष्यों के लिए कामना करता हूँ।"

समाज और अर्थव्यवस्था

इस काल में लोगों का जीवन शांतिपूर्ण एवं समृद्ध था क्योंकि प्रशासन कड़ा था। लोग कानून एवं नियमों का पालन करते थे। अच्छी खेती-बाड़ी के लिए बाँधों तथा नहरों का निर्माण किया गया। चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा निर्मित **सुदर्शन झील** इसका अच्छा उदाहरण है। कृषि तथा व्यापार के लिए राज्य लोगों की आर्थिक सहायता भी करता था। वन, वन्य प्राणी, प्राकृतिक संपदा तथा अन्य प्राकृतिक संसाधन सार्वजनिक संपत्ति माने जाते थे और उनका संरक्षण कानून द्वारा किया जाता था। व्यापार को नियमित करने के लिए कानून थे और लोग सरकार को कई प्रकार के कर अदा किया करते थे। कर एकत्रित करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। अधिकारी नियमित रूप से वस्तुओं की मानकता एवं गुणवत्ता की जाँच पड़ताल भी किया करते थे।

मौर्य काल में तक्षशिला, काशी, पाटलिपुत्र तथा अन्य अनेक स्थान शिक्षा के महान केंद्र थे। यद्यपि अशोक ने बौद्ध धर्म को अपना लिया था फिर भी ब्राह्मणों तथा जैन धर्मावलंबियों को पूरा सम्मान तथा संरक्षण दिया जाता था। अशोक ने अपने बारहवें शिलालेख में सभी धर्मों एवं संप्रदायों के लोगों को यह परामर्श दिया कि वे एक-दूसरे का आदर करें तथा आलोचना न करें ताकि समाज में सौहार्द्र एवं सद्भाव बना रहे। उसने यह भी कहा कि हमें दूसरों के दृष्टिकोण

को समझना तथा सम्मान करना चाहिए। अशोक यह भी चाहता था कि विभिन्न समुदायों के सम्मानित व्यक्ति आपसी बातचीत के माध्यम से मतभेदों का निपटारा करें।

कला एवं स्थापत्य

कला तथा स्थापत्य के क्षेत्र में मौर्य शासकों का योगदान उल्लेखनीय है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण है, अशोक के 34 फुट तक ऊँचे पत्थर से बने अनेक स्तंभ जिनपर उसकी राजाज्ञाएँ खुदी हुई हैं। इनकी बढ़िया पालिश और बनावट आज भी देखी जा सकती हैं। इन स्तंभों के शीर्षों पर जानवरों की प्रतिमाएँ बनाई गई थीं। इसका सबसे बढ़िया उदाहरण है उत्तर प्रदेश में स्थित **सारनाथ** का स्तंभ-शीर्ष जिसकी न केवल आधारशिला अति सुसज्जित है बल्कि इस पर पीठ से पीठ सटाए हुए चार सिंह भी बनाए गए हैं। इन सबके ऊपर बनाया गया था एक **धर्म चक्र**। जब 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ तो इसी स्तंभ-शीर्ष को **राष्ट्रीय प्रतीक** के रूप में चुना गया। मौर्य शासकों ने गुफ़ाएँ खुदवाने का कार्य भी शुरू किया। ये गुफ़ाएँ बौद्ध भिक्षुओं व आजीविका संप्रदाय के निवास स्थान के लिए थीं। इनमें से कुछ प्रसिद्ध गुफ़ाएँ **बाराबर** तथा **नागार्जुन** पहाड़ियों में हैं। पत्थर पर तराशी गई आदमकद मूर्तियाँ भी मिली हैं जिनमें सबसे प्रभावशाली मूर्ति पटना के निकट दीदारगंज से मिली **यक्षी** की मूर्ति है।

सारनाथ के अशोक स्तंभ का शीर्षभाग
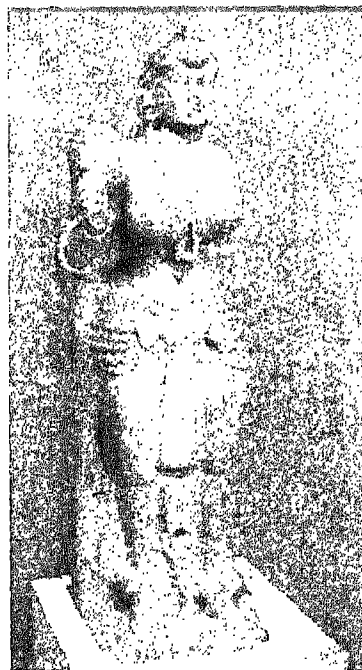
अशोककालीन यक्षी की मूर्ति

232 ई.पूर्व सम्राट अशोक की मृत्यु के पश्चात मौर्य साम्राज्य पतन की ओर जाने लगा। कहते हैं कि अशोक ने अपनी पूरी शक्ति तथा राज्य के संसाधन एक नैतिक तथा कल्याणकारी समाज की स्थापना के लिए समर्पित कर दिए। इससे संसाधन के अभाव में सेना तथा प्रशासन दोनों कमज़ोर होते गए। इसी कारण हिंद-यवनों ने भारत पर आक्रमण कर उत्तर भारत के कई भागों को जीत लिया। अंतिम मौर्य शासक **बृहद्रथ** ने सेना का विश्वास खो दिया था। सेनापति **पुष्यमित्र शुंग** ने 187 ई.पूर्व राजा का वध कर दिया और स्वयं राजा बन बैठा। भारत के इतिहास में बारहवीं शताब्दी तक मात्र यही एक ऐसी घटना है जब किसी राजा का वध किया गया हो। पुष्यमित्र के शासन काल में ही साँची के प्रसिद्ध बौद्ध स्तूप को उसका वर्तमान स्वरूप दिया गया।
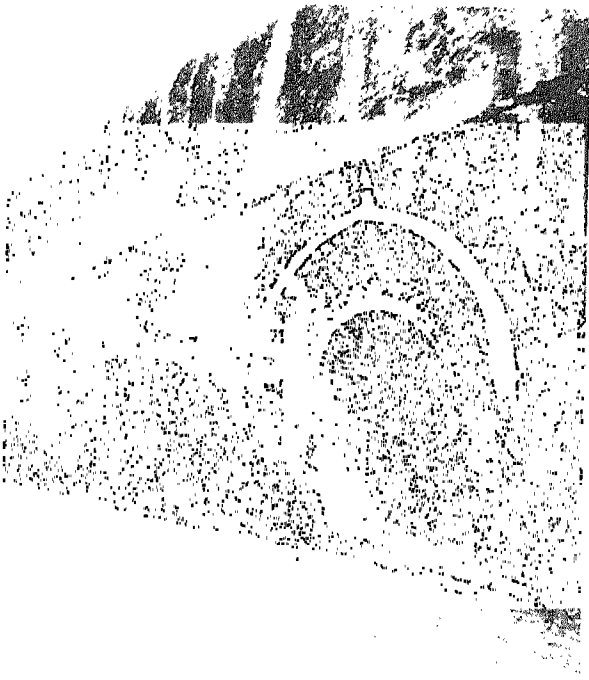
बाराबर गुफ़ा
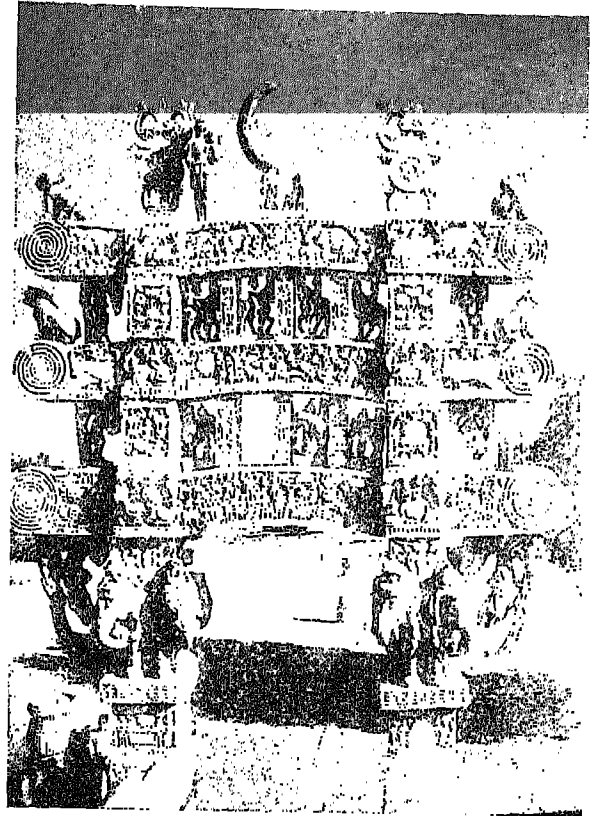
साँची स्तूप का मुख्य द्वार
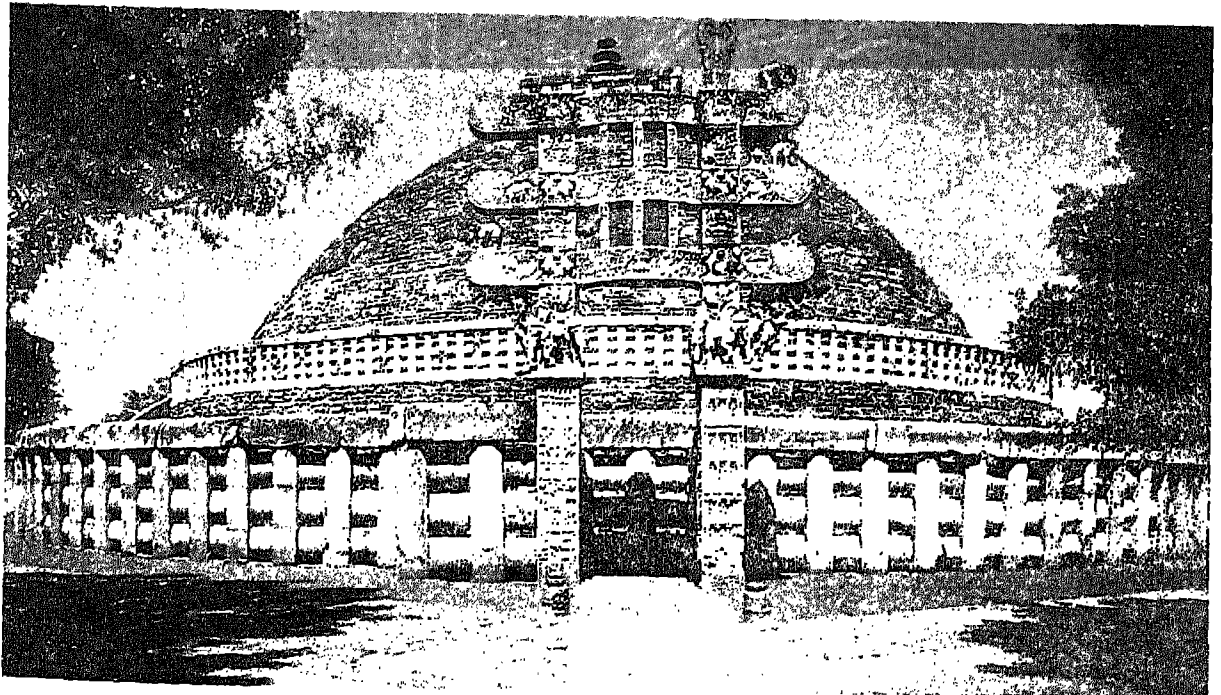
साँची स्तूप

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) चंद्रगुप्त के राजा बनने के समय मगध पर किसका शासन था?

(2) कौटिल्य कौन थे?

(3) चंद्रगुप्त मौर्य के शासन काल में मौर्य साम्राज्य का विस्तार कहाँ तक था?

(4) कलिंग के युद्ध का अशोक पर क्या प्रभाव पड़ा?

(5) शिलालेख तथा स्तंभ अभिलेख क्या हैं?

(6) *मैगास्थनीज़* कौन था?

(7) लोगों के जीवन को आरामदेह बनाने के लिए अशोक ने क्या कार्य किए?

(8) मौर्य प्रशासन व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

(9) मौर्य काल की कला एवं वास्तुकला का वर्णन कीजिए।

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	कौटिल्य	**(क)**	झील
(2)	पाटलिपुत्र	**(ख)**	अर्थशास्त्र
(3)	सुदर्शन	(ग)	राजा
(4)	बिंदुसार	(घ)	राजधानी

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) मौर्य वंश का प्रथम शासक ———————— था।

(2) *मैगास्थनीज़* एक यूनानी ———————— था।

(3) अशोक ———————— का अनुयायी बन गया।

(4) सुदर्शन झील का निर्माण ———————— ने करवाया था।

(5) तक्षशिला और काशी ———————— के प्रमुख केंद्र थे।

4. सही वाक्य के सामने (✓) तथा गलत वाक्य के सामने (✗) का चिह्न लगाइए

(1) मौर्य साम्राज्य का भौगोलिक विस्तार पश्चिम में अफ़गानिस्तान से लेकर पूर्व में असम तक था। ( )

(2) सारनाथ का स्तंभ हमारा राष्ट्रीय प्रतीक है। ( )

(3) अशोक ने अपने पुत्र एवं पुत्री को श्रीलंका भेजा। ( )

(4) अपने संदेश के प्रचार हेतु धर्म महामात्रों की नियुक्ति एक अतिविशिष्ट नियुक्ति थी। ( )

करने के लिए कार्य

* अशोक का स्तंभ शीर्ष सहित बनाइए।
* भारत के मानचित्र में मौर्य साम्राज्य का विस्तार दिखाइए।
* मानचित्र पर अशोक के शिलालेख एवं अभिलेखों वाले स्थान दिखाइए।
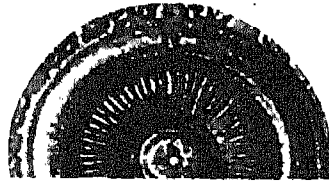
13

दक्कन तथा दक्षिण भारत की महापाषाणीय संस्कृति

लोहे की खोज ने मानव जीवन को काफी प्रभावित किया। यह धातु कठोर है और अधिक मात्रा में पाई जाती है। आप शायद जानते हैं कि लोहा न केवल सबसे सस्ती धातु है बल्कि सर्वाधिक उपयोग की जाने वाली धातु भी है। यह औज़ार, वायुयान, रेल, कार, इस्पात आदि बनाने के काम आता है। इससे घरेलू बर्तनों के अतिरिक्त कागज़ पर लगाए जाने वाले पिन तथा सुइयाँ भी बनाई जाती हैं।

क्या आप जानते हैं कि भारत में लोहे का प्रचलन लगभग 1600 ई. पूर्व प्रारंभ हुआ था? इसका प्रयोग कृषि यंत्र, घरेलू बर्तन तथा हथियार (शस्त्र) बनाने के लिए किया जाता था। दक्षिण भारत में सर्वप्रथम लोहे का प्रयोग करने वाले लोगों को महापाषाणीय लोग कहते हैं। दक्षिण
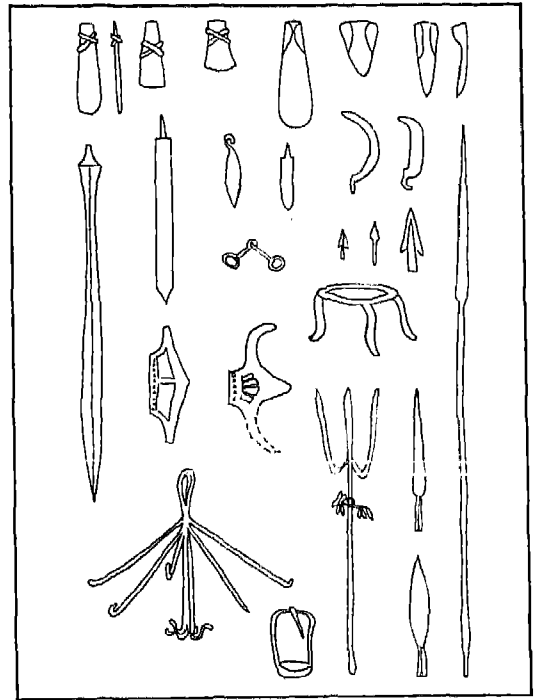
महापाषाणीय शव कक्ष

महापाषाण काल के लोहे के औज़ार

भारत में महापाषाणीय संस्कृति की शुरुआत लगभग 1100 ई.पू. से होती है। उन्हें महापाषाणीय इसलिए कहा जाता है क्योंकि वे अपने मृतकों को दफ़ना कर उस स्थान पर बड़े-बड़े पत्थरों का घेरा बना दिया करते थे या बड़े-बड़े पत्थरों की दीवार सी बना देते थे। कभी-कभी वे बड़ी-बड़ी पाषाण शिलाओं से शव कक्ष भी बनाया करते थे।
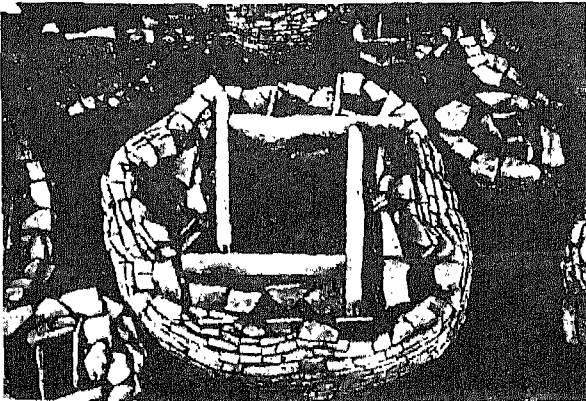
महाराष्ट्र में खापा, तकलघाट, नाईकुंड तथा माहुरझरी महापाषाण काल के कुछ प्रमुख स्थान

हैं। दक्षिण भारत में ऐसे प्रसिद्ध स्थान हैं, बह्मगिरि, मस्की, हल्लूर तथा हरदनहल्ली। मृतकों को दफ़न करके उन पर मकबरा बनाने या उस स्थान पर चिह्न के रूप में कोई शिला खड़ी करने की परंपरा आज भी है।

लगभग बीस वर्ष पूर्व तक यह समझा जाता था कि ये लोग घुमक्कड़ होने के कारण अपना निर्वाह शिकार करके या भोजन संग्रह करके ही किया करते थे और वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते थे। यही कारण है कि इनके शव दफ़न करने संबंधी पुरातत्व प्रमाण हमें मिल जाते हैं। परंतु अब हमें पता लग चुका है कि ये लोग कृषक थे और कई प्रकार के अनाज उगाते थे तथा पशु-पालन भी किया करते थे। ऐसा लगता है कि ये लोग घोड़े रखने के बहुत शौकीन थे। कई स्थानों पर मृतक शरीरों के साथ-साथ घोड़ों के अवशेष भी मिले हैं। कई स्थानों पर तो आभूषणों सहित घोड़े का पूरा कंकाल मिला है। लगता है घोड़ों का शव भी परंपरागत तरीके से दफ़नाया जाता था।

ये लोग लोहे के औज़ार एवं हथियारों का उपयोग करते थे। कृषि यंत्रों में कुल्हाड़ी, हँसिया, हथौड़ा तथा हल आदि होते थे। छुरा, भाला, चाकू तथा तलवार जैसे हथियार भी मिले हैं। त्रिशूल भी पाए गए हैं।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) महापाषाण का क्या अर्थ है?

(2) महापाषाण कालीन स्थानों के नाम लिखिए।

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) ———— दक्षिण भारत में लोहे का उपयोग करने वालों में सर्वप्रथम थे।

(2) महापाषाण कालीन औज़ार तथा हथियार ———— से बनाए जाते थे।

(3) महापाषाण कालीन लोग ———— जीवन व्यतीत करते थे।

(4) घोड़ों के अवशेष दफ़न किए गए ———— अवशेषों के साथ मिलते हैं।

करने के लिए कार्य

* महापाषाण काल के औज़ारों के चित्र बनाइए।
* ज्ञात कीजिए कि क्या आप के आस-पास कुछ ऐसे लोग हैं जो मृतकों को दफ़नाने के पश्चात उन स्थानों पर बड़े-बड़े पत्थर रख देते हैं।

दक्कन तथा दक्षिण भारत का प्रारंभिक इतिहास

सातवाहन

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात, मगध का महत्त्व उत्तर भारत में कम होने लगा। दक्कन में **सातवाहनों** के राज्य का उदय हुआ जिनकी राजधानी **प्रतिष्ठान** (महाराष्ट्र में वर्तमान पैठन) थी। उन्होंने ई.पूर्व पहली शताब्दी से लेकर ईसा की तीसरी शताब्दी तक लगभग 400 वर्ष शासन किया। **गौतमीपुत्र शातकर्णी** सातवाहन वंश के महानतम राजाओं में से एक था। गौतमीपुत्र शातकर्णी के साम्राज्य में आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान के कुछ भाग शामिल थे। सातवाहन साम्राज्य ने उत्तर एवं दक्षिण भारत के बीच सेतु का काम किया।

सातवाहनों के पास एक विशाल जहाज़ी बेड़ा था। पूर्वी तथा पश्चिमी देशों से उनके व्यापारिक संबंध थे। उन दिनों व्यापारिक संघ अति सक्रिय एवं शक्तिशाली थे। सातवाहनों का रोमन साम्राज्य से चल रहा व्यापार उन्नति के शिखर पर था।

सातवाहनों के शासन के पश्चात महाराष्ट्र में **राष्ट्रकूट** तथा आंध्र प्रदेश में **इक्ष्वाकु** सत्ता में आए। इनमें से कुछ राजाओं के नाम समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तंभ लेख में भी मिलते हैं।

सातवाहनों ने कई बौद्ध मठ भी बनवाए। बौद्ध् मंदिर जिन्हें **चैत्य** तथा मठ जिन्हें **विहार** कहा जाता है, बनवाए गए। महाराष्ट्र के पूना में **कार्ले** एवं **भाजा** नामक स्थान पर बने चैत्य सब से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कई **स्तूप** भी बनवाए जिनमें से **अमरावती** का स्तूप सर्वाधिक प्रसिद्ध है। मध्य प्रदेश में स्थित साँची के स्तूप का प्रवेश द्वार उन्हीं के अनुदान से बना था।
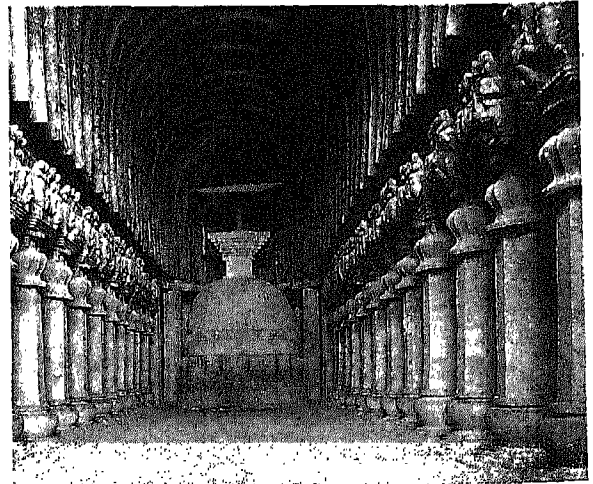
कार्ले की गुफ़ा का आंतरिक दृश्य
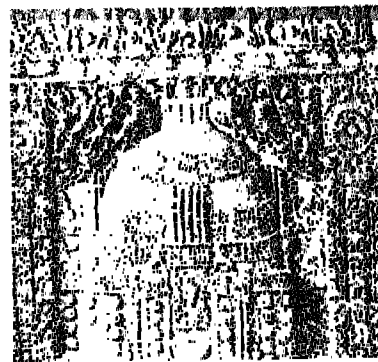
पत्थर पर अंकित अमरावती स्तूप का एक चित्र

दक्षिण भारत - तीन राज्यों का काल

दक्षिण भारत में तीन राज्यों का उदय हुआ – ये चोल, पांड्य और चेर थे। इनके नाम हमें अशोक के एक शिलालेख में मिलते हैं तथा इनकी विस्तृत जानकारी का आधार **"संगम साहित्य"** है जिसको लिखने में लगभग तीन से चार सौ वर्ष तक का समय लग गया। तमिल परंपरा के अनुसार प्राचीन काल में कवि तथा
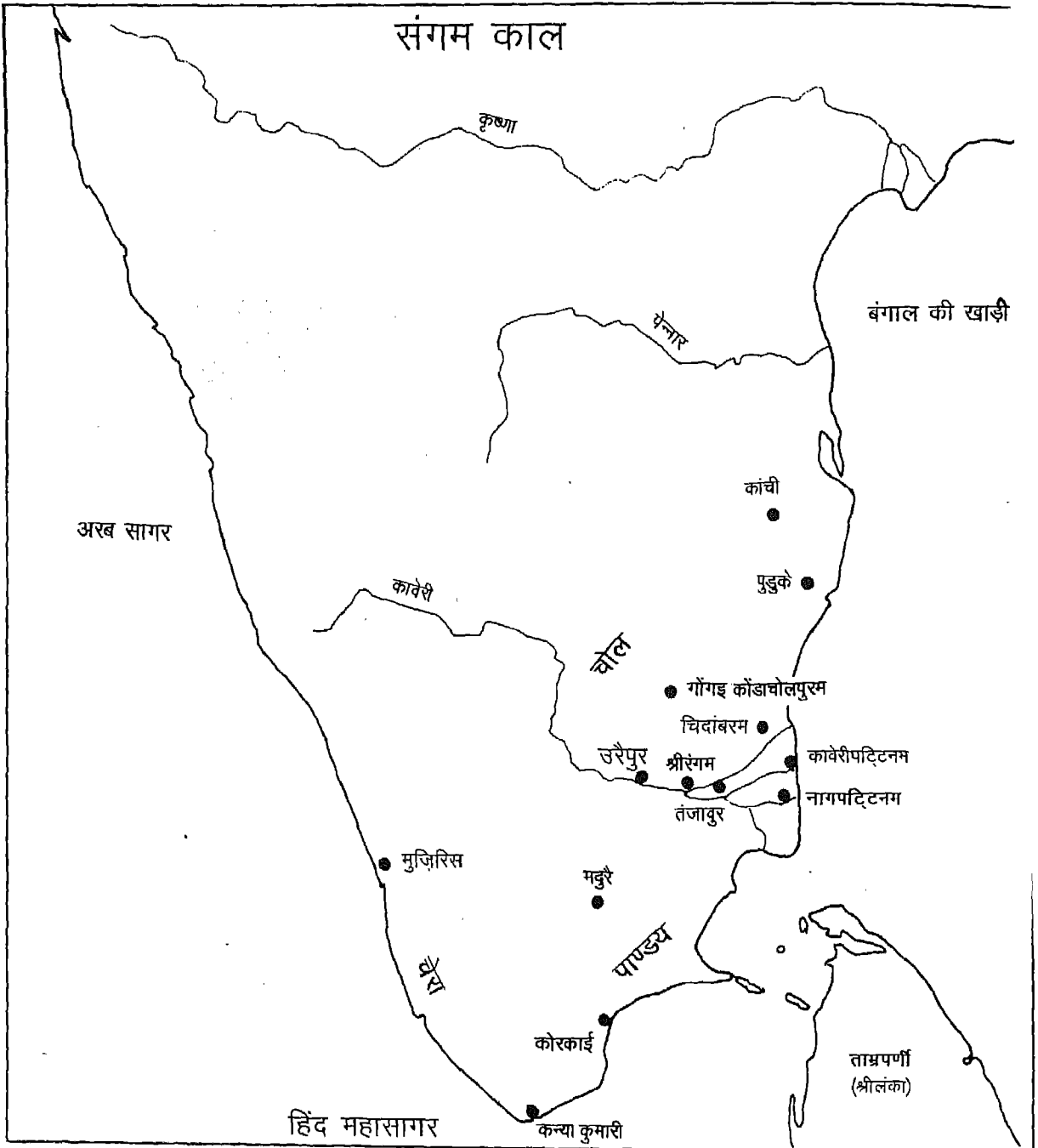
विद्वान पांड्य राजाओं की राजधानी में एकत्र हुआ करते थे। वे इस सभा **(संगम)** में अपनी-अपनी कविताएँ प्रस्तुत करते थे और उनमें से जो अनुमोदित होती थीं उन्हें एक पुस्तक के रूप में संग्रहीत कर दिया जाता था। ऐसी दो पुस्तकें खो चुकी हैं और अब ऐसा केवल एक ही संग्रह उपलब्ध है।

चोल साम्राज्य **पेन्नार** नदी के दक्षिण क्षेत्र में स्थित था। उन्होंने बहुत लंबे काल तक शासन किया। उन्होंने पल्लव, राष्ट्रकूट तथा चालुक्य शासकों के जागीरदारों के रूप में भी शासन किया। परंतु ईसा की नवीं शताब्दी में वे एक महान शक्ति के रूप में उभरकर आए और एक

विशाल साम्राज्य जिसमें श्रीलंका, जावा तथा सुमात्रा भी शामिल थे, स्थापित किया। चोल राजाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध थे **राजराजा महान** तथा **राजेंद्र** । चोल साम्राज्य की राजधानी पुहार (कावेरीपट्टिनम) थी। एक अन्य प्रमुख नगर था उरैयुर, जो कपास के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था।

पांड्यों ने तमिलनाडु के वर्तमान ज़िला तिरूणवेली, रामनाड तथा मदुरै पर अपना आधिपत्य जमा लिया। उनकी राजधानी **मदुरै** थी। पांड्य शासकों में सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक **नेडुनचेलियन** थे।

चेर अथवा **केरलपुत्रों** ने केरल तथा तमिलनाडु के कुछ भागों पर अपना राज्य स्थापित किया। उनके सबसे प्रसिद्ध शासक थे, **सैनगुटवन**। इन प्रारंभिक राज्यवंशों के बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

जन-जीवन

संगम साहित्य में पाँच पारिस्थितिकी अथवा भौगोलिक क्षेत्रों का उल्लेख है। प्रत्येक क्षेत्र के लोगों की जीवन-शैली भिन्न-भिन्न थी। वे क्षेत्र थे – पर्वतीय तथा वनीय प्रदेश **(कुरीनजी)**, चरागाह प्रदेश **(मुल्लई)**, कृषि योग्य उपजाऊ मैदानी प्रदेश **(मारुतम)**, समुद्र तटीय प्रदेश **(नेतल)** तथा शुष्क प्रदेश।

कृषि भूमि जोतने के लिए लोहे के फालवाला हल इस्तेमाल किया जाता था। वे लोग चावल, गन्ना, दालें, फल तथा मसाले उगाते थे। व्यापार एवं वाणिज्य मुख्य आर्थिक गतिविधियाँ थीं। व्यापार की जाने वाली मुख्य वस्तुएँ थीं – मोती, कीमती पत्थर, गर्म मसाले, कपड़ा, लकड़ी, हाथी-दाँत आदि। इन सभी वस्तुओं की माँग पश्चिमी देशों में काफी अधिक थी। रोम के लोग भारत में ताँबा, सीसा, जस्ता, शीशा, शराब, आभूषण, चीनी मिट्टी के बर्तन तथा सोने और चाँदी के सिक्के लाते थे। भारतीय वस्तुओं के बदले रोमन व्यापारी सोने और चाँदी के सिक्के देते थे। रोमन काल के सोने के सर्वाधिक सिक्के आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा महाराष्ट्र में पाए गए हैं।

कई तटवर्ती नगर जैसे **पुहार** (चोल साम्राज्य) **मुज़िरिस** (चेर साम्राज्य) तथा **अरिकमेडु** (पांड्य साम्राज्य) अपने शासकों के संरक्षण में ही विकसित हुए। प्रशासनिक कार्यों में राजा की सहायता उसके परामर्शदाता करते थे। महत्त्वपूर्ण मामलों पर विचार-विमर्श करने के लिए एक **सभा** की भी व्यवस्था थी। शासन करने वाला वर्ग **अरासर** तथा अन्य लोगों को **कदेसियर** कहा जाता था।

ब्राह्मण धर्म के अतिरिक्त दक्षिण भारत के लोगों को बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म के सिद्धांतों तथा शिक्षाओं का भी पता था। वे वैदिक देवताओं के पूजन से भी परिचित थे। सबसे अधिक प्रिय देवता थे **मुरुगन** जिन्हें उत्तर भारत में **कार्तिकेय** के नाम से जाना जाता है। युद्ध में लड़कर वीर गति प्राप्त करने वाले योद्धाओं के सम्मान में शिला-स्मारक बनाए जाते थे जिन्हें **वीरक्कल** कहा जाता था।

ईसा की चौथी व पाँचवीं शताब्दी में दक्षिण भारत से संपर्क स्थापित होने के कारण भारतीय संस्कृति का प्रचार तथा प्रसार दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में भी होने लगा। संस्कृत भाषा, भारतीय नाम तथा धर्मों का प्रसार दूर-दूर तक हुआ। **रामायण** और **महाभारत** जैसी कथाएँ अत्यंत लोकप्रिय हो गईं।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) सातवाहन कब और कहाँ शासन करते थे?

(2) गौतमीपुत्र शातकर्णी कौन था?

(3) दक्षिण भारत में कौन-कौन से वंशों का शासन था?

(4) राजराजा महान तथा राजेंद्र क्यों प्रसिद्ध हैं?

(5) संगम साहित्य क्या है?

(6) सातवाहनों के शासन काल में किन-किन देशों के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित हो चुके थे?

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	सातवाहन	(क)	मदुरै
(2)	चोल	(ख)	कोचीन
(3)	पांड्य	(ग)	प्रतिष्ठान
(4)	चेर	(घ)	कावेरीपट्टिनम

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) सातवाहन शासकों ने बौद्ध स्तूप ———— नामक स्थान पर बनवाए।

(2) अमरावती स्तूप ———— में स्थित था।

(3) शिला स्मारकों को ———— कहा जाता था।

4. सही कथन के आगे (✓) तथा गलत कथन के आगे (✗) का चिह्न लगाइए।

(1) बौद्ध मठों को विहार कहा जाता था। ( )

(2) कार्ले चैत्य कर्नाटक में है। ( )

(3) संगम साहित्य में पाँच पारिस्थितिक अथवा भौगोलिक क्षेत्रों के वर्णन हैं। ( )

(4) देव कार्तिकेय को ही दक्षिण भारत में मुरुगन नाम से जाना जाता है। ( )

करने के लिए कार्य

* अपनी कापी में स्तूप का चित्र बनाइए।
* उन स्थानों का भ्रमण कीजिए जहाँ चट्टानों को काटकर चैत्य या विहार बनाए गए हैं।

14
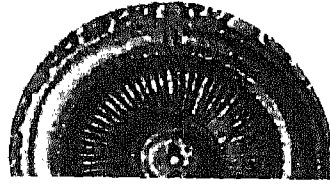
मौर्यों एवं शुंगों के बाद का उत्तर भारत

(ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से ईसा की तीसरी शताब्दी तक)

उत्तर भारत में शक्तिशाली मौर्य तथा शुंग शासकों के पतन के पश्चात हिंद-यवनों, शकों, पार्थियनों तथा कुषाणों ने आक्रमण किए। ये सभी अफ़गानिस्तान से होते हुए बोलन तथा खैबर दर्रों के रास्ते ईरान तथा मध्य एशिया से आए थे। वे धीरे-धीरे भारत में बस गए। उन्होंने भारत के धर्मों एवं जीवन-शैली को स्वीकार कर लिया और वे भारतीय समाज का एक अंग बन गए।

अशोक की मृत्यु के पश्चात **यवनों** ने भारत पर आक्रमण किया और **पाटलिपुत्र** तक पहुँच गए। हिंद-यवन शासकों में सबसे प्रसिद्ध् शासक **मिनांडर** था जिसे मिलिंद के नाम से भी जाना जाता है। उसने अपना शासन पंजाब तथा कश्मीर में स्थापित किया। मिनांडर बाद में बौद्ध बन गया। एक अन्य हिंद-यवन शासक, **हैलियोडोरस,** वैष्णव बन गया और उसने बेसनगर में एक गरुड़ स्तंभ बनवाया।

हिंद-यवनों के पश्चात **शक** आए। वे भारत में **बोलन दर्रे** के रास्ते से आए थे। शक शासकों में सबसे प्रसिद्ध शासक **रुद्रदमन** था। उसने काठियावाड़ (गुजरात) में **सुदर्शन झील** पर चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा बनवाए गए बाँध की मरम्मत करवाई। **पार्थियन** वास्तव में ईरान के रहने वाले थे। पार्थियन शासकों में सबसे प्रसिद्ध **गोंडोफरनीस** था।

कुषाण चीन के तकलमकान मरुस्थल से आए थे। ये **यू-ची** नाम से जाने जाते थे। हिंद-यवनों, पार्थियनों तथा शकों को खदेड़ कर, वे अफ़गानिस्तान में जम गए। धीरे-धीरे उन्होंने अपना साम्राज्य भारत में बढ़ा लिया। **कनिष्क** सबसे प्रसिद्ध कुषाण शासक था। कनिष्क बौद्ध धर्म को संरक्षण प्रदान करने के लिए भी जाना जाता है। उसने **पुरुषपुर** (वर्तमान पेशावर जो पाकिस्तान में है) में एक मठ तथा एक स्तूप का निर्माण करवाया। कनिष्क कला, संस्कृत साहित्य तथा विज्ञान का भी संरक्षक था। बाद में कुषाण

कनिष्क की मूर्ति

शासकों ने शायद हिंदू धर्म स्वीकार कर लिया था। **वासुदेव** अंतिम कुषाण शासक था।

मध्य एशिया तथा उत्तर भारत में संपर्क

यूनानियों, शकों, पार्थियनों तथा कुषाणों ने भारतीय समाज में कुछ नए योगदान दिए। मध्य एशिया एवं पश्चिम एशिया के साथ व्यापार के नए रास्ते खुल गए। कुषाण स्वर्ण मुद्राएँ चलाने वाले प्रथम शासक थे। शक तथा कुषाण शासकों ने छोटे कुरते, पायजामे तथा लंबे कोट का प्रचलन प्रारंभ किया।

कुछ विदेशी शासकों ने वैष्णव धर्म तथा कुछ ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। कुषाण वंश के कुछ सिक्कों पर शिव तथा बुद्ध के चित्र अंकित हैं। बौद्ध धर्म इस समय दो भागों में विभाजित हो गया – एक **हीनयान** तथा दूसरा **महायान**। महायानी बौद्ध महात्मा बुद्ध की मूर्तियों की पूजा करते थे। कनिष्क स्वयं भी महायानी बौद्ध धर्म का महान संरक्षक था।

गांधार कला शैली में बुद्ध की प्रतिमा

कला, भाषा एवं साहित्य

कला, भाषा, साहित्य तथा विज्ञान के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। कला के क्षेत्र में जो दो मुख्य केंद्र उभरकर आए, वे थे तक्षशिला तथा मथुरा। बुद्ध, शिव तथा विष्णु की मूर्तियाँ बनाई गईं। खगोल शास्त्र तथा चिकित्सा के क्षेत्र में भी विकास हुआ। **चरक** तथा **सुश्रुत** ने औषधि विज्ञान तथा शल्य विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति की। **पाणिनि** के पश्चात **पातंजलि** का **महाभाष्य** शब्दों के विकास, भाषा तथा व्याकरण का महान ग्रंथ था। इससे हमें उस काल के इतिहास का भी पता चलता है। इस काल में कई धर्मशास्त्र भी लिखे गए। **अश्वघोष** तथा **नागार्जुन** दोनों महान विद्वान तथा शिक्षक थे।

मथुरा से प्राप्त जैन तीर्थंकर की प्रतिमा

साहित्यिक गतिविधियाँ **धर्मशास्त्र** तथा **व्याकरण** तक ही सीमित नहीं थीं। कविता, नाटक तथा अन्य साहित्यिक विधाएँ भी पनपीं।

यह बता देना उचित होगा कि इस काल में आने वाले अधिकतर आक्रमणकारियों ने कोई न कोई भारतीय धर्म अवश्य स्वीकार कर लिया। उन्होंने भारतीय संस्कृति को अपनाया तथा वे भारतीय समाज के अंग बन गए।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) यूनानी कौन थे और कहाँ के शासक थे?
(2) कुषाण कौन थे?
(3) कनिष्क क्यों प्रसिद्ध है?
(4) मथुरा तथा गांधार कला शैली से क्या अभिप्राय है?

2. सही जोड़े बनाइए

	वंश		राजा
(1)	हिंद-यवन	(क)	रुद्रदमन
(2)	शक	(ख)	कनिष्क
(3)	पार्थियन	(ग)	मिनांडर
(4)	कुषाण	(घ)	गोंडोफरनीस

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) पार्थियन —————— से आए थे।
(2) पुरुषपुर —————————— की राजधानी थी ।
(3) महाभाष्य —————————— द्वारा रचित पुस्तक है ।

4. सही वाक्य के आगे (✓) तथा गलत वाक्य के आगे (✗) चिह्न लगाइए

(1) चरक तथा सुश्रुत ने औषधि विज्ञान तथा शल्य विज्ञान के ज्ञान में वृद्धि की। (   )
(2) कुषाण सोने के सिक्के चलाने वालों में सर्वप्रथम नहीं थे। (   )
(3) महायानी बौद्ध बुद्ध की प्रतिमाओं की पूजा नहीं करते थे। (   )
(4) मथुरा कला शैली बुद्ध, शिव तथा विष्णु की मूर्तियाँ बनाने के लिए प्रसिद्ध थी। (   )
(5) हिंद-यवन, शक तथा कुषाण भारतीय समाज में घुलमिल गए। (   )

करने के लिए कार्य

* गांधार तथा मथुरा कला शैली से बनी मूर्तियाँ देखने के लिए किसी संग्रहालय में जाइए।
* पुरानी मूर्तियों के चित्र एकत्र कीजिए।
* एशिया के मानचित्र में मध्य एशिया, ईरान, अफ़गानिस्तान तथा भारतवर्ष दर्शाइए।

गुप्त साम्राज्य

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात कुछ शताब्दियों तक उत्तर भारत में कोई भी विशाल साम्राज्य नहीं था। ईसा की चौथी शताब्दी में एक नए राजवंश ने उत्तर भारत के एक बहुत बड़े भू-भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। यह साम्राज्य गुप्त साम्राज्य था। गुप्त साम्राज्य में उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, पंजाब तथा उत्तर-पश्चिमी भारत शामिल थे। इसका प्रभाव उत्तर-पश्चिम में अफ़गानिस्तान तक, पूर्व में कामरूप (असम) तक और दक्षिण में तमिलनाडु तक विद्यमान था। गुप्त शासकों ने दो सौ से भी अधिक वर्षों तक शासन किया।

गुप्त राजवंश का संस्थापक **श्री गुप्त** था। पहला प्रसिद्ध शासक **चंद्रगुप्त-प्रथम** था। उसके पश्चात उसका पुत्र **समुद्रगुप्त** सत्ता में आया। उसके बारे में हमें बहुत सी जानकारी इलाहाबाद में स्थित अशोक के स्तंभ पर खुदवाए गए उसके अभिलेख से प्राप्त होती है। समुद्रगुप्त द्वारा खुदवाया स्तंभ-अभिलेख **प्रयाग प्रशस्ति** के नाम से जाना जाता है। उसकी सैनिक कार्यवाहियों के कारण उसे अनेक विजय प्राप्त हुईं और परिणामस्वरूप गुप्त साम्राज्य का भारत के विशाल भू-भाग पर प्रत्यक्ष शासन स्थापित हो गया। इसके अतिरिक्त कई स्वतंत्र नरेशों ने भी समुद्रगुप्त की प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली।

समुद्रगुप्त के पश्चात उस का पुत्र **चंद्रगुप्त द्वितीय** गद्दी पर बैठा जिसे **विक्रमादित्य** के नाम से भी जाना जाता है। वह शिक्षा तथा कला के क्षेत्र में एक संरक्षक के रूप में प्रसिद्ध है। **कालिदास** तथा **अमर सिंह** के अतिरिक्त कई अन्य विद्वान एवं कवि भी उसके दरबार की

गुप्त राजाओं के सिक्के

शोभा बढ़ाते थे। इसी काल में चीनी यात्री **फाह्यान** भारत आया और उसने भारतीय जन-जीवन के बारे में लिखा।

प्रशासन

राजा का स्थान सबसे प्रमुख होता था तथा वह मंत्रियों के परामर्श और सहायता से शासन चलाता था। गुप्त साम्राज्य को प्रांतों में विभाजित किया गया था। इन्हें **भुक्ति** कहा जाता था और प्रत्येक **भुक्ति** का शासन एक **उपरिक महाराज** द्वारा चलाया जाता था। भुक्ति को ज़िलों अर्थात **विषयों** में बाँटा गया था जिसकी देख-भाल **विषयपति** किया करता था। ग्राम प्रशासन की देख-भाल गाँव का

लाहौर
जलंधर
मद्र
करत्तरपुरा
ससानियन साम्राज्य
सतलुज
यौधेह
सिंधु
अर्जुनायन
मालव
शक
यमुना
गंगा
ब्रह्मपुत्र
हि मा ल य
इंद्रप्रस्थ
अहिच्छत्र
बिलसढ़
श्रावस्ती
मथुरा
कन्नौज
कपिलवस्तु
नाग
कुशीनगर
अयोध्या
वैशाली
लिच्छवी
दवाक
काशी
पाटलिपुत्र
पद्मावती
देवगढ़
कोसांबी
मगध
नालंदा
राजगीर
दसपुर
एरण
उदयगिरी
नचना
परिव्राजक
बोधगया
पुण्ड्रवर्धन
साँची
विदिशा
उच्चकल्प
उज्जयिनी
नर्मदा
ताम्रलिप्ति
समतट
वल्लभी
भरुकच्छ
नंदीवर्धन
ताप्ती
महानदी
वाकाटक
अजंता
वत्सगुमला
सुरपरक
प्रतिष्ठान
गोदावरी
कलिंग
कलिंग नगर
अरब सागर
कृष्णा
वेंगीपुर
बंगाल की खाड़ी
कदंब
तुगभद्रा
गंगा
पल्लव
कांचीपुरम
कावेरी
चोल
कावेरीपट्टिनम
वंशी
चेर
मदुरै
पाण्डय
अनुराधापुर
ताम्रपर्णी
(श्री लंका)
हिंद महासागर

गुप्त साम्राज्य

गुप्त साम्राज्य की सीमाएँ

समुद्र गुप्त का दक्षिण भारत अभियान

मुखिया कुछ वरिष्ठ ग्रामीणों की सहायता से करता था। कानून को दो भागों में विभाजित किया गया था – **दीवानी** तथा **फ़ौजदारी**। उदाहरण के लिए संपत्ति संबंधी झगड़े दीवानी कानून के अंतर्गत तथा चोरी जैसे अपराध फ़ौजदारी कानून के अंतर्गत आते थे।

गुप्त काल में जन-जीवन

कृषि भूमि का वर्गीकरण उसकी उर्वरा शक्ति के आधार पर किया जाता था। सिंचाई व्यवस्था को विशेष महत्त्व दिया जाता था। गेहूँ, जौ, धान, दालें, सब्ज़ियाँ, कपास तथा गन्ने की फसलें उगाई जाती थीं।

दक्षिण पूर्व एशिया के अनेक देशों के साथ भी व्यापार किया जाता था जिनमें से मुख्य थे – **ब्रह्मदेश** (म्यांमार), **स्वर्णद्वीप** (जावा, सुमात्रा, मलाया प्रायद्वीप तथा बाली), **चंपा** (वियतनाम) तथा ***कंबोज*** (कंबोडिया), किंतु रोमन साम्राज्य के साथ व्यापार में कमी आई। राजकीय आय का मुख्य स्रोत **कराधान** था।

वैष्णव धर्म एवं **शैव धर्म** लोकप्रिय हो गए थे। दोनों में ही **भक्ति** तथा **अहिंसा** पर अधिक बल दिया जाता था। अनेक गुप्त वंश के शासक विष्णु तथा शिव के उपासक थे। उन्होंने ऐसी स्वर्ण मुद्राएँ चलाईं जिन पर राजाओं, देवताओं तथा देवियों के चित्र होते थे।

कला एवं वास्तुकला

गुप्त शासक कला तथा वास्तुकला के संरक्षक थे। इसी काल में बड़े पैमाने पर मंदिरों का निर्माण प्रारंभ हुआ। ये मंदिर ईंट तथा पत्थरों आदि से बनाए जाते थे। इनमें से अनेक मंदिर आज भी अवस्थित हैं जैसे मध्य प्रदेश में विदिशा ज़िले में **साँची** का मंदिर, उत्तर प्रदेश के कानपुर तथा झाँसी ज़िलों में **भीतरगांव** तथा **देवगढ़** के मंदिर। ब्राह्मणों के देवी-देवताओं, जैन तीर्थंकरों, बुद्ध तथा बोधिसत्वों की प्रतिमाएँ भी बनती थी। इस कला के दो प्रमुख केंद्र **मथुरा** और **सारनाथ** थे। इसी काल में अजंता और ऐलोरा की अनेक गुफ़ाओं की खुदाई हुई।
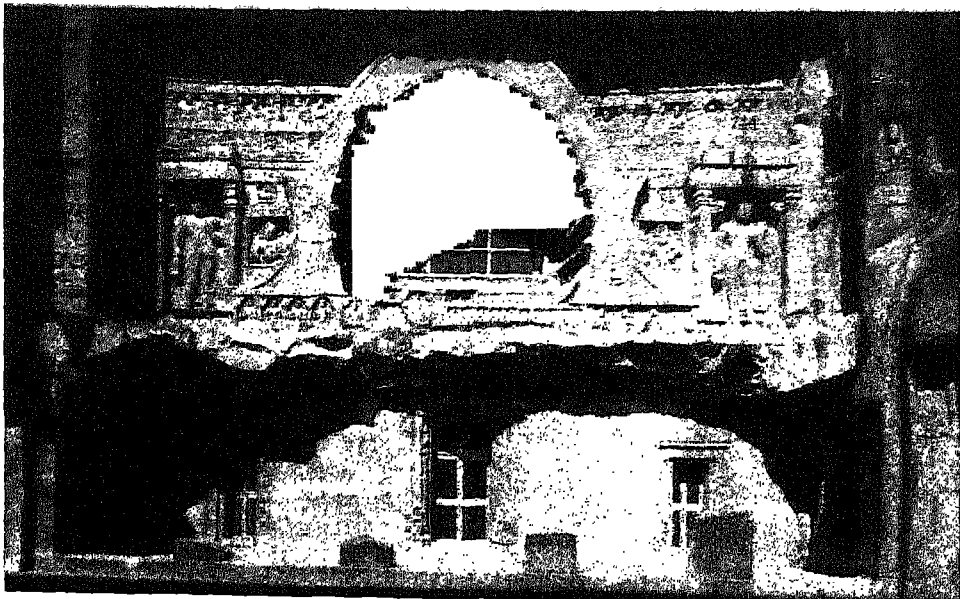
अजंता की गुफ़ा का चित्रित अग्रभाग

अजंता की एक गुफ़ा की चित्रकारीयुक्त भीतरी छत

गुप्त काल में संस्कृत साहित्य का बहुत विकास हुआ। **भास** के 17 नाटक इसी काल में लिखे गए। महाकवि **कालिदास** चंद्रगुप्त-द्वितीय की राजसभा की शोभा बढ़ाते थे जिनका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटक **अभिज्ञान शाकुंतलम्** है। यह **राजा दुष्यंत** तथा **शकुंतला** की कहानी है।
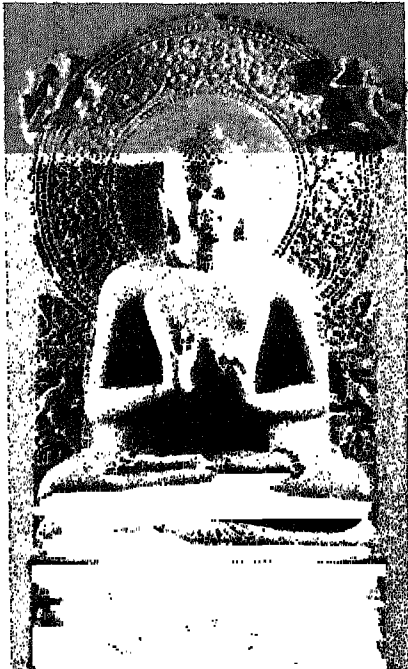
सारनाथ में बुद्ध की प्रतिमा

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी

गुप्त शासकों ने महान वैज्ञानिकों को संरक्षण प्रदान कर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है। गणित या खगोल विद्या के क्षेत्र में **आर्यभट्ट** ने **आर्यभट्टीय** नामक पुस्तक लिखी। उन्होंने इस तथ्य की पुनर्स्थापना की कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है और अपने अक्ष पर भी घूमती है, जो आज भी मान्य है। खगोलीय गणनाओं की सहायता से वे
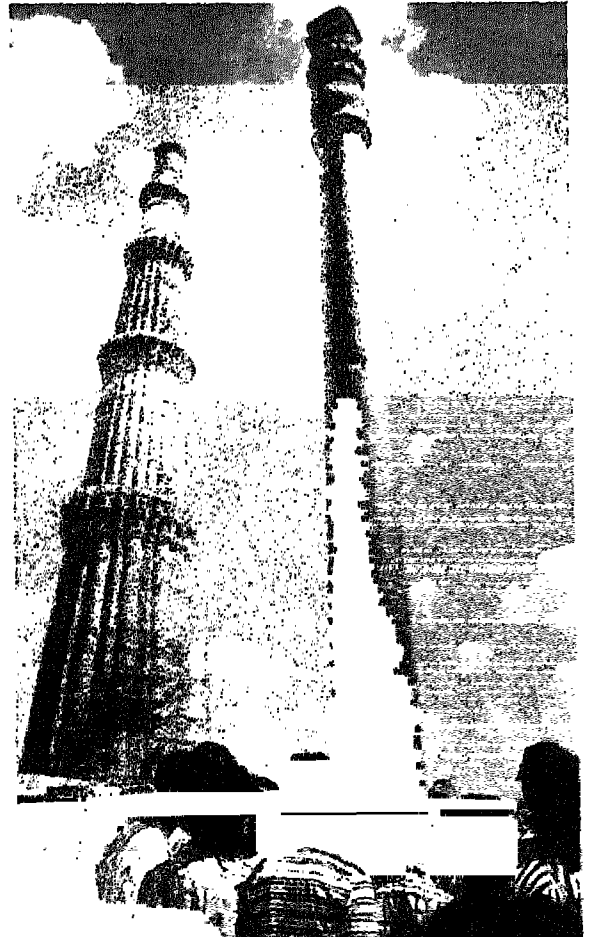
महरौली (दिल्ली) में स्थित लौह स्तंभ

ग्रहणों की अधिक निश्चित भविष्यवाणी कर सकते थे। इस काल की **सूर्य सिद्धांत** नामक कृति काफ़ी प्रसिद्ध है। भारतीय गणितज्ञ दशमलव प्रणाली का उपयोग करते थे। किसी अंक के स्थानीय मान का ज्ञान तो उनके पास था ही।

उदाहरण के लिए जब हम 345 (तीन सौ पैंतालिस) लिखते हैं तो दाहिने से तीसरे स्थान पर आने वाले अंक 3 का स्थानीय मान सौ है और दूसरे स्थान पर आने वाले 4 का मान चालीस है तथा पहले स्थान पर आने वाले 5 का मान केवल पाँच है। इस प्रकार अंकों का मान उनके क्रमिक स्थान तथा अपने वास्तविक मान पर आधारित होता है। संख्या लिखने की यह पद्धति स्थानीय मान पद्धति कहलाती है। गणित की भारतीय विधि तथा पद्धति को अरब के लोगों ने भी अपना लिया और उनसे फिर सीखा यूरोप के लोगों ने।

गुप्त काल के शिल्पकार लोहे तथा काँसे का काम करने में असाधारण एवं अद्वितीय थे। नई दिल्ली में महरौली में स्थित **लौह स्तंभ** लौह प्रौद्योगिकी का एक अनूठा उदाहरण है। इसे ईसा की चौथी शताब्दी में बनाया गया था और आज तक इस पर ज़ंग नहीं लगा।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) गुप्त वंश की स्थापना किसने की?

(2) समुद्रगुप्त क्यों प्रसिद्ध है?

(3) गुप्त काल की प्रशासन व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

(4) गुप्त काल में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए विकास के बारे में लिखिए।

(5) गुप्त काल में कला तथा वास्तुकला के क्षेत्र में हुए विकास का वर्णन कीजिए।

(6) दक्षिण-पूर्व एशिया के उन देशों के नाम लिखिए जिनके साथ भारत के सांस्कृतिक तथा व्यापारिक संबंध थे।

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	कालिदास	**(क)**	राजा
(2)	आर्यभट्ट	**(ख)**	गणितज्ञ
(3)	फाह्यान	**(ग)**	नाटककार
(4)	श्री गुप्त	**(घ)**	चीनी यात्री

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) अजंता तथा एलोरा की गुफ़ाओं की खुदाई ———— नरेशों के संरक्षण में हुई।

(2) अभिज्ञान शाकुंतलम् ———— द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटक है।

(3) सूर्य सिद्धांत जैसे प्रसिद्ध कार्य का संबंध ———— है।

(4) गुप्त काल में मथुरा और सारनाथ ———— के प्रसिद्ध केंद्र थे।

4. सही वाक्य के आगे (✓) तथा गलत वाक्य के आगे (X) चिह्न लगाइए।

(1) भारतीय गणितज्ञ दशमलव प्रणाली तथा शून्य का उपयोग करते थे। (   )

(2) महरौली का लौह स्तंभ अपनी प्रौद्योगिकी के लिए प्रसिद्ध है। (   )

(3) गुप्त वंश के शासक बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। (   )

(4) गुप्त साम्राज्य का विभाजन भुक्ति में नहीं किया गया था। (   )

करने के लिए कार्य

- गुप्त कालीन सिक्के तथा मूर्तियाँ देखने हेतु किसी संग्रहालय में जाइए।
- कालिदास की रचनाओं की सूची बनाइए।
- गुप्त काल के मंदिरों, लौह स्तंभ तथा अजंता की गुफ़ाओं के चित्र एकत्र कर एक एलबम बनाइए।
- भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के मध्य प्रयोग किए जाने वाले व्यापारिक मार्ग अंकित कीजिए।
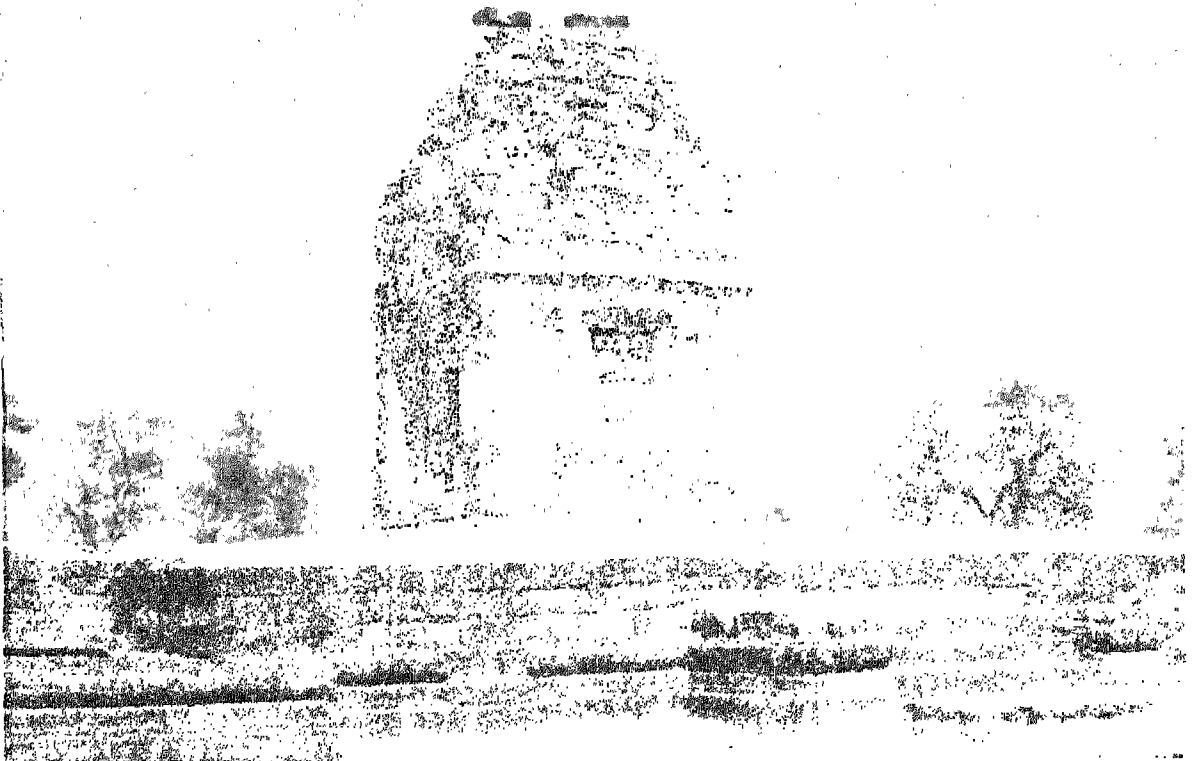
ज़िला झाँसी, उत्तर प्रदेश में स्थित देवगढ़ में पत्थरों से बना मंदिर

हर्षवर्धन का काल

गुप्त शासकों ने लगभग दो सौ वर्षों तक शासन किया। धीरे-धीरे उनकी शक्ति क्षीण होती गई और 550 ईस्वी तक उनका साम्राज्य विघटित हो गया। नए-नए राज्यों का उदय हुआ। उनमें से एक था **स्थानेश्वर** जिसे अब थानेसर कहा जाता है जो हरियाणा के कुरुक्षेत्र ज़िले में है। यहाँ का सबसे प्रसिद्ध शासक हर्षवर्धन था। **हर्षवर्धन** 606 ईस्वी में सिंहासन पर बैठा। हर्ष के राजकवि **बाणभट्ट** द्वारा लिखित पुस्तक **'हर्षचरित'**, चीनी यात्री **ह्वेनसांग** द्वारा लिखित वृत्तांतों, अभिलेखों तथा सिक्कों से हमें हर्ष के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है। हर्ष का साम्राज्य पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा उड़ीसा तक फैला हुआ था।

हर्ष के काल में जन-जीवन

हर्ष की शासन व्यवस्था गुप्त कालीन प्रशासन की तरह ही थी। कुछ राजा अपने राज्यों पर स्वतंत्र रूप से शासन तो करते थे परंतु हर्ष की प्रभुसत्ता के अंतर्गत। वे राजा को नियमित रूप से **शुल्क** देते थे, उसको नमन करते थे और युद्ध के समय सैनिक सहायता भी देते थे। युवराज, मंत्री तथा अन्य अधिकारी प्रशासन में राजा की सहायता करते थे। पूरे साम्राज्य को **प्रांतों** में विभाजित किया गया था जिसे **देश** कहते थे। देश पुनः ज़िलों में बाँटे गए थे, जिसे **प्रदेश** कहते थे। ज़िले के अधिकारी को **आयुक्त** कहते थे और प्रदेश के अधिकारी को **कुमारआमात्य** कहते थे। इन्हीं शब्दों को आज भी वैसे का वैसा या थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ प्रशासनिक व्यवस्था में उपयोग किया जाता है।

हर्ष की स्वहस्ताक्षरित मोहर

हर्ष शिव का उपासक था। वह अन्य पंथों तथा धर्मों का भी पक्षधर था। प्रत्येक चार वर्ष के पश्चात हर्ष निर्धनों, परिव्राजकों तथा अभावग्रस्त लोगों को प्रयाग में होने वाले **माघ मेले** के अवसर पर **दान** दिया करता था। कहते हैं कि इसी मेले में वह अपनी सारी व्यक्तिगत संपदा

नालंदा का मठ

हर्ष साम्राज्य
गंधार
वितस्ता
हिमालय
जलंधर
विपास
थानेसर
सिंधु
इंद्रप्रस्थ
ब्रह्मपुत्र
मथुरा
कन्नौज
यमुना
गंगा
कामरूप
पुण्ड्र वर्धन
प्रयाग
काशी
पाटलीपुत्र
नालंदा
साँची
दसपुर
विदिशा
कर्ण-सुकर्ण
मालव
उज्जयिनी
वल्लभी
भरुकच्छ
ताम्रलिप्ती
समतट
सौराष्ट्र
नर्मदा
महानदी
ताप्ती
अजंता
एलोरा
सोपारा
प्रतिष्ठान
गोदावरी
प. चालुक्य
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
पू. चालुक्य
वेंगी
पिस्तापुर
अइहोल
कृष्णा
वातापी
पट्टदकल
वजयंती
तुंगभद्रा
पल्लव
कावेरी
महाबलिपुरम
कावेरीपट्टिनम
चोल
मदुरै
चेर
पाण्ड्य
अनुराधापुर
ताम्रपर्णी (श्रीलंका)
हर्ष साम्राज्य की सीमाएँ

ह्वेनसांग

ह्वेनसांग चीन का बौद्ध यात्री था जो भारत यात्रा पर आया। उसने कुछ वर्षों तक नालंदा विश्वविद्यालय में, जो बिहार के नालंदा ज़िले में स्थित है, अध्ययन किया। नालंदा उस समय एक महान विश्वविद्यालय था। देश तथा विदेश से अनेक विद्वान यहाँ अध्ययन करने आते थे।

और वस्तुएँ दान कर दिया करता था और अंत में अपनी बहन राज्यश्री द्वारा दिए गए वस्त्र पहना करता था।

वैष्णव धर्म और शैव धर्म हिंदू धर्म की दो प्रमुख धाराओं के रूप में प्रचलित रहे। उत्तर भारत में अधिकतर लोग वैष्णव धर्मानुयायी थे और दक्षिण भारत में शैव धर्मानुयायी थे। बौद्ध धर्म में एक और नई शाखा का विकास हुआ जिसे **वज्रयान** कहा जाता है तथा एक देवी जिसे **तारा** कहा जाता है, उसका भी उदय हुआ।

ह्वेनसांग भारत की यात्रा पर आया और लगभग 14 वर्ष (630-644 ईस्वी) तक यहीं रहा। वह हर्ष के बहुत ही निकट तथा व्यक्तिगत संपर्क में रहा। ह्वेनसांग ने हर्ष की लोकप्रियता का विस्तृत वर्णन एक शांतिपूर्ण राजा के रूप में किया है। हर्ष ने शिक्षा तथा ज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। लगभग दो सौ ग्रामों से प्राप्त होने वाली आय को उसने नालंदा विश्वविद्यालय की देखभाल के लिए निर्धारित कर दिया। हर्षवर्धन एक सिद्ध वीणावादक तथा साहित्यिक व्यक्ति था। उसने संस्कृत भाषा में कुछ नाटक भी लिखे।

हर्ष की मृत्यु के पश्चात उत्तर भारत एक बार फिर अव्यवस्था के अंधकार में डूब गया। छोटे-छोटे कई राज्यों का उदय हुआ जो निरंतर आपस में लड़ते रहते थे। इसी बीच दक्कन तथा दक्षिण भारत में चालुक्य तथा पल्लव के राज्य अधिक शक्तिशाली होकर उभरे।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) हर्षवर्धन कौन था?
(2) ह्वेनसांग किस देश से आया था?
(3) हर्ष की प्रशासन व्यवस्था का वर्णन कीजिए।
(4) नालंदा क्यों प्रसिद्ध था?

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	बाणभट्ट	**(क)**	प्रयाग
(2)	ह्वेनसांग	**(ख)**	हर्षचरित
(3)	नालंदा	**(ग)**	बौद्ध धर्म का एक संप्रदाय
(4)	वज्रयान	**(घ)**	चीनी यात्री
(5)	माघ मेला	**(ङ)**	शिक्षा केंद्र

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) बाणभट्ट हर्ष का —————— था।

(2) हर्ष अपनी सारी संपत्ति तथा वस्तुएँ प्रयाग में होने वाले ———— में दान दे दिया करता था।

(3) ह्वेनसांग बुद्ध धर्म का अध्ययन करने ———— आया था।

(4) हर्ष की राजधानी —————— थी।

4. सही कथन के सामने (✓) तथा गलत कथन के सामने (X) निशान लगाइए।

(1) हर्ष दक्षिण भारत का शासक था। ( )

(2) ह्वेनसांग भारत में शासक के रूप में आया था। ( )

(3) हर्षचरित में हर्ष के जीवन का वर्णन नहीं है। ( )

(4) वज्रयान बौद्ध धर्म की एक शाखा नहीं है। ( )

* हर्ष साम्राज्य के विस्तार तथा इसके प्रमुख नगरों को मानचित्र में दिखाइए।
* नालंदा विश्वविद्यालय के बारे में जानकारी इकट्ठी कीजिए।
* कुंभ मेले से संबंधित जानकारी इकट्ठी कीजिए।
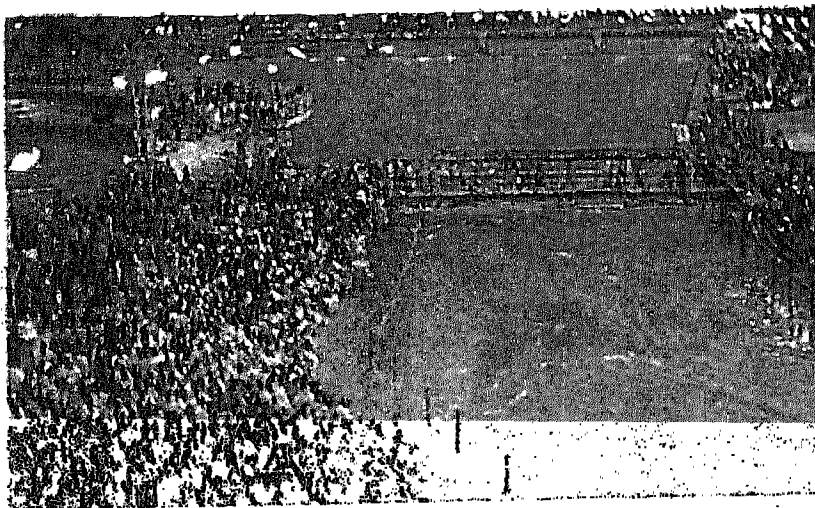
प्रयाग में आयोजित माघ मेला
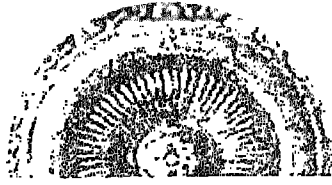
15

दक्कन और दक्षिण भारत

(400 से 700 ईस्वी तक)

चालुक्य

सातवाहनों के पतन के पश्चात, दक्कन में कई राज्यों का उदय हुआ। 540 ई. में **पुलकेशिन-प्रथम** के काल में **चालुक्य** एक प्रभुता-संपन्न शक्ति बन गए। उन्होंने कर्नाटक में **वातापी** (आधुनिक बादामी) को अपनी राजधानी बनाया। चालुक्य नरेशों में सबसे प्रसिद्ध **पुलकेशिन द्वितीय** था। ह्वेनसांग ने भी पुलकेशिन-द्वितीय की शक्ति एवं गुणों की प्रशंसा की है। 753 ई. में राष्ट्रकूटों के हाथों पराजित होने के कारण चालुक्य वंश के शासन का अंत हो गया।

चालुक्य नरेश कला के संरक्षक थे। उन्होंने **एहोल, बादामी** तथा **पट्टदकल** में अनेक विशाल मंदिरों का निर्माण करवाया जिनमें से सर्वाधिक प्रसिद्ध मंदिर हैं – **पप्पनाथ** तथा **वीरूपाक्ष**। ये मंदिर ऐसी मूर्तियों से सज्जित हैं जो रामायण के दृश्यों को दर्शाती हैं। चालुक्यों ने बादामी में कई गुफ़ा-मंदिर भी बनवाए। अजंता की गुफ़ाओं में बने एक चित्र में पुलकेशिन-द्वितीय को ईरान के राजदूत का स्वागत करते हुए दिखाया गया है।

पल्लव

पल्लवों ने अपना प्रभुत्व आंध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु के कुछ भागों पर स्थापित किया। उनकी राजधानी **काँची** (तमिलनाडु में काँचीपुरम) में ही बनी रही। पल्लव नरेशों में सबसे उल्लेखनीय **महेंद्रवर्मन** था।

पट्टदकल का वीरूपाक्ष मंदिर

नर्मदा
ताप्ती
महानदी
कल्यानी
प. चालुक्य
राष्ट्रकूट
गोदावरी
मान्यखेत
कृष्णा
पू. चालुक्य
तुंगभद्रा
बंगाल की खाड़ी
उ. पेन्नार
नेलौर
अरब सागर
कोलार
पल्लव
तालगुंडा
काँची
महाबलिपुरम
मने
द. पेन्नार
कावेरी
चोल
श्रीपुरमवियाम
तंजौर
सित्तानवसल
बैगाई
मदुरै
पाण्ड्य
अनुराधापुर

दक्षिण भारत

320-800 ई.

ताम्रपर्णी
(श्रीलंका)
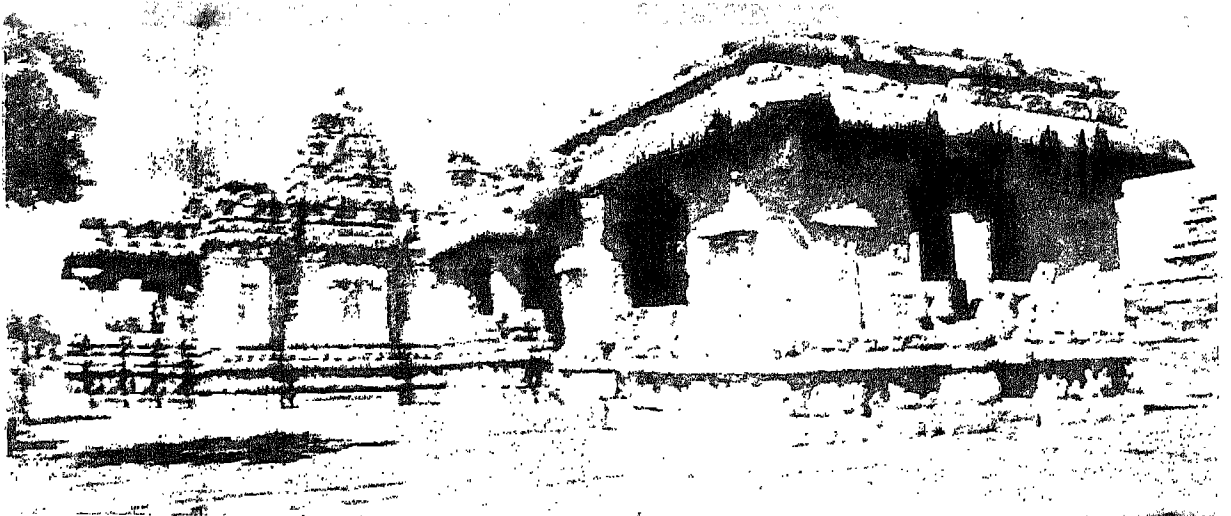
हिंद महासागर
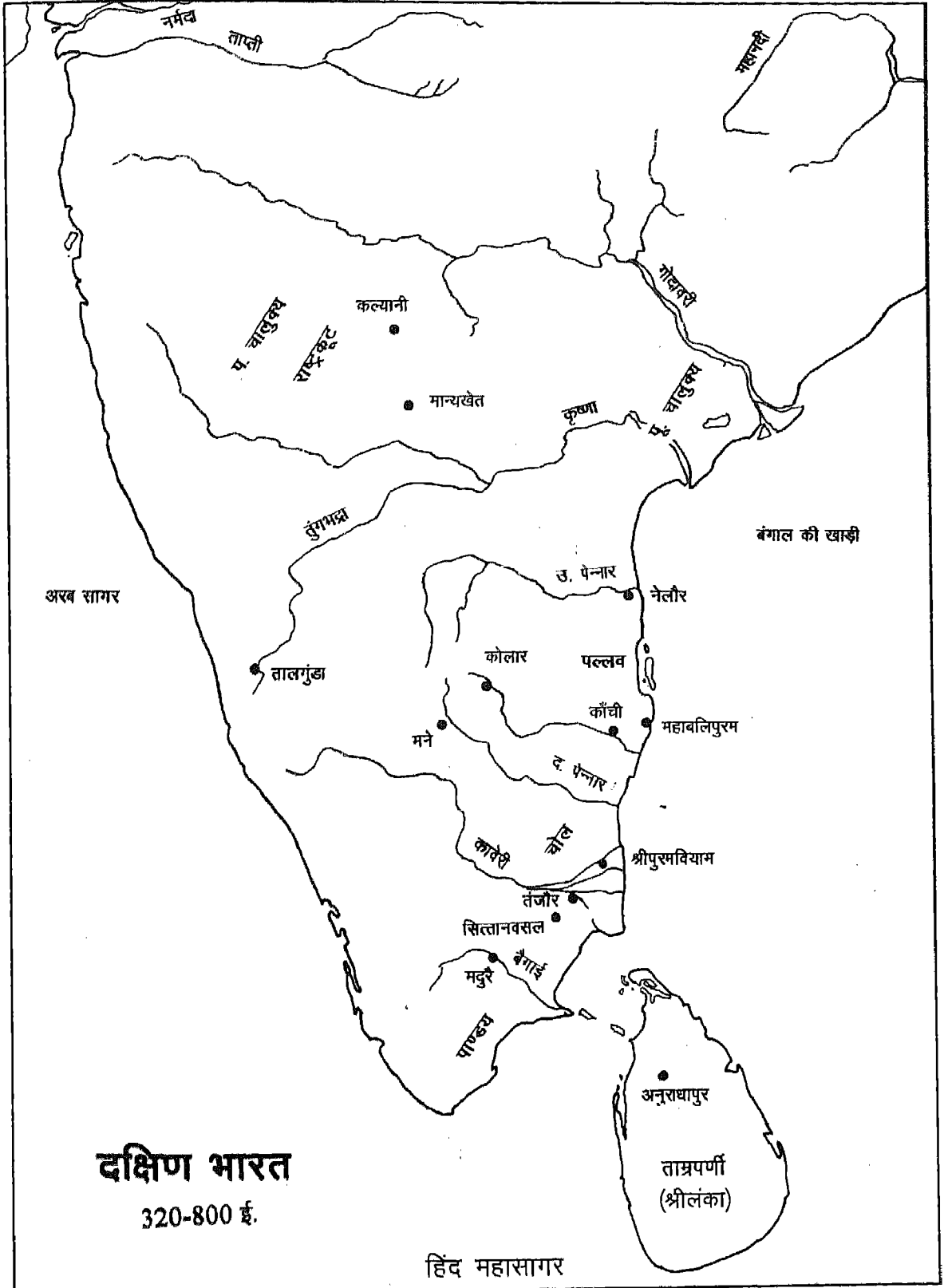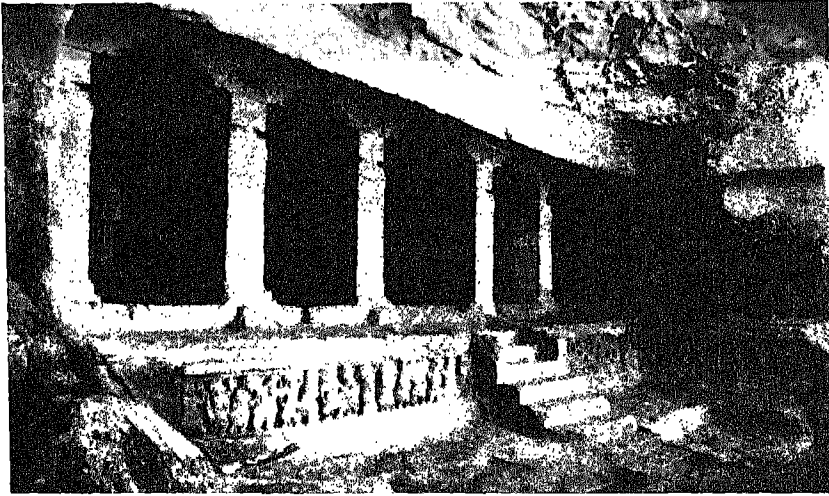
बादामी की गुफ़ा का अग्र भाग

एक महान योद्धा होने के साथ-साथ, महेंद्रवर्मन एक नाटककार, संगीतज्ञ तथा कवि भी था।

नरसिंहवर्मन-प्रथम महेंद्रवर्मन का पुत्र एवं उत्तराधिकारी, एक महत्त्वपूर्ण पल्लव नरेश था। वह भी कला का संरक्षक था। उसने त्रिची और पुड्डुकोट्टाई में गुफ़ा मंदिर बनवाए। महाबलिपुरम में बने रथ मंदिरों के निर्माण ने उसकी विशेष पहचान बनाई है।

कला तथा धर्म

विष्णु तथा शिव की उपासना दक्षिण भारत में लोकप्रिय हो गई थी। इन देवताओं की पूजा को अधिक लोकप्रिय बनाने का श्रेय संत महात्माओं को जाता है। उनका कहना था कि धर्म में व्यक्तिगत निष्ठा एवं ईश्वर की **भक्ति** सम्मिलित है। धीरे-धीरे दक्षिण भारत के लोगों के धार्मिक जीवन में भक्ति का प्रभाव बढ़ता गया। **ह्वेनसांग** ने **काँची** नगर की यात्रा की तथा वहाँ कुछ काल तक रहा भी। यह नगर न केवल मंदिरों के नगर के रूप में बल्कि शिक्षा के एक महान केंद्र के रूप में भी जाना जाता था।

पल्लव नरेश वास्तुकला के संरक्षक के रूप में भी प्रसिद्ध थे। उन्होंने शिव तथा विष्णु के अनेक मंदिरों का निर्माण करवाया। इनमें से प्रसिद्धतम हैं विशाल चट्टानों को काटकर बनवाए गए सप्त **रथ मंदिर** तथा समुद्र तट पर स्थित **मंदिर** जो चैन्नई के निकट महाबलिपुरम में स्थित हैं। उन्होंने काँचीपुरम में **कैलाशनाथ मंदिर** भी बनवाया।
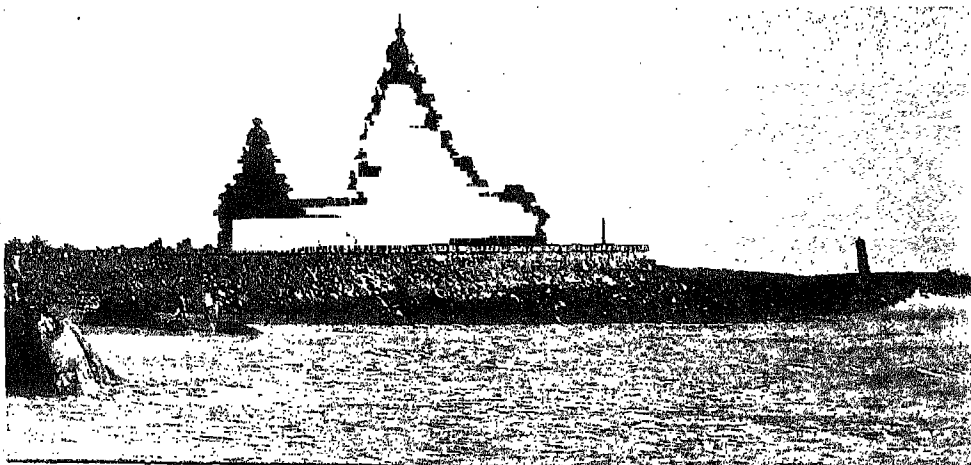
महाबलिपुरम का समुद्र तट पर स्थित मंदिर

ये मंदिर सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक गतिविधियों के केंद्र भी रहे हैं। इन्हीं मंदिरों में बैठकर लोग गाँव के कल्याण संबंधी मामलों की चर्चा करते थे। इन्हीं मंदिरों से जुड़े विद्यालयों में अध्यापकों द्वारा बच्चों को शिक्षा दी जाती थी। त्योहारों के अवसर पर प्रवचन, मेले तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम इन्हीं मंदिरों के प्रांगण में आयोजित किए जाते थे। इसी काल में दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृतियों की रचना हुई। ये हैं **मणिमेखलाई** तथा **शिल्पादिकरम**। इन कृतियों को बहुत सम्मान दिया जाता है।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) चालुक्य शासक कब और कहाँ शासन करते थे?
(2) चालुक्य काल की कला तथा वास्तुकला संबंधी गतिविधियों का वर्णन कीजिए।
(3) पल्लव शासक कब तथा कहाँ पर शासन करते थे?
(4) पल्लवों के शासनकाल की कला तथा वास्तुकला संबंधी गतिविधियों का वर्णन कीजिए।
(5) दक्षिण भारत के भक्ति आंदोलन का वर्णन कीजिए।

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	काँची	**(क)**	शिव मंदिर
(2)	कैलाशनाथ	**(ख)**	चट्टानों को काटकर बनाए गए रथ मंदिर
(3)	महाबलिपुरम	**(ग)**	शिक्षा के केंद्र
(4)	बादामी	**(घ)**	चट्टानों को काटकर बनाई गई गुफ़ाएँ

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) ———— ने पुलकेशिन-द्वितीय की प्रशंसा की है।
(2) महाबलिपुरम के रथों का निर्माण ———— ने करवाया था।
(3) अजंता के एक चित्र में पुलकेशिन-द्वितीय को ईरान के ——— का स्वागत करते हुए दिखाया गया है।

4. सही कथन के आगे (✔) और गलत कथन के आगे (✘) का चिह्न लगाइए

(1) ह्वेनसांग लिखता है कि काँची नगर विद्या का महान केंद्र था। (   )
(2) समुद्र तट मंदिर महाबलिपुरम में स्थित नहीं है। (   )
(3) मंदिर सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक गतिविधियों के केंद्र भी थे। (   )
(4) चालुक्य शासकों ने अपना साम्राज्य महाराष्ट्र में स्थापित किया। (   )

करने के लिए कार्य

* चालुक्यों तथा पल्लवों के शासनकाल के स्मारकों के चित्र एकत्र कर एक एलबम बनाइए।
* दक्षिण भारत का मानचित्र बनाइए और उसमें प्रसिद्ध स्थान तथा नगर अंकित कीजिए।
* पल्लवों तथा चालुक्यों के स्मारक-स्थलों की यात्रा कीजिए।

16
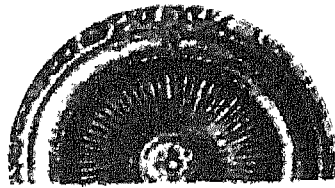
भारत का बाहरी विश्व के साथ सांस्कृतिक संबंध

प्राचीन काल से ही भारत के आर्थिक तथा सांस्कृतिक संबंध बाहरी विश्व से रहे हैं। इस पाठ में आपको पश्चिमी एशिया, मध्य एशिया तथा पूर्व एशिया के देशों के साथ भारत के संबंधों की झलक मिलेगी।

भारत का पश्चिम से संबंध

हड़प्पा की सभ्यता से जुड़ी अनेक वस्तुओं की पश्चिम में खोज इस बात का प्रमाण है कि ईसा से पूर्व तीसरी सहस्राब्दि में हड़प्पा की सभ्यता तथा मिस्र एवं मेसोपोटामिया की सभ्यता के

भारत का विश्व के साथ संपर्क
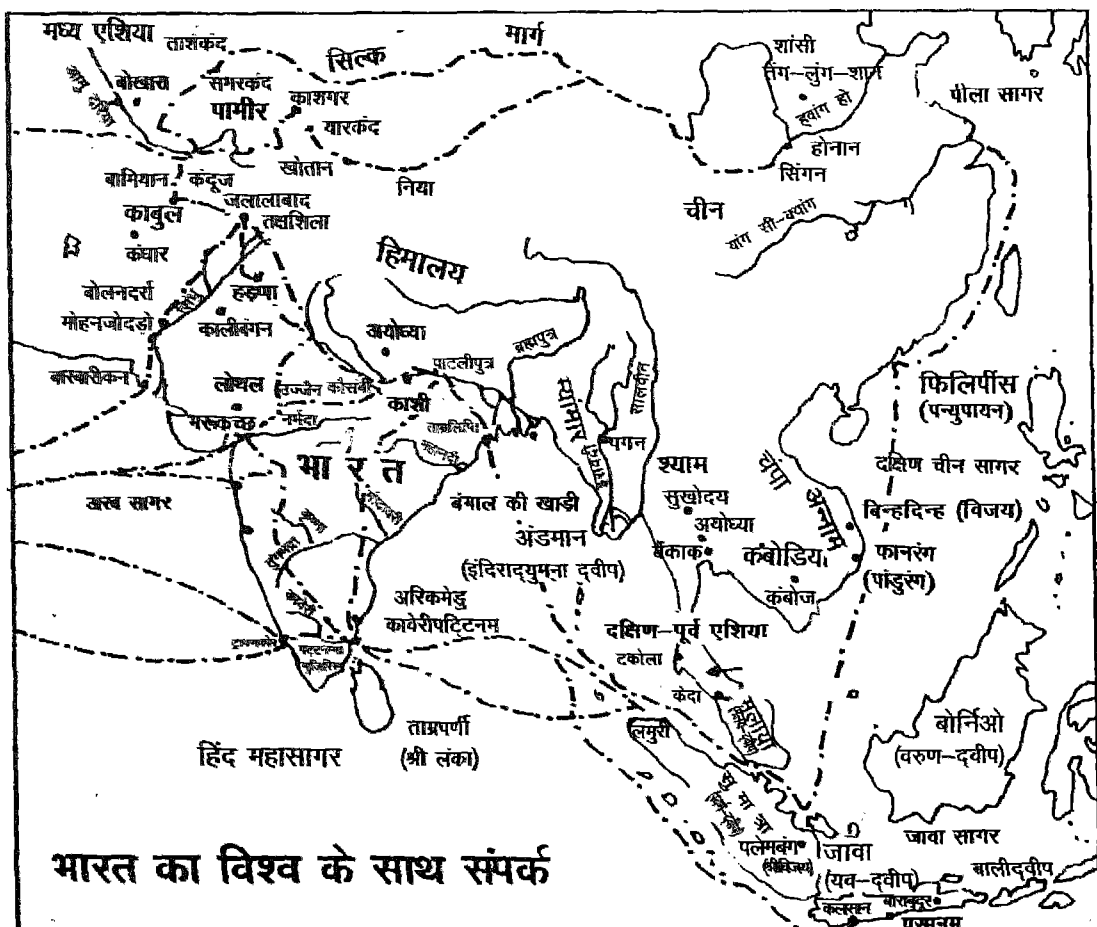
बीच व्यापारिक तथा सांस्कृतिक संबंध थे। ईसा से 600 वर्ष पूर्व तक भारत के फ़ारस, यूनान तथा रोम के रास्ते पश्चिम के साथ सीधे तथा निरंतर संबंध बने। इससे अन्य देशों के साथ सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक विचारों के आदान-प्रदान को बहुत गति मिली। सिकंदर के नेतृत्व में यूनानियों ने उत्तर-पश्चिमी भारत के कुछ भाग पर आधिपत्य जमा लिया। चंद्रगुप्त मौर्य की राजसभा में *मैगास्थनीज़* एक **यूनानी राजदूत** था। मौर्य वंश के प्रसिद्ध राजा अशोक ने **धम्म विजय यात्रा** के उद्देश्य से पाँच पाश्चात्य देशों में अपने धर्म प्रचारक भेजे। रोमन इतिहासकार **प्लिनी** इस बात की पुष्टि करता है कि भारत तथा रोमन साम्राज्य के मध्य उन्नत व्यापारिक संबंध थे। प्लिनी ने इस बात पर चिंता व्यक्त की कि रोम का धन और संपत्ति भारत से आए रेशम, कपास, आभूषण, बहुमूल्य पत्थर, गरम मसाले तथा धातु से बने उत्कृष्ट बर्तनों जैसी ऐश्वर्य की वस्तुओं पर पानी की तरह बहा दिया जाता था। **संगम साहित्य** में उन लोगों को जो बाहर से भारत आए परंतु यहीं बस गए तथा भारतीय समाज का अंग बन गए, **यवन** कहा गया है। तमिलनाडु में स्थित अरिकमेंडु भारत में **रोमवासियों की ही एक बस्ती** थी।

अरबवासियों ने अपने मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना सातवीं तथा आठवीं शताब्दी में की। समुद्री और थल मार्ग अब उन के नियंत्रण में आ गए। अरबवासी भारत और यूरोप के बीच एक कड़ी बन गए। अरबों के माध्यम से ही यूरोपवासियों ने विज्ञान, गणित, खगोल विद्या तथा औषधि विज्ञान की भारतीय पद्धतियाँ सीखीं। भारत की अनेक दार्शनिक एवं साहित्यिक कृतियों का अनुवाद अरबी तथा फ़ारसी भाषा में किया गया। यूरोपवासियों ने अरब निवासियों से **भारतीय अंक पद्धति** तथा **दशमलव प्रणाली** का ज्ञान प्राप्त किया। इसीलिए यूरोप में इन अंकों को अरबी अंक कहा जाता है।

भारत के मध्य एशिया से संबंध

भारत और मध्य एशिया के बीच अनेक पर्वत शृंखलाएँ हैं। परंतु ये इन दोनों के बीच सांस्कृतिक एवं व्यापारिक संबंध स्थापित करने में बाधक नहीं बनी। पुरातत्व संबंधी खोजें और साहित्यिक प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि भारत के **खोतान, कूची, कैराशहर** (अग्निदेश) तथा **काशगार** जैसे स्थानों से अधिक आपसी संबंध थे। ये सभी भारतीय संस्कृति के महान केंद्र थे। मध्य एशिया के कई राजाओं तथा लोगों के

बामियान में बुद्ध की प्रतिमा

बामियान में स्थित बुद्ध की मूर्ति को तालिबान के नेतृत्व में कुछ धर्मांध लोगों ने 2001 ईस्वी में ध्वस्त कर दिया। उन्होंने काबुल के संग्रहालय में रखे लगभग सभी प्राचीन स्मृति चिह्न भी नष्ट कर दिए।
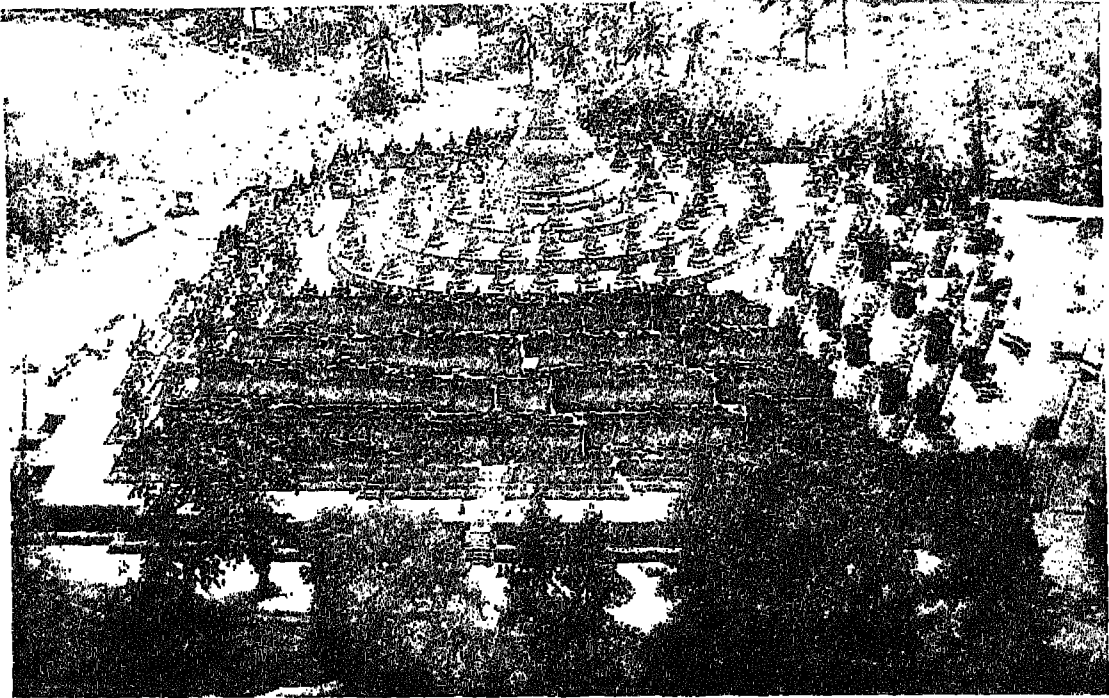
बारोबुदुर का एक बौद्ध स्तूप

नाम भी भारतीय थे। **संस्कृत** तथा **प्राकृत** उनकी भाषा बन गई। इन क्षेत्रों से पाई जाने वाली अनेक पांडुलिपियाँ एवं अभिलेख भी संस्कृत तथा प्राकृत में हैं। भारतीय धर्म, विशेषतौर पर **बौद्ध धर्म**, मध्य एशिया में काफी लोकप्रिय हो गए थे। यह **चीन** तथा अन्य पूर्व एशिया के देशों में फैल गया। **अशोक** ने अपने धर्म प्रचारक मध्य एशिया भेजे। वर्तमान अफ़गानिस्तान बौद्ध धर्म तथा गांधार कला का एक बड़ा केंद्र था। आज भी अफ़गानिस्तान तथा मध्य एशिया में अनेक बौद्ध विहार देखे जा सकते हैं। ईसा की प्रथम शताब्दी से आज तक बामियान नामक स्थान पर बनी महात्मा बुद्ध की सबसे बड़ी मूर्ति आकर्षण का केंद्र रही है।

भारत के श्रीलंका, दक्षिण-पूर्व एशिया तथा चीन से संबंध

रामायण काल से ही भारत के श्रीलंका के साथ निकट संबंध रहे हैं। सम्राट अशोक ने अपने बेटे महेंद्र तथा बेटी संघमित्रा को बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए श्रीलंका भेजा। **दीपवंस** तथा **महावंस** श्रीलंका बौद्ध धर्म संबंधी जानकारी के लिए प्रसिद्ध स्रोत हैं। श्रीलंका में बुद्धघोष ने **जातक** कथाओं पर टीकाएँ लिखीं। इनको पुरातन साहित्य मानकर इनका अनुवाद श्रेष्ठ साहित्य के रूप में विश्व की अनेक भाषाओं में किया गया।

भारत ने चीन, थाइलैंड, कंबोडिया तथा पूर्व के कई अन्य देशों के साथ अपने व्यापारिक तथा राजनैतिक संबंध बनाए रखे। इन्हीं संबंधों के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का प्रचार इन देशों में हुआ। अनेक भारतीय व्यापारी दक्षिण-पूर्व एशिया के इन देशों में बस गए। धीरे-धीरे दक्षिण-पूर्व एशिया में **ब्रह्मदेश** (म्यांमार), **सुवर्णद्वीप** (जावा, सुमात्रा तथा बाली), **चंपा** (वियतनाम) ,**कंबोज** (कंबोडिया) के लोगों ने भारतीय संस्कृति के कई पहलुओं को अपना
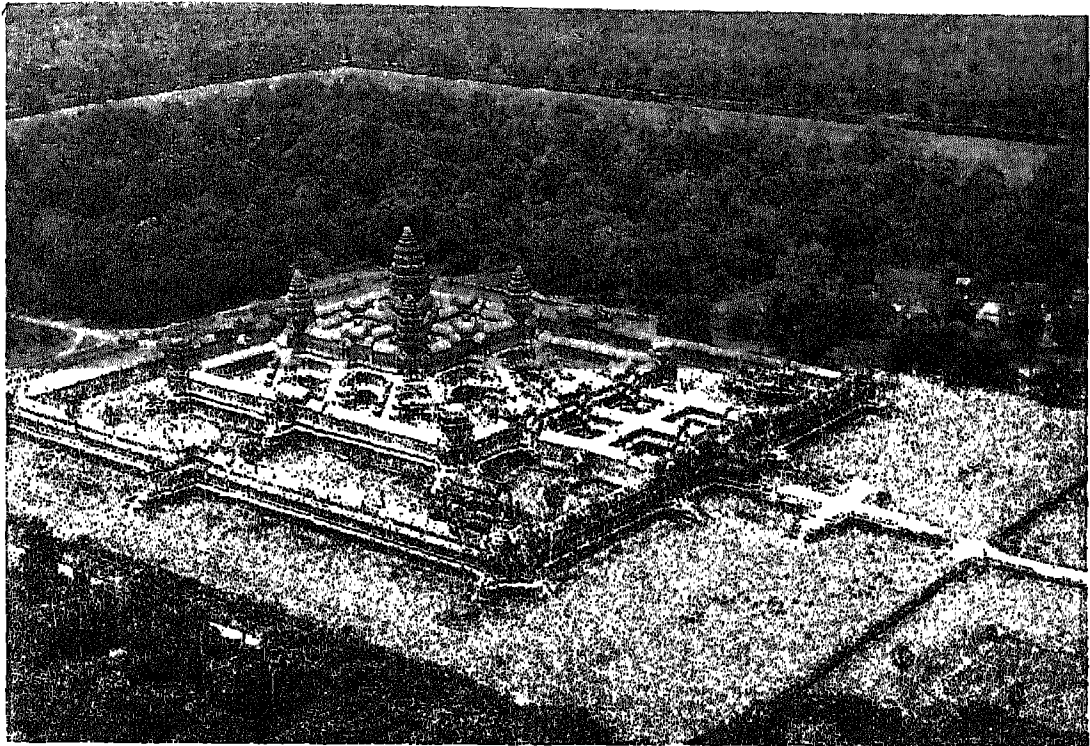
अंकोरवाट का विष्णु मंदिर

लिया। कंबोडिया तो वैदिक अध्ययन का एक महान केंद्र बन गया। जैसा कि आप पिछले पाठों में पढ़ चुके हैं, इनमें से कुछ देशों पर प्रत्यक्ष रूप से पल्लव नरेशों का शासन था। कंबोडिया का **अंकोरवाट मंदिर** जो विष्णु को समर्पित है और जावा में बना **बोरोबुदुर** (Borobudur) **स्तूप** जो बुद्ध् को समर्पित है, सांस्कृतिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप निर्मित भारतीय कला, संस्कृति तथा वास्तुकला का अद्भुत उदाहरण है। कंबोडिया का **अंकोरवाट मंदिर** विश्व के महान स्मारकों में से एक माना जाता है। इस मंदिर की दीवारों पर **रामायण** तथा **महाभारत** की कहानियाँ चित्रित हैं। राम और कृष्ण इनके चरित्र नायक बन गए। इन सभी देशों में रामलीलाएँ तथा महाभारत की कहानियों का मंचन नृत्य तथा नाटक के माध्यम से किया जाता है।

बौद्ध धर्म के प्रचार तथा प्रसार ने भारत के श्रीलंका तथा चीन के साथ संबंधों को बढ़ावा दिया। कनिष्क के शासन काल में अनेक धर्म प्रचारक मध्य एशिया, चीन तथा अफ़गानिस्तान में बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु भेजे गए। चीन के लोगों ने भारतवासियों से कपास उगाना तथा बुद्ध के चित्र बनाना सीखा जबकि भारतीयों ने चीनवालों से रेशम तथा कागज़ बनाना सीखा।

दक्षिण-पूर्व एशिया के राजाओं के भारतीय राजाओं के साथ सौहार्द्रपूर्ण संबंध थे। **सुमात्रा** नरेश ने **नालंदा** में एक विहार की स्थापना कराई और बंगाल के शासक **देवपाल** से अनुरोध किया कि वह इस विहार के रख-रखाव के लिए पाँच गाँव दान में दे दें। इन देशों के अनेक विद्यार्थी **नालंदा, विक्रमशिला, काशी** तथा **उदांतपुरी** जैसे अनेक शिक्षा केंद्रों में अध्ययन करने के लिए भारत आते थे।

चीन पर बौद्ध धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा। इस बात का प्रमाण उपलब्ध है कि 65 ईस्वी में **कुमारजीव** नामक बौद्ध भिक्षु चीन में ही रहने लगे और उन्होंने वहाँ पर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। चीन से नियमित रूप से तीर्थ यात्री तथा विद्वान धार्मिक स्थानों की यात्रा तथा बौद्ध धर्म के बारे में ज्ञान अर्जित करने भारत आते थे। इनमें सबसे प्रसिद्ध यात्री थे– **फाह्यान**, **ह्वेनसांग** तथा **इत्सिंग।**

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) भारत तथा रोम के बीच व्यापारिक संबंधों का वर्णन कीजिए।

(2) भारत के दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के साथ संबंधों का वर्णन कीजिए।

(3) दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों के प्राचीन नामों का उल्लेख कीजिए।

(4) भारत से किन-किन देशों में बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ और कैसे? वर्णन कीजिए।

(5) भारत का अरबवासियों से संबंध लिखिए।

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	बामियान	**(क)**	चीन
(2)	अंकोरवाट	**(ख)**	जावा
(3)	बारोबुदुर	**(ग)**	कंबोडिया
(4)	रेशम	**(घ)**	अफ़गानिस्तान

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) तमिलनाडु में स्थित अरिकमेंडु भारत में ———— के निवासियों की एक बस्ती थी।

(2) अशोक ने अपने धर्म प्रचारक ———— देशों में भेजे।

(3) यूरोपवालों ने भारतीय अंक पद्धति तथा दशमलव प्रणाली ——— से सीखीं।

(4) प्राचीन भारत में म्यांमार और वियतनाम को क्रमशः ——— और ——— के नामों से जाना जाता था।

4. सही कथन के सामने (✔) तथा गलत कथन के सामने (X) का चिह्न लगाइए

(1) प्राचीन काल में संस्कृत तथा प्राकृत मध्य एशिया के लोगों की भाषा बन गई। ( )

(2) जातक कथाओं पर टीका बुद्धघोष ने लिखी थी। ( )

करने हेतु कार्य

* दक्षिण-पूर्व एशिया में निर्मित बौद्ध तथा हिंदू मंदिरों के चित्र एकत्र कर एक कोलाज तैयार कीजिए।
* विभिन्न देशों में पाए जाने वाली महात्मा बुद्ध की प्रतिमाओं के चित्र एकत्र कीजिए।
* विश्व के मानचित्र में उन देशों को अंकित कीजिए जिनके साथ भारत के संबंध थे।

17
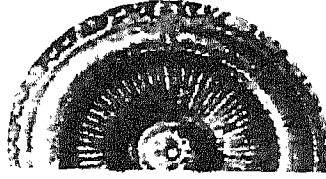
मुख्य धर्म

हिंदू धर्म

हिंदू धर्म अति प्राचीन धर्म है। इसे **सनातन धर्म** भी कहते हैं अर्थात भारत की अनादि कालीन आध्यात्मिक परंपरा। हड़प्पा की सभ्यता से मिले भौतिक अवशेषों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिंदू धर्म के अनेक रूपों का आरंभ उसी काल से हुआ। देवीमाता, पशुपति, शिवलिंग, पीपल के वृक्ष आदि की उपासना के प्रमाण हड़प्पा की सभ्यता में देखे जा सकते हैं। यह तो आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि कुछ विद्वानों का मत है कि हड़प्पा की सभ्यता और वैदिक सभ्यता एक ही है।

हिंदू उस परमात्मा में विश्वास रखते हैं जिसे **परम ब्रह्म** कहते हैं। ब्रह्म **आत्मा** के रूप में प्रत्येक वस्तु तथा प्रत्येक स्थान पर भिन्न-भिन्न रूपों में विद्यमान है। लोगों के ब्रह्म से मिलने के तीन मार्ग हैं – अपने कर्मों को उसके प्रति समर्पित करके, प्रार्थना तथा प्रेम द्वारा और इस संसार को त्याग कर आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने से। हिंदू इस बात में विश्वास रखते हैं कि जब तक किसी व्यक्ति की **आत्मा** का मिलन ब्रह्म अर्थात **परमात्मा** से नहीं हो जाता, उसकी आत्मा बार-बार जन्म लेती है। प्रत्येक जीवन में व्यक्ति को अपने पिछले जीवन के कर्मों के अनुसार अच्छा या बुरा फल मिलता है। हमारा मुख्य उद्देश्य है कि हम **ब्रह्म** में लीन हो जाएँ और बार-बार पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति पाएँ।

हिंदू धर्म किसी एक या अनेक देवी-देवताओं में विश्वास रखने तथा उनकी उपासना की स्वतंत्रता देता है।

हिंदुओं की मान्यता के अनुसार तीन परम देव तथा अनेक अन्य देवी-देवता हैं। तीन परम देव हैं– **ब्रह्मा**, **विष्णु** तथा **महेश (शिव)**।

ब्रह्मा को सृष्टि का सृजनकर्ता माना जाता है। उन्हें **प्रजापति** भी कहते हैं। विष्णु को जीवन पालक समझा जाता है। वह समय-समय पर पाप का नाश करने के लिए तथा मानव मात्र की रक्षा के लिए धरती पर **अवतार** भी लेते हैं। हिंदू मान्यता के अनुसार उनके दस अवतार है– **मत्स्य**, **कूर्म**, **वराह**, **नरसिंह**, **वामन**, **परशुराम**, **राम**, **कृष्ण**, **बुद्ध** और **कल्की**। इनमें से नौ रूप पहले अवतरित हो चुके हैं और दसवाँ अवतार कल्कि का अभी होना है। विष्णु की पत्नी लक्ष्मी को धन की देवी के रूप में पूजा जाता है।

शिव को संहारक के रूप में तथा प्रकृति की सभी महान शक्तियों के प्रतीक के रूप में मानते हैं। शिव को नृत्य तथा संगीत का जन्मदाता भी माना जाता है। इसी कारण इन्हें **नटराज** भी कहा जाता है। दक्षिण भारत की नटराज की

कांस्य प्रतिमाएँ विश्व प्रसिद्ध हैं। उनकी पत्नी का नाम पार्वती है। शिव की उपासना शिवलिंग के रूप में भी की जाती है।

अनेक अन्य देवी-देवताओं की भी पूजा की जाती है। उनमें कुछ हैं– **सरस्वती** (ज्ञान की देवी) , **लक्ष्मी** (धन की देवी)। **गणेश** को विघ्न विनाशक के रूप में पूजा जाता है और **दुर्गा** को शक्ति की देवी तथा पाप संहारक के रूप में। इसी प्रकार कई और देवी-देवता हैं।

हिंदू प्रकृति की भी पूजा करते हैं। पशुओं तथा वनस्पति को भी श्रद्धा से देखा जाता है। **सुरभी** को सभी गायों की माता मानते हैं तथा **पीपल** और **बरगद** के वृक्ष तथा **तुलसी** के पौधे को पवित्र माना जाता है। पहाड़ों और पर्वतों को भी हिंदू धर्म में पवित्रता का प्रतीक माना जाता है। **कैलाश पर्वत** और **वैकुंठ** (शिव तथा विष्णु के निवास स्थान) तथा गंगा, सरस्वती व कावेरी जैसी नदियों को भी पवित्र माना जाता है। यह सभी प्रकृति के सम्मान सूचक हैं जो सभी प्रकार के जीवन के धारक हैं।

हिंदू धर्म **वर्णाश्रम धर्म** *(कर्तव्य)* पर पर्याप्त बल देता था। इसके अनुसार व्यक्ति के जीवन को चार भागों में बाँटा गया था–

1. ब्रह्मचर्य : यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात बचपन की अवस्था से निकलकर व्यक्ति ब्रह्मचारी के रूप में अपने गुरु के यहाँ सादगीपूर्ण एवं ब्रह्मचारी रहकर विद्यार्थी जीवन व्यतीत करता था।

2. गृहस्थ : शिक्षा पूरी करने के पश्चात वह अपने माता-पिता के घर लौट आता था। विवाह करता था और पारिवारिक जीवन व्यतीत करता था।

3. वानप्रस्थ : बच्चों को पढ़ा-लिखा कर उनका विवाह करके तथा उन्हें आत्मनिर्भर बनाने के उत्तरदायित्व से मुक्त होकर वह अपना घर-बार त्याग कर जंगल में एक साधु की भाँति जीवन व्यतीत करता था।

4. संन्यास : इस अवस्था में वह ध्यान तथा कठिन तपस्या द्वारा अपनी आत्मा को भौतिक पदार्थों से मुक्ति दिलाने का प्रयास करता था और बहुत अधिक वृद्ध होने तथा सभी प्रकार के सांसारिक बंधनों से मुक्त एक संन्यासी की तरह किसी एक जगह न रह कर, विचरण करता था।

जीवन के इन चार *चरणों* का पालन सभी व्यक्तियों को करना होता था चाहे वे किसी भी जाति, पंथ या मत के मानने वाले क्यों न हों। इसे ही मोक्ष प्राप्त करने का आदर्श मार्ग माना जाता था।

हिंदू धर्म में **दर्शन** का स्थान सदैव से बहुत ऊँचा रहा है। दर्शन में ऐसे ज्ञान का अध्ययन होता है जैसे– ईश्वर क्या है? आत्मा क्या है? जीव क्या है? मृत्यु के पश्चात लोग कहाँ जाते हैं? जीवन क्या है? और इसी प्रकार के अन्य अनेक प्रश्न। मानव इतिहास में दर्शनशास्त्र की सर्वोत्तम कृतियाँ **उपनिषद्** हैं। उपनिषद् रीति-रिवाजों पर बल नहीं देते, अपितु दर्शन और ज्ञान पर अधिक बल देते हैं।

हिंदू धर्म का एक और महत्त्वपूर्ण पक्ष है **भक्ति** अथवा समर्पण का सिद्धांत। शंकराचार्य, रामानुज, माधवाचार्य, ज्ञानेश्वर, तुलसी, मीरा बाई तथा कबीर जैसे संत इसी विचारधारा के प्रचारक थे।

हिंदू धर्म नैतिकता पर भी बल देता है। अहिंसा का सिद्धांत तथा दया, करुणा, मैत्री भाव, दानवीरता एवं परोपकारिता जैसे गुणों पर भी बल दिया जाता है। हिंदू धर्म सहिष्णुता तथा दया का पक्षधर है। हिंदू धर्म की आस्था **वसुंधैव कुटुंबकम्**

में है जिसका अर्थ है कि समस्त संसार एक परिवार है। वे **सर्व धर्म समभाव** में भी विश्वास रखते हैं जिसका अर्थ है कि सभी धर्म समान हैं। एक ईश्वर में विश्वास रखने वाले अन्य धर्मों की भाँति हिंदू धर्म यह नहीं मानता कि मोक्ष प्राप्ति का केवल एक ही मार्ग है।

जैन तथा बौद्ध धर्म

हिंदू धर्म के दर्शन तथा उपनिषदों की दार्शनिक परंपराओं का अनुसरण करते हुए ज्ञान प्राप्ति द्वारा मोक्ष प्राप्ति की जिज्ञासा बनी रही। इसी से **जैन** तथा **बौद्ध धर्मों** का उदय हुआ। ये दोनों धर्म मोक्ष प्राप्ति के महान मार्ग माने जाने लगे। बौद्ध धर्म तो एशिया के अनेक भागों में फैल गया।

जैन धर्म

मान्यता के अनुसार जैन धर्म के संस्थापक उनके प्रथम **तीर्थंकर आदिनाथ** थे। पहले 22 तीर्थंकरों के विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती। **23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ** थे जो ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी में हुए। **वर्धमान महावीर** चौबीसवें तीर्थंकर थे जिनका जन्म बिहार के वैशाली नगर में 540 ई. पू. में हुआ था। वह एक प्रसिद्ध क्षत्रिय वंश से संबंध रखते थे। महावीर लोगों के कष्टों को देख कर अत्यंत द्रवित हुए। सत्य की खोज में तथा जीवन संबंधी प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने हेतु उन्होंने 30 वर्ष की आयु में घर छोड़ दिया। 42 वर्ष की आयु में उन्हें **कैवल्य** अर्थात सर्वोच्च ज्ञान की प्राप्ति हुई जिससे उन्होंने आनंद और पीड़ा के भावों पर विजय प्राप्त कर ली। इसलिए उन्हें **'जिन'** अर्थात विजेता कहा जाने लगा और महावीर तथा उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरों द्वारा प्रसारित धर्म **जैन धर्म** कहलाया।

जैन धर्म के पाँच सिद्धांत हैं – सत्य बोलना, संपत्ति न रखना, हिंसा न करना, चोरी न करना तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना। महावीर ने **त्रिरत्नों** अर्थात जीवन के तीन रत्नों पर बल दिया–**सम्यक ज्ञान**, **सम्यक दर्शन** तथा **सम्यक चरित्र**। वह चाहते थे कि लोग सादा जीवन व्यतीत करें। जैन धर्म ने **अहिंसा** के सिद्धांत पर भी बल दिया।

कालांतर में जैन धर्म दो संप्रदायों में विकसित हुआ – **श्वेतांबर** अर्थात जिनके मुनि सफ़ेद वस्त्र पहनते हैं और **दिगंबर** *अर्थात* जिनके मुनि वस्त्र नहीं पहनते। वस्त्र तक न धारण करना या न रखना त्याग की चरम परिणति दर्शाता है। यह धर्म विश्व के प्राचीनतम धर्मों में एक है। जैन धर्म भारत के कई भागों में फैल गया जिनमें मुख्य थे– कर्नाटक, उड़ीसा, तमिलनाडु, मालवा, गुजरात तथा राजस्थान।

बौद्ध धर्म

'बुद्ध' एक उपाधि है, नाम नहीं, जिसका अर्थ है **प्रबुद्ध व्यक्ति**, वह व्यक्ति जिसे सत्य का ज्ञान है। बुद्ध का वास्तविक नाम सिद्धार्थ था। नेपाल के तराई क्षेत्र में लुंबिनी नामक स्थान पर **शाक्य वंश** में बुद्ध का जन्म हुआ। इनके पिता **शुद्धोधन** थे तथा माता का नाम **मायादेवी** था। इनका लालन-पालन इतने वैभवपूर्ण वातावरण में हुआ कि नवयुवक होने तक इन्होंने बाहरी जीवन का कोई भी दृश्य नहीं देखा था। फिर इन्होंने तीन ऐसे दृश्य देखे जिन्होंने इनका जीवन ही बदल डाला। पहला दृश्य था– वृद्धावस्था के कारण एक क्षीणकाय व्यक्ति, दूसरा किसी भयंकर रोग से पीड़ित व्यक्ति और तीसरा था एक मृतक शरीर को अंतिम संस्कार के लिए ले जाते हुए।

इन दृश्यों ने उन पर गहरा असर डाला और उनके मन में यह लालसा पैदा की कि कोई ऐसा मार्ग ढूँढ़ा जाए जिससे सभी प्रकार के कष्टों से मुक्ति प्राप्त हो सके तथा जीवन के सच्चे अर्थ

का पता लग सके। इसलिए, यद्यपि वह विवाहित थे और राहुल नाम का उनका एक पुत्र भी था, तथापि 29 वर्ष की आयु में घर-बार त्याग कर सत्य की खोज में तथा जीवन का अर्थ जानने के लिए निकल पड़े। एक पीपल के वृक्ष के नीचे घोर तपस्या के पश्चात बिहार में बोधगया नाम के स्थान पर उन्हें सर्वोच्च ज्ञान की प्राप्ति हुई।

बुद्ध का कहना था कि सभी दुःखों का कारण **तृष्णा** है अर्थात जीने की तृष्णा और अनेक वस्तुएँ प्राप्त करने की तृष्णा। बुद्ध ने चार श्रेष्ठ सत्यों का प्रतिपादन किया –

(1) **प्रथम सत्य** यह कि संसार दुखों से भरा हुआ है। जीवन,जन्म,रोग, बुढ़ापा तथा मृत्यु की प्रत्येक सामान्य घटना के साथ भी दुःख जुड़ा हुआ है।

(2) **दूसरा सत्य** यह है कि दुःख का कारण तृष्णा है।

(3) **तीसरा सत्य** यह है कि इस दुःख का अंत करने के लिए सभी प्रकार की तृष्णा से मुक्त होना चाहिए।

(4) **चौथा सत्य** यह है कि **अष्टांगिक मार्ग** का अनुसरण करने से तृष्णा से छुटकारा पाया जा सकता है। ये आठ मार्ग हैं – सम्यक अर्थात सत्य दृष्टि, सत्य भाव, सत्य भाषण, सत्य व्यवहार, सत्य निर्वाह, सत्य प्रयत्न, सत्य विचार, सत्य साधना अर्थात सम्यक समाधि।

बुद्ध ने शेष जीवन एक स्थान से दूसरे स्थान जाकर अपने सिद्धांतों के प्रचार हेतु यात्रा करने में लगा दिया। किसी भी जाति या व्यवसाय के लोग **संघ** अर्थात बौद्ध धार्मिक संघ में शामिल हो सकते थे। स्त्रियाँ भी संघ में सम्मिलित हो सकती थीं।

बौद्ध धर्म का उद्देश्य **निर्वाण** की प्राप्ति है जो पूर्णतः शांति तथा **दुःखों** से निवारण की सर्वोत्तम स्थिति है।

गौतम बुद्ध भगवान अथवा रक्षक होने का दावा नहीं करते थे बल्कि अपने को केवल ऐसा अध्यापक मानते थे जो लोगों को जीवन का सही मार्ग दिखा सके। उनकी शिक्षाएँ **त्रिपिटकों** में संग्रहीत हैं। इसके तीन भाग हैं – पहले भाग में बौद्ध भिक्षुओं के लिए नियम हैं, दूसरे में बुद्ध के प्रवचन हैं, तीसरे में बौद्ध विचार प्रणाली का वर्णन है।

बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का प्रचार दूर-दूर तक हुआ। प्रसिद्ध मौर्य सम्राट अशोक महान ने बौद्ध धर्म को अपनाया और मध्य एशिया, पूर्वी एशिया तथा श्रीलंका में धर्म प्रचारक भेजे। आज भी श्रीलंका, थाईलैंड, चीन, कंबोडिया, जापान, कोरिया आदि देशों में बौद्ध धर्म बहुत लोकप्रिय है।

यहूदी, ज़रथ्रुष्ट तथा ईसाई धर्म

प्राचीन काल में पश्चिमी एशिया में तीन महत्त्वपूर्ण धर्मों का उदय हुआ। ये थे– यहूदी धर्म,ज़रथ्रुष्ट धर्म तथा ईसाई धर्म। आगे के पृष्ठों में आप इन्हीं तीनों धर्मों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

यहूदी धर्म

यहूदी धर्म यहूदी या हिब्रू लोगों का धर्म है। यहूदी धर्म की स्थापना का इतिहास **अब्राहम** से प्रारंभ होता है जिन्होंने मेसोपोटामिया से फिलस्तीन तक के स्थानांतरण में अपने लोगों का नेतृत्व किया। फिलस्तीन को **कैनन प्रदेश** (Land of Canaan) भी कहा जाता है। सर्वप्रथम यह बात अब्राहम ने ही कही थी कि ईश्वर एक है। अब्राहम, उनके पुत्र इसाक तथा पौत्र जैकब को **पैतृक धर्माध्यक्ष** (Patiarchs) कहा जाता है। जैकब को

इज़राइल के नाम से भी पुकारा जाता था। इसलिए, बारह कबीले जो उनके वंशज हैं, **इज़राइल की संतान** कहलाते हैं।

कहा जाता है कि **जैकब** के जीवन के अंतिम काल में एक भयंकर दुर्भिक्ष के कारण इज़राइलियों को भोजन की तलाश में मिस्र जाना पड़ा। वे वहाँ 13वीं शताब्दी ई.पू.तक फलते-फूलते रहे लेकिन एक नए शासक, जिसे फ़ैरो (Pharaoh) कहा जाता है, ने उन्हें दास बना लिया तथा उन पर अत्याचार किए जाने लगे। इस शासक का नाम था रैम्से-द्वितीय। इज़राइलियों में से ही एक **मूसा** नामक व्यक्ति ने उन्हें स्वतंत्र कराने का बीड़ा उठाया। उन्होंने ऐसा करने का निर्णय इसलिए लिया क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया कि उन्हें यह आदेश स्वयं ईश्वर ने दिया था। ईश्वर को **यहोवा** या **जेहोवा** कहा जाता है जिसका अर्थ है– वह जो सृष्टि का निर्माण करता है (He Who Causes To Be) अर्थात स्रष्टा (The Creator)। **मूसा** के नेतृत्व में वे मिस्र से बच निकले तथा सिनाय पर्वत पर पहुँच गए। वहाँ पर ईश्वर ने उन्हें दैवी नियम **तोराह** प्रदान किए, जिसका अर्थ है **दस उपदेश** तथा अनेक अन्य नियम। मूसा ने अपने कबीले के साथियों से इन उपदेशों तथा अन्य नियमों का पालन करने को कहा।

मूसा के उत्तराधिकारी **जोशुआ** ने अपने अनुयायियों का नेतृत्व किया और जॉर्डन नदी के पार के क्षेत्र पर विजय प्राप्त की ताकि कैनन (Canaan) की **प्रत्याशित भूमि** (Promised Land) पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सके। इस प्रदेश के पहले राजा बैंजामिन थे। द्वितीय नरेश **डेविड** ने इज़राइल में जेरूसलेम को अपनी राजधानी बनाया। यहूदियों के मंदिर को **सिनेगॉग** (Synagogue) कहा जाता है।

यहूदियों का विश्वास है कि ईश्वर एक ही है और केवल उसी की उपासना करनी चाहिए और वह भी दिन में दो बार। उनकी प्रार्थना है– "सुनो ऐ इज़राइल, हमारा मालिक भगवान है और वह मालिक एक है। "(Hear, O Israel, the Lord is our God, the Lord is One.)

यहूदी लोगों की यह धारणा है कि मनुष्य को ईश्वर ने उत्पन्न किया है और उसे विचार करने तथा रचना करने की शक्ति दी है ताकि वह सही और गलत में भेद कर सके तथा अपनी प्रार्थना के द्वारा ईश्वर से बात कर सके।

एक सच्चे यहूदी का कर्तव्य है कि वह प्रतिदिन ईश्वर की प्रार्थना करे और भोजन से पूर्व तथा भोजन के पश्चात उसका धन्यवाद करे।

ज़रथ्रुष्ट धर्म या पारसी धर्म

जोरोस्टर अर्थात **ज़रथ्रुष्ट** प्राचीन ईरान के एक पैगंबर थे जिन्होंने **ज़रथ्रुष्ट धर्म** अर्थात **पारसी धर्म** की स्थापना की। यह धर्म विश्व के प्राचीनतम धर्मों में एक है। भारत में रहने वाले **पारसी** इसी धर्म के अनुयायी हैं।

ज़रथ्रुष्ट कहते थे कि ईश्वर एक है जिसे वे **अहूर माज़दा** कहते थे जिसका अर्थ है - **प्रकाश तथा बुद्धि के स्वामी**। इसके अनुसार अहूर माज़दा (ईश्वर) के पास सात पवित्र अमर आत्माएँ उनकी सहायतार्थ रहती हैं। प्रत्येक पुण्यात्मा किसी न किसी गुण का प्रतीक हैं जैसे सत्य, सद्बुद्धि, निष्ठा (**भक्ति**), न्याय आदि। प्रत्येक को प्रकृति के किसी न किसी भाग की देख-भाल भी करनी होती है जैसे – वनस्पति, जीवजंतु, जल आदि।

प्रभु अहूर माज़दा की मानव को सबसे बड़ी देन है बुद्धि, जिससे उसे अच्छे और बुरे की

पहचान करने का अधिकार मिला है। बुराई या असत्य को **अहरिमन** कहते हैं। प्रत्येक मानव का यह कर्तव्य है कि वह ईश्वर के सैनिक के रूप में सदैव बुराई से लड़ता रहे। पारसी धर्म का मुख्य लक्ष्य है सद्विचार, सद्वाणी तथा सत्कर्म।

पारसी धर्म ईरानवासियों का धर्म था जिन पर बाद में अरबवालों ने विजय प्राप्त की और अधिकांश लोगों को मुसलमान बना लिया। इनमें से पारसियों का एक छोटा-सा दल लगभग 1000 वर्ष पूर्व नाव द्वारा भारत के पश्चिमी तट पर आ बसा ताकि अपने धर्म के मूल सिद्धांतों की रक्षा कर सके। उन्हें यहाँ शरण मिली और तब से वे निरंतर समृद्धि की ओर अग्रसर हुए। इनके पवित्र ग्रंथ का नाम है **अवेस्ता-ए-जेंद**। इसमें इस धर्म के प्रवर्तक ज़रथुष्ट संबंधी **गाथाएँ** अर्थात **स्तुतिगीत** हैं।

ईसाई धर्म

ईसाई धर्म ईसा के जीवन और शिक्षाओं पर आधारित धर्म है। ईसा प्राचीन फिलस्तीन के एक यहूदी थे जिन्हें ईश्वर का पुत्र माना जाता है। ईसाई धर्म का सबसे पवित्र चिह्न **क्रॉस** है। ईसाइयों की पवित्र पुस्तक का नाम **बाईबल** है। हमें यह याद रखना चाहिए कि ईसाई धर्म भी उन सभी पैगंबरों को मानता है जिसे यहूदी धर्म के लोग मानते हैं।

ईसा का जन्म जेरूसेलम के निकट **बैथलेहम** नामक स्थान पर हुआ। उनके जन्म दिवस को **क्रिसमस** के रूप में मनाया जाता है। ईसा की माता का नाम **मेरी** था। ईसा ने अपने जीवन के प्रथम तीस वर्ष एक बढ़ई के रूप में बैथलेहम के निकट नाज़रेथ नामक स्थान पर बिताए। फिर उन्होंने धर्म प्रचार करना प्रारंभ किया और कुछ अनुयायी भी बना लिए।

उन्होंने इस बात पर बल दिया कि ईश्वर एक है और प्रेम, मातृत्व तथा करुणा सबसे महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कुछ चमत्कार भी किए जैसे मृतक शरीर में प्राण संचार करना, प्रेतात्माओं को भगाना, रोगियों का रोग निवारण करना, वायु तथा समुद्री लहरों को शांत करना, आदि।

बहुत से लोग ईसा की शिक्षाओं से सहमत नहीं थे। इन लोगों ने ईसा को सलीब पर चढ़ा कर सूली लगाई। ईसाइयों का विश्वास है कि ईसा मरने के तीन दिन बाद पुनः जीवित हो गए थे। ईसाई तीन बातों **त्रित्व** में विश्वास रखते हैं। वे हैं ईश्वर - पिता, ईश्वर - पुत्र (ईसा), जिन्होंने मानव मात्र को पाप से बचाने के लिए अपनी कुर्बानी दी और ईश्वर – पवित्र आत्मा जो लोगों का विचारों तथा कार्यों में मार्गदर्शन करती है।

ईसाई धर्म की स्थापना को अभी दो सौ वर्ष ही हुए थे कि ईसा की दूसरी शताब्दी में ईसाइयों में आपसी मतभेद के कारण कुछ लोगों ने इसे छोड़कर अलग संप्रदाय बना लिया। स्पष्टतया दो संप्रदायों का उदय हुआ - रोमन कैथोलिक चर्च तथा ईस्टर्न आर्थोडॉक्स चर्च। 1517 ईस्वी में मार्टिन लूथर ने, जो पादरी भी थे और अध्यापक भी, कैथोलिक चर्च की शिक्षाओं से असहमति तथा विरोध के कारण एक नए संप्रदाय की स्थापना की जिसे **प्रोटेस्टैंट** कहा जाता है। एक अन्य संप्रदाय का भी उदय हुआ जो अपने आपको फ्री चर्च कहते हैं। तथापि, यह याद रखना चाहिए कि सभी संप्रदाय ईसा द्वारा उपदेशित मूल सिद्धांतों को ही मानते हैं।

इस्लाम तथा सिक्ख धर्म

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक **हज़रत मुहम्मद** हैं। इस धर्म के अनुयायियों को **मुसलमान** कहते हैं। सिक्ख धर्म की स्थापना **गुरु नानक देव** ने की थी और उनके अनुयायियों को **सिक्ख** कहते हैं। **आप इन दोनों मुख्य धर्मों के बारे में अगली कक्षा में विस्तार से पढ़ेंगे।**

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

(1) विष्णु के दस अवतारों के नाम लिखिए।
(2) वर्णाश्रम धर्म क्या है?
(3) जैन तीर्थंकर कौन थे?
(4) जैन धर्म के पाँच सिद्धांत कौन से हैं?
(5) गौतम बुद्ध कौन थे?
(6) बुद्ध धर्म के चार श्रेष्ठ सत्य कौन से हैं?
(7) अब्राहम कौन थे?
(8) तोराह किसे कहते हैं?
(9) ईसा कौन थे?
(10) ईसाई धर्म में त्रित्व किसे कहते हैं?
(11) ज़रथ्रुष्ट कौन थे?
(12) ज़रथ्रुष्ट धर्म के मुख्य देवता कौन थे?

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

(1) हिंदू धर्म के कुछ मूल आधार ———————— सभ्यता में है।
(2) कैलाश पर्वत ———————— का निवास स्थान है।
(3) जैन धर्मावलंबी ———————— तीर्थंकरों को मानते हैं।
(4) महावीर को ———————— भी कहते हैं।
(5) बुद्ध का असली नाम ———————— था।
(6) बुद्ध को सच्चा ज्ञान ———————— नामक स्थान पर प्राप्त हुआ।
(7) यहूदियों के मंदिर ———————— कहलाते हैं।
(8) फिलस्तीन को ———————— का देश भी कहा जाता है।
(9) ईसाइयों की पवित्र पुस्तक ———————— है।
(10) मार्टिन लूथर ने जिस संप्रदाय की स्थापना की उसे ———————— कहा जाता है।
(11) ज़रथ्रुष्ट धर्म की पवित्र पुस्तक का नाम ———————— है।
(12) ज़रथ्रुष्ट धर्म के अनुयायी ———————— कहलाते हैं।

करने के लिए कार्य

* विभिन्न धर्मों से संबंधित चित्रों को एकत्र कीजिए।

इकाई तीन

समुदाय और
उसका विकास

हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि पृथ्वी हमारा निवासस्थान है और किस प्रकार इसके प्राकृतिक व जलवायु विभाग तथा भौगोलिक कारक हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। हम यह भी जानते हैं कि मनुष्य कैसे धीरे-धीरे उन्नति कर विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त हुआ अर्थात शिकारी, अन्न इकट्ठा करने वाला, चरवाहा और फिर स्थायी किसान बना। बाद में गाँव बढ़ कर नगर और शहर बन गए और लोग अपनी मूल आवश्यकताओं से आगे देखने लगे। विभिन्न स्थानों पर प्राकृतिक पर्यावरण में विविधता के कारण लोगों की जीवन शैली, व्यवसाय, त्योहार, रीति-रिवाज, वेशभूषा, खान-पान की आदतें भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलती रहती हैं। स्थानीय बाध्यताओं के फलस्वरूप लोगों ने अपना सामुदायिक जीवन स्वतः विकसित कर लिया। विभिन्न प्राकृतिक और मानव निर्मित पर्यावरण में रहने के कारण उनकी आवश्यकताएँ भिन्न थीं और उन्हें पूरा करने के साधन भी अलग-अलग थे। प्राचीन काल में स्थानीय मामलों की देख-रेख के लिए गाँव पंचायत और नगर परिषदें होती थीं। आजकल केंद्र और राज्यों में निर्वाचित सरकारों के साथ-साथ स्थानीय स्वशासित संस्थाएँ भी महत्त्वपूर्ण बन गई हैं।

इस इकाई में सार्वजनिक संपत्ति की उचित देख-भाल और उपयोग पर ध्यान केंद्रित किया गया है। हम दैनिक जीवन में कई सार्वजनिक सुविधाओं के संपर्क में आते हैं। ये सार्वजनिक सुविधाएँ हैं– पाठशालाएँ, पंचायत घर, कुएँ, संग्रहालय, पार्क, अस्पताल, रेल सेवाएँ, बसें इत्यादि। हमने बच्चों का ध्यान भी सार्वजनिक सुविधाओं को सुरिक्षत रखने की ओर आकर्षित किया है जो सबके हित में हैं। इसके अतिरिक्त पाठ्यक्रम में इस बात पर भी ध्यान दिया गया है कि हम अपने ऐतिहासिक और राष्ट्रीय स्मारक, जो हमारी सांस्कृतिक धरोहर हैं, उनका ध्यान रखें। ये स्मारक हमें अपनी धरोहर के प्रति गर्व का अनुभव कराते हैं।

18

अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे करते हैं

मनुष्य परिवारों में रहते और बढ़ते हैं। जन्म से मृत्यु तक वे परिवारों में रहते हैं। परिवार आकार में छोटे या बड़े हो सकते हैं। साधारणतः परिवार माता-पिता और बच्चों से बने होते हैं। कुछ परिवारों में दादा-दादी और पोते-पोतियाँ भी होते हैं। परिवार में सभी सदस्यों की अलग-अलग आवश्यकताओं को पूरा करने में आसानी होती है। परिवार भोजन, कपड़ा, घर और सुरक्षा भी उपलब्ध कराते हैं। वे प्यार और दुलार, विशेष कर बच्चों को देते हैं। परिवार अपने सदस्यों की स्वास्थ्य एवं सफ़ाई संबंधी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं। परिवार में बच्चों की शिक्षा घर से ही प्रारंभ होती है और बाद में बच्चों को पाठशालाओं में भेजा जाता है।

पारिवारिक जीवन मनुष्य को अन्य सभी प्राणियों से भिन्न बनाता है। परिवार अपने सदस्यों में सामाजिक गुणों के विकास में सहायता करता है। कल के नागरिकों का विकास करने में वे पौधशालाओं का कार्य करते हैं।

समुदाय : परिवारों का परिवार

कई परिवार एक दूसरे के पास रहते हुए समुदाय बनाते हैं। समुदाय विभिन्न व्यवसाय में जुटे परिवारों से बना होता है। समुदाय में किसान, बुनकर, दर्ज़ी, बढ़ई, लोहार, दुकानदार, मज़दूर आदि होते हैं। समुदायों में आजकल नर्सों, डाक्टरों, अध्यापकों, पुलिस, विद्युतकर्मियों आदि की सेवाओं की भी आवश्यकता होती है। समुदाय में प्रत्येक परिवार अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने की कोशिश करता है तथा दूसरे परिवारों की सहायता भी करता है। समुदाय इस प्रकार पारस्परिक आर्थिक निर्भरता को बढ़ावा देता है। यह परिवारों के सदस्यों को सामाजिक भलाई के लिए सहयोग देता है। समुदाय अपने सदस्यों में अपनेपन और एकजुटता की भावना को बढ़ावा देता है। समुदाय में सदस्य सार्वजनिक सुविधाओं को बाँटते हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि वह एक-दूसरे के सुख-दुख में भागीदार होते हैं।

परिवार, समुदाय की एक मुख्य सामाजिक इकाई है। इसी प्रकार यह समाज की भी इकाई है जो कि बहुत बड़े क्षेत्र में फैला हुआ है।

समुदाय : इसकी सांस्कृतिक आवश्यकताएँ

आप जानते हैं कि आदि-मानव ने आग का उपयोग करना सीखा, इससे उसका दिन लंबा हो गया। इसके फलस्वरूप उसे अतिरिक्त समय मिल गया जिसे आप आराम का या फालतू समय कह सकते हैं। उसने इस समय का उपयोग मिलकर नाचने, गाने और खेलने में किया। उसके अपने मनोरंजन के यही तरीके थे। इससे उन्हें अपनी पहचान

बनाने में भी मदद मिली। इसकी झलक उनकी विभिन्न कलाओं और रुचियों के क्रमिक विकास में दिखाई देती है। उन दिनों प्रारंभिक शिकारियों द्वारा पत्थर पर चित्रकारी भी की गई। मध्य प्रदेश की भीमबेटका गुफ़ा की चित्रकारी इसका एक उदाहरण है। इसी प्रकार आदि-मानव की पत्थर पर चित्रकारी संसार के विभिन्न भागों में पाई जाती है। विभिन्न समुदायों ने धीरे-धीरे अपनी लिपियाँ तथा भाषाएँ विकसित कीं। इसने परस्पर बातचीत को बहुत आसान बना दिया।

समय के साथ-साथ, उन्होंने अपने विशिष्ट व्यंजन, पहनावे और सामाजिक त्योहार विकसित किए। समुदाय के रहन-सहन के विभिन्न स्वरूप एक जगह से दूसरी जगह और एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बदलते रहे। तटवर्ती क्षेत्रों में कुछ लोग मुख्यरूप से मछली पकड़ने पर निर्भर करते हैं। इसी प्रकार मरुस्थल और पर्वतीय क्षेत्र के लोगों का मुख्य व्यवसाय भेड़ और बकरी पालना है। वे स्वाभाविक रूप से विभिन्न भौगोलिक एवं जलवायु संबंधी परिस्थितियों से प्रभावित हुए।

लोग या समुदाय संपर्क में आकर एक दूसरे को अधिक प्रभावित करते हैं। उनके रीति-रिवाज, विश्वास और परंपराएँ भी हमारे देश में सांस्कृतिक भिन्नताओं को बढ़ाने में सहयोगी रहे।

पहाड़ों में जीवन

रेगिस्तानों में जीवन

यहाँ दिए गए चित्रों को देखें। कश्मीरी वेशभूषा देखिए। उनके नामों का पता कीजिए। क्या ये वहाँ के मौसम के लिए उपयुक्त हैं? यदि हैं तो कैसे? कथकली एक नृत्य-नाटिका है। यह लगभग मूक होते हुए भी रोमांचक है। यह किस राज्य में विकसित हुआ? मणिपुरी नर्तकों को देखिए। मणिपुर राज्य कहाँ स्थित है? मणिपुर के मैतेयी लोगों के नृत्य और गीत भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति के रूप में हैं।

> भारत उन कुछ देशों में से है जिनकी सांस्कृतिक संपन्नता अनेक विविधताओं से परिपूर्ण है। ये हमारी शक्ति की स्रोत हैं।

गाँवों में परिवर्तन की चुनौतियाँ

भारत अभी भी गाँवों की भूमि है। भारत में पाँच लाख से भी अधिक गाँव हैं। वे वास्तव में ग्रामीण भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं। लगभग सौ साल पूर्व दस में से नौ व्यक्ति गाँवों में रहते थे। आज भी तीन में से दो व्यक्ति गाँवों में निवास करते हैं। वे अधिकतर खेती-बाड़ी पर निर्भर हैं। गाँव के लोग इत्मीनान का जीवन व्यतीत करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं हैं कि वे परिश्रम नहीं करते। वास्तव में वे बहुत परिश्रमी लोग हैं। गाँवों में युवकों को करने योग्य काम

कश्मीरी परिवार

कथकली नृत्य

मणिपुरी नृत्य

नहीं मिलता। इसलिए रोज़गार पाने के लिए वे नगरों और शहरों में जाने के लिए प्रायः उत्सुक रहते हैं।

ग्रामीण भारत में आज भी बदलाव के अच्छे चिह्न दिखाई दे रहे हैं। अधिकतर गाँवों में अब बिजली है, चाहे दिन में कुछ घंटों के लिए ही सही। भारत के कुल विद्युत उत्पादन का लगभग एक तिहाई भाग कृषि क्षेत्र में खपत होता है। यह अधिकतर कुओं और नलकूपों में से पानी निकालने के काम आता है। लोहे के हल और ट्रैक्टर भी एक बड़े पैमाने पर गाँवों में पहुँच गए हैं। बड़े-बड़े गाँवों को सड़कों द्वारा

भारतीय गाँव

पास के नगरों और शहरों से जोड़ दिया गया है। बैलगाड़ी के अतिरिक्त गाँवों में साइकिलें, स्कूटर, मोटर साइकिलें, जीपें, बसें और टैक्सियाँ भी चलती हैं।

किसान अब रासायनिक और अन्य उर्वरकों का प्रयोग कर रहे हैं। वे अधिक उत्पादन के लिए उत्तम और उन्नत बीज इस्तेमाल कर रहे हैं। वे कीड़ों और बीमारियों से फसलों के बचाव के लिए कृमि नाशकों और कीट नाशकों का उपयोग करते हैं। छोटे, मध्यम और बड़े बाँधों के निर्माण द्वारा बहुत बड़ी उपजाऊ भूमि सिंचाई के अंतर्गत लाई गई हैं। इसके फलस्वरूप नकदी फसलें अब बड़े पैमाने पर उगाई जाती हैं।

ग्रामीण भारत में जीवन स्तर में सुधार होने लगा है, लेकिन फिर भी यह कुछ लोगों तक ही

गाँवों में परिवर्तन

सीमित है। अभी भी अधिकतर गाँव निर्धन हैं। ग्रामीण भारत में शहरों की तुलना में निरक्षरता बहुत अधिक है। इसी तरह ग्रामीण महिलाओं में भी निरक्षरता अधिक है।

नगरों और शहरों में परिवर्तन की चुनौतियाँ

आजकल हर तीसरा व्यक्ति नगर या शहर का निवासी है। इनमें से लगभग दो तिहाई शहरी जनसंख्या बड़े नगरों में रहती है। बड़ी संख्या में कम शिक्षित और अशिक्षित ग्रामीण लोग नौकरी की खोज में बड़े शहरों में जाते हैं। वे अधिकतर नागरिक जीवन की चमक से आकर्षित होते हैं। बड़े शहरों की जनसंख्या बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है। शहर बढ़ती हुई जनसंख्या की माँग की पूर्ति करने में असमर्थ है। उनकी माँगों में शामिल हैं – मौलिक सुविधाएँ जैसे नल या स्वच्छ जल, विद्युत, विद्यालय, अस्पताल और औषधालय।

तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या के कारण समाज में बेरोज़गार लोगों से तनाव उत्पन्न होता है। इससे अपराध को बढ़ावा मिलता है। शीघ्रता से बढ़ती जनसंख्या को अधिक और तीव्रगामी यातायात की आवश्यकता है जैसे स्थानीय रेल सेवा और बसें। सड़कों पर वाहनों की संख्या दिनों-दिन तेज़ी से बढ़ती जा रही है। सभी प्रकार के वाहनों और पैदल चलने वालों – दोनों की बढ़ती हुई संख्या से सड़कों पर अधिक भीड़ हो गई है।

भारत में प्रत्येक तीसरा व्यक्ति अब शहर में निवास करता है।
शहरी क्षेत्र के तीन में से दो व्यक्ति बड़े शहरों में रहते हैं।
लगभग पाँच में से दो नगरवासियों के पास नल का पानी नहीं है और न ही उनके पास गंदे पानी के निकास की सुविधा है।
शीघ्रता से बढ़ती जनसंख्या सामाजिक तनाव, प्रदूषण और अपराध पैदा करती है।

शहर में जीवन
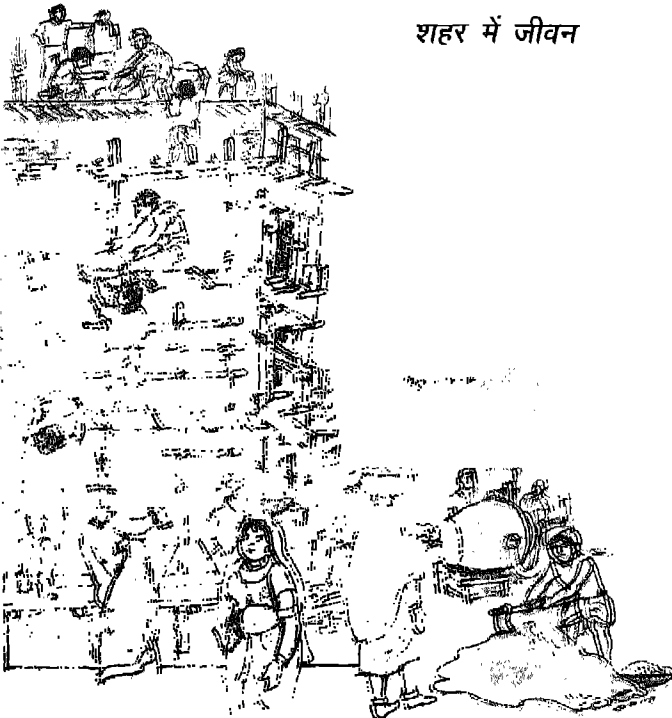
वायु और शोर प्रदूषण से शहर प्रभावित हैं। शहरों में कूड़े के निकास का प्रबंध भी एक बड़ी समस्या है। पीने के स्वच्छ जल और गंदे जल की निकासी की कमी भी बीमारियाँ फैलाती है।

अगले दो अध्यायों में आप देखेंगे कि गाँवों, नगरों और शहरों में लोग किस प्रकार अपनी समस्याओं व मुश्किलों से जूझते हैं और कैसे एकजुट होकर वे इन चुनौतियों से निपटते हैं। आप उन संस्थाओं के बारे में भी पढ़ेंगे जो इन समस्याओं के समाधान के लिए विकसित हुई हैं। आप यह भी जान पाएँगे कि राज्य और केंद्रीय सरकारें किस प्रकार उनकी समस्याओं को सुलझाने में मदद करती हैं।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए

(1) मानव परिवार पक्षियों और पशुओं के परिवारों से किस प्रकार भिन्न है?

(2) परिवार और समुदाय में क्या संबंध है?

(3) शहरी जनसंख्या इतनी तेज़ी से क्यों बढ़ रही है?

2. रिक्त स्थानों को सही शब्द चुनकर भरिए

(1) जनसंख्या जो शहरों और नगरों में रहती है,............................ कहलाती है। (ग्रामीण/ शहरी)

(2) शहरों के उस भाग में जहाँ ज़्यादा भीड़-भाड़ है और पीने के पानी की व्यवस्था तथा गंदे पानी की निकासी की व्यवस्था न हो, उसे .... कहते हैं। (झोंपड़-पट्टी/ अमीरों की बस्ती)

(3) परिवारों के परिवार को .... कहते हैं। (समुदाय/ पंचायत)

3. सही जोड़े बनाइए

(1)	भांगड़ा	**(क)**	असम
(2)	भरतनाट्यम्	**(ख)**	केरल
(3)	बीहू	**(ग)**	पंजाब
(4)	कथकली	**(घ)**	तमिलनाडु

ग्रामवासी अपनी आवश्यकताएँ कैसे पूरी करते हैं

समुदाय के विकास के लिए स्थानीय लोगों की भागीदारी बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह ग्रामीण और शहरी समुदायों दोनों के लिए उपयुक्त है। यह इसलिए है क्योंकि वे अपनी परिस्थितियों से परिचित हैं और स्थानीय ज़रूरतों को अच्छी प्रकार से समझने की स्थिति में हैं। यह उनके स्वयं के हित में है कि वे एक साथ मिल कर अपनी समस्याओं का व्यावहारिक समाधान ढूँढ़ें। उदाहरण के लिए, यदि उनके क्षेत्र में कुआँ या विद्यालय नहीं हैं तो वे उसके निर्माण के लिए उचित उपाय कर सकते हैं।

जब किसी क्षेत्र के लोग स्वयं मिलकर दिन-प्रतिदिन की अपनी समस्याओं का समाधान अपने आप करते हैं तो उसे स्थानीय स्वशासन कहते हैं। वैसे तो स्वशासन संस्थाएँ लोगों को अवसर प्रदान करती हैं कि वे अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझा सकें और किसी पर आश्रित न रहें। इस प्रकार लोगों में आत्मनिर्भरता की भावना जाग्रत होती है। सहकारिता के आधार पर लोगों में अपनी दशा सुधारने का उत्साह पैदा होता है। स्थानीय लोगों के प्रतिनिधि अपने छोटे से क्षेत्रों में कार्य करके अनुभव प्राप्त करते हैं। स्थानीय स्वशासित संस्थाएँ स्थानीय नेतृत्व को बढ़ावा देती हैं जिससे राज्य और केंद्रीय सरकारों के कार्य-भार को बाँटने में सहायता मिलती है।

हमारे देश में स्थानीय स्वशासित संस्थाओं का निर्माण गाँवों, नगरों और शहरों के विकास के लिए अलग-अलग प्रकार से किया गया है क्योंकि स्थानीय लोगों की आवश्यकताएँ भिन्न हैं। हम उनके विषय में एक-एक करके पढ़ेंगे।

ग्रामीण क्षेत्र में स्थानीय स्वशासित संस्थाएँ

ग्रामीण क्षेत्र में स्थानीय स्वशासित संस्था को तीन स्तरों पर संगठित किया गया है। निम्न स्तर पर है, ग्राम पंचायत। उसके ऊपरी स्तर पर है, पंचायत समितियाँ और शीर्ष स्तर पर है, ज़िला परिषद् जिसे ज़िला पंचायत भी कहते हैं।
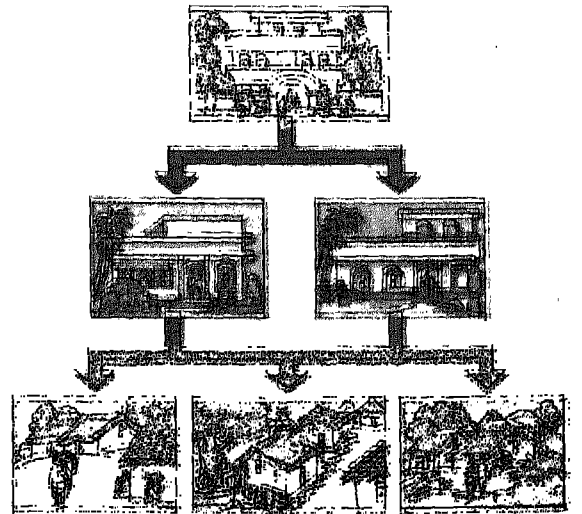
तीन स्तरीय पंचायती राज

ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज तीन स्तरों की स्वशासित इकाइयों से मिलकर बना है। भारत में पंचायत की कल्पना नई नहीं है। भारत में पंचायतों का अस्तित्व प्राचीन समय से ही है। ब्रिटिश शासन के दौरान सरकार के सहयोग के अभाव के कारण धीरे-धीरे पंचायतों की अवनति होती गई। महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान पुरानी पंचायती व्यवस्था के पुनः उद्धार की ज़ोरदार वकालत की।

राष्ट्रपिता

स्वंतत्रता के पश्चात हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने सरकारों के अनुसरण के लिए कुछ नियम और मार्गदर्शक सिद्धांत निर्धारित किए। उनमें से एक है – राज्य ग्राम पंचायत की स्थापना के लिए कार्य करेगा। वह यह भी चाहते थे कि पंचायतों को आवश्यक 'अधिकार तथा सत्ता' दी जाए।

ग्राम पंचायत

प्रत्येक गाँव में एक ग्राम सभा होती है। यह ग्राम पंचायत का चुनाव करती है। ग्राम सभा गाँव की सामान्य सभा है । सभी स्त्री-पुरुष जिनकी आयु 18 वर्ष या इससे अधिक है इसके सदस्य होते हैं। उनके नाम मतदाता सूची में अवश्य दर्ज होने चाहिए। पंचायत के सदस्य प्रत्यक्ष रूप से ग्राम सभा द्वारा चुने जाते हैं। निर्वाचन के लिए पंचायत क्षेत्र निर्वाचन खण्डों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन खण्ड एक प्रतिनिधि को निर्वाचित करके ग्राम पंचायत में भेजता है। कुछ सीटें अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित की गई हैं। एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए भी आरक्षित हैं। अन्य पिछड़ी जातियों को भी उपेक्षित नहीं किया गया है। बहुत से राज्यों ने पहले से ही उनके लिए कुछ स्थान आरक्षित किए हैं।

प्रत्येक ग्राम पंचायत में लगभग एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित हैं।

ग्राम सभा के सदस्य इसके मुखिया या प्रधान को चुनते हैं। कई राज्यों में उसे सरपंच भी कहा जाता है। प्रधान पंचायत की बैठकें बुलाता है और उनकी अध्यक्षता करता है। ग्राम पंचायत अपना एक उप-प्रधान भी चुनती है। प्रधान की अनुपस्थिति में उसका कार्य उप-प्रधान करता है। प्रधान पद के कुछ स्थान अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए आरक्षित रखे गए हैं।

ग्राम पंचायत को पाँच वर्ष की अवधि के लिए चुना जाता है। इनके चुनाव राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा करवाए जाते हैं। निर्वाचित सदस्य प्रधान

ग्राम पंचायत

और उप-प्रधान सहित अपने पद पर पाँच वर्ष के लिए बने रहते हैं। सरकार का एक स्थायी कर्मचारी होता है जिसे पंचायत सचिव कहते हैं। वह पंचायत के द्वारा किए गए कार्यों का ब्यौरा तैयार करता है। वह पंचायत के आय-व्यय का लेखा-जोखा भी रखता है।
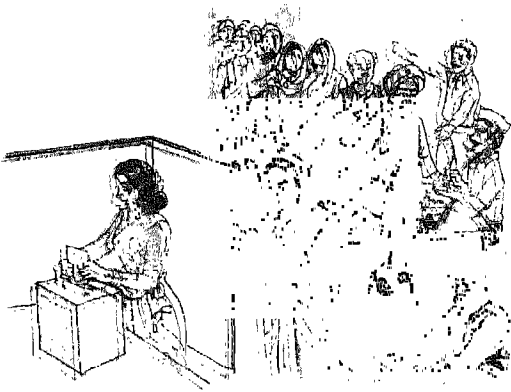
ग्राम पंचायत के चुनाव

ग्राम पंचायत के कार्य

ग्राम पंचायत गाँव के सामान्य प्रशासन की देखभाल करती है। इसका मुख्य कार्य नागरिक सुविधाएँ प्रदान करना है जैसे, पानी, स्वास्थ्य, विद्युत व्यवस्था और सड़कों का रख-रखाव इत्यादि। इसके अन्य कार्य हैं – गाँव की संपत्ति की खरीद-बिक्री का लिखित प्रमाण रखना, जन्म-मृत्यु का ब्यौरा रखना, हाट, मेलों एवं त्योहारों का आयोजन करना, सार्वजनिक कुओं, जलाशयों और तालाबों का रख-रखाव एवं मरम्मत, पुराने पेड़ों की सुरक्षा एवं वृक्षारोपण। इन कार्यों के अतिरिक्त पंचायत लोक कल्याण के अन्य कार्य भी कर सकती है। उदाहरण के लिए वह स्वास्थ्य केंद्र, औषधालय, पुस्तकालय, विद्यालय एवं प्रौढ़ शिक्षा केंद्र खोलने के अतिरिक्त, ग्रामीण खेलों का आयोजन भी कर सकती है।

आय के साधन

ग्राम पंचायत की आय के साधन दो प्रकार के होते हैं। प्रथम साधन है – करों से आय। इनके

ग्राम पंचायत की गतिविधियाँ और कार्य

अंतर्गत मेलों तथा दुकानों पर कर, पशुओं तथा संपत्ति की खरीद और बिक्री पर कर शामिल हैं। इन स्थानीय साधनों से प्राप्त आय बहुत ही कम होती है। दूसरा साधन है राज्य सरकार से प्राप्त अनुदान। ग्राम पंचायतें इस अनुदान राशि पर ही निर्भर रहती हैं। ग्राम पंचायत का वार्षिक बजट प्रति वर्ष ग्राम सभा में उसकी स्वीकृति हेतु पेश किया जाता है।
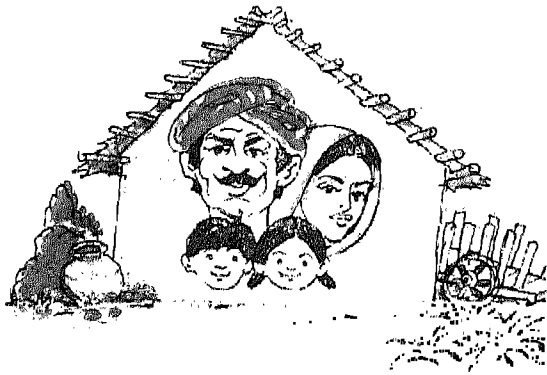
आय के साधन

न्याय पंचायत

अधिकतर राज्यों में गाँवों में न्याय पंचायतें भी स्थापित की गई हैं। यह छोटे-मोटे झगड़ों का निपटारा तथा न्याय करती हैं। गाँव वालों को गाँव से दूर शहर के न्यायालयों में नहीं जाना पड़ता। न्याय पंचायत में वकीलों की आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रकार वे समय और पैसा दोनों की ही बचत करती हैं।

क्या आपने प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचंद रचित कहानी 'पंच परमेश्वर' पढ़ी है? उसे पढ़िए और एक सफल पंच की विशिष्टताएँ ज्ञात कीजिए।

पंचायत समिति

हम सीख चुके हैं कि ग्राम पंचायत के पास सीमित संसाधन होते हैं। इसलिए वे अपनी सारी आवश्यकताएँ अपने आप पूरी नहीं कर सकतीं। फिर भी कुछ ऐसी सामान्य समस्याएँ हैं जो पड़ोसी गाँवों में भी होती हैं। यदि वे अपने साधनों का एकजुट होकर उपयोग करें तो वे अपनी सामान्य समस्याओं को सुलझा सकते हैं। उदाहरण के लिए प्रत्येक गाँव के द्वारा एक बड़ा अस्पताल या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय खोलना संभव नहीं होता है। यह उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है जब आस-पड़ोस के गाँवों की पंचायतें एक ब्लाक बनाएँ और मिलकर ब्लाक या खंड के लोगों की भलाई के लिए कार्य करें।

यह संगठन जो ब्लाक या खंड के विकास के लिए कार्य करता है, पंचायत समिति या ब्लाक समिति कहलाता है। विभिन्न राज्यों में यह विभिन्न नामों से जाना जाता है। कुछ राज्यों में इसे खंड समिति, और अन्य में इसे क्षेत्र समिति के नाम से भी जाना जाता है।

पता लगाइए कि आपके राज्य में पंचायत समिति का क्या नाम है ?

सभी ग्राम पंचायतों के प्रधान या सरपंच पंचायत समितियों के सदस्य होते हैं। निर्वाचित सदस्यों के अतिरिक्त विधान सभा, विधान परिषद्, लोक सभा और राज्य सभा के वे सदस्य जो संबंधित ब्लाक से चुने गए हों, ब्लाक समिति के सदस्य होते हैं।

प्रत्येक पंचायत समिति में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों और महिलाओं के कुछ प्रतिनिधि होते हैं।

पंचायत समिति के सदस्य पाँच वर्षों के लिए चुने जाते हैं। पंचायत समिति के सदस्य सभापति और उप-सभापति का चुनाव करते हैं। सभापति

पंचायत समिति के दैनिक कार्यों को देखता है। पंचायत समिति या ब्लाक का एक प्रशासनिक अधिकारी होता है जिसे खंड विकास अधिकारी (बी.डी.ओ.) कहते हैं।

कार्य

ग्राम पंचायत की तरह पंचायत समिति भी दो मुख्य कार्य करती है। प्रथम, यह नागरिक सुविधाएँ जैसे जल और विद्युत आपूर्ति, सड़कों का बनवाना जैसे अन्य कार्य करती है। यह ब्लाक के अंतर्गत आने वाले सभी गाँवों की भिन्न योजनाओं को क्रियान्वित करती है। यह गाँवों की विभिन्न गतिविधियों पर भी नियंत्रण रखती है। ये कार्य कुटीर उद्योगों के विकास, सहकारी समितियों को चलाने, पशुओं की नस्ल में सुधार लाने, मछली और मुर्गी-पालन को प्रोत्साहन करने जैसे हो सकते हैं। उत्तम प्रकार के बीजों के वितरण का भी ध्यान रखा जाता है।

पंचायत समिति इन सब कार्यों के लिए कुछ विशेषज्ञों को भी ले सकती है। कृषि, शिक्षा, औषधि और गृह निर्माण विशेषज्ञ ब्लाक के गाँवों में जाकर गाँववालों को सलाह देते हैं। इससे कार्यक्रमों के विकास में सहायता मिलती है।

आय के साधन

धन राशि दो मुख्य साधनों से संकलित की जाती है : (1) कर लगा कर और (2) राज्य सरकार से अनुदान तथा वित्तीय सहायता प्राप्त करके। ये पानी, भूमि, दुकानों, भवनों, मेलों और पशुओं पर भी कर लगा सकती है। सरकार भी वित्तीय सहायता प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार से इन समितियों की सहायता करती है। उदाहरण के लिए कृषि विशेषज्ञ उत्तम व उन्नत बीजों, रासायनिक खाद और कृषि के नए औज़ारों को प्राप्त करने, पशुओं की नस्ल में सुधार और दुग्धशालाओं के विकास को प्रोत्साहित कर गाँववालों की मदद करते हैं।

पशु चिकित्सक किस प्रकार गाँव के लोगों की सहायता कर सकते हैं?

ज़िला परिषद्

ज़िला परिषद् पंचायती राज व्यवस्था का त्रिस्तरीय अर्थात तीन स्तरों वाली व्यवस्था का सर्वोच्च स्तर है। इसका अधिकार क्षेत्र ज़िले तक फैला होता है। ज़िला-परिषद् अपने ज़िले के विकास की योजनाएँ तैयार करती है। यह लोगों के सामाजिक और आर्थिक कल्याण के लिए भी कार्य करती है। इस स्तर पर ज़िला प्रशासन के मुख्य अधिकारी जो इस कार्य में संलग्न रहते हैं, वे भी अपना पूरा सहयोग देते हैं।

पंचायत समितियों के सभापति स्वतः ज़िला परिषद् के सदस्य बन जाते हैं। विधान सभा, विधान परिषद् और संसद के सदस्य जो ज़िले का प्रतिनिधित्व करते हैं, वे भी इसके सदस्य होते हैं। ग्राम पंचायत की भाँति ज़िला परिषद् में भी अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा स्त्रियों का प्रतिनिधित्व होता है।

ज़िला परिषद् के सदस्य पाँच वर्ष के लिए निर्वाचित होते हैं। ज़िला परिषद् अपने सदस्यों में से ही अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का चुनाव करती है। उन्हें अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर पद से हटाया भी जा सकता है। विश्वास प्रस्ताव का निर्णय बहुमत से लिया जाता है।

ज़िला परिषद् का मुख्य कार्य ग्राम पंचायतों और पंचायत समितियों की उनके कार्य में सहायता
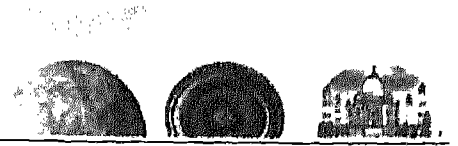
करना है। यह ज़िले के ग्रामीण क्षेत्र के विकास की योजनाएँ तैयार करती है। ज़िला परिषद् की मुख्य ज़िम्मेदारी ज़िले में विकास कार्यों को लागू करना तथा उनका निरीक्षण करना है। ज़िला परिषद्, राज्य सरकारों को पंचायतों तथा समितियों के कार्यों की सूचना भी देती है। ऐसा करके ज़िला-परिषद् ज़िले की स्थानीय स्वशासित संस्थाओं तथा सरकार के बीच एक कड़ी का कार्य करती है।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए

(1) ग्राम सभा का सदस्य कौन बन सकता है?

(2) पंचायती राज के अंतर्गत स्थानीय स्वशासित संस्थाओं के तीन स्तर या श्रेणियाँ कौन सी हैं?

(3) पंचायती राज के अंतर्गत महिलाओं के लिए आरक्षित अंश कितना है?

2. रिक्त स्थानों में उपयुक्त शब्दों की पूर्ति कीजिए

(1) पंचायत समिति के सदस्य .... वर्षों के कार्यकाल के लिए चुने जाते हैं। (चार/पाँच)

(2) ग्राम पंचायत के प्रधान पंचायत समिति के सदस्य .... हैं। (होते/नहीं होते)

(3) गाँव के प्रधान का निर्वाचन .... द्वारा होता है। (ग्राम सभा/ग्राम पंचायत)

3. सही जोड़े बनाइए

(1)	पंचायत समिति	**(क)**	पंचायती राज का निचला स्तर
(2)	ग्राम पंचायत	**(ख)**	पंचायती राज का मध्य स्तर
(3)	ज़िला परिषद्	**(ग)**	पंचायती राज का उच्च स्तर

4. निम्नलिखित में से किस काल में ग्राम पंचायत प्रथम बार अस्तित्व में आई

(1) स्वतंत्रता के पश्चात

(2) ब्रिटिश राज के दौरान

(3) मध्य कालीन युग में

(4) प्राचीन काल में

करने के लिए कार्य

- पता कीजिए कि आजकल लोक सभा और राज्य विधान सभा में महिलाओं के लिए कितना अंश आरक्षित है।
- अपने राज्य में ग्रामीण क्षेत्रों की स्वशासित संस्थाओं के वास्तविक नामों का पता लगाइए।
- आपके विचार में पंचायती राज के पक्ष में कौन सा सबसे शक्तिशाली तर्क है?
- पता करें कि गाँववाले स्वशासित संस्थाओं को कौन-कौन सा कर देते हैं।
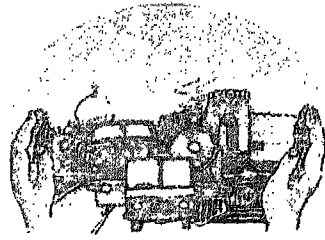
20

नगरों में लोग अपनी आवश्यकताएँ कैसे पूरी करते हैं

हम पहले जान चुके हैं कि पंचायतें कैसे तीन अलग स्तरों पर ग्रामीण क्षेत्रों में मूल सुविधाएँ उपलब्ध कराती हैं। परंतु शहरी जीवन की आवश्यकताएँ भिन्न हैं। नगरों में हम अनेक प्रकार के उद्योगों, कारखानों, व्यापारिक दफ़्तरों को देखते हैं और बड़ी संख्या में दूर-दराज़ के लोगों को आकर्षित करते हैं। लोग बड़ी संख्या में शहरों में आते हैं। इस कारण शहरों की जनसंख्या तेज़ी से बढ़ती है। लोगों को ज़्यादा से ज़्यादा घरों, बिजली, सुरक्षित पीने के पानी और अच्छी यातायात सुविधाओं की आवश्यकता है। उनकी समस्याएँ स्वाभाविक तौर पर गाँव के लोगों से भिन्न हैं। इन्हें सुलझाने के लिए नगरों तथा शहरों की स्वशासित संस्थाओं को अधिक धन और अधिकारों की आवश्यकता होती है।

> नगरों में ज़ीवन क्यों तीव्रग्रामी है?
> बढ़ती हुई जनसंख्या कैसे अधिक समस्याएँ पैदा कर रही है?

नगरों और शहरों की स्थानीय स्वशासित संस्थाएँ नगर पंचायत, नगर पालिका और नगर निगम के नाम से जानी जाती हैं। इन्हें शहरी क्षेत्र की स्थानीय संस्थाएँ भी कहते हैं। स्थानीय संस्थाओं के प्रकार स्थान विशेष की जनसंख्या के आधार पर होते हैं, जिसके विषय में हम आगे के अनुच्छेदों में पढ़ेंगे।

> प्रथम नगर पालिका मद्रास के पूर्व प्रेसिडेंसी नगर में 17वीं शताब्दी में गठित की गई थी। स्वतंत्रता के समय भारत में मात्र तीन नगर पालिकाएँ थीं– मद्रास, बंबई, कलकत्ता।

नगर पंचायत

क्षेत्र और जनसंख्या के आधार पर नगर गाँव से बड़ा परंतु शहर से छोटा होता है। यह शहरी जनसंख्या की सबसे छोटी इकाई है। हर नगर में एक नगर पंचायत होती है, जो कि निर्वाचित संस्था है। यदि कोई व्यक्ति इसका सदस्य बनना चाहता है, तो उसकी आयु 21 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए जबकि मतदाता की आयु 18 वर्ष या उससे अधिक होती है। इसका मुख्य कार्य नागरिक सुविधाएँ जैसे सुरक्षित पीने का पानी व विद्युत प्रदान करना, सड़कों का निर्माण व रख-रखाव करना और सफ़ाई-व्यवस्था संबंधी सुविधाएँ प्रदान करना है। जन्म और मृत्यु का ब्यौरा रखने की ज़िम्मेदारी भी नगर पंचायत की ही है।

बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए नगर पंचायत को घरों के

निर्माण और पार्कों का रख-रखाव भी करना होता है। यह प्राथमिक विद्यालयों, स्वास्थ्य केंद्रों और औषधालयों का संचालन भी करती है।

नगर पंचायतों को कार्य करने हेतु पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है। वे धन कहाँ से प्राप्त करती हैं? उनकी आय का एक भाग करों से प्राप्त होता है, जैसे गृह कर, भवन कर, बिक्री कर, वाहन कर इत्यादि। परंतु उनकी आय का मुख्य स्रोत है – वित्तीय सहायता जो उन्हें सरकार से अनुदान के रूप में प्राप्त होती है।

नगर परिषद्

उन शहरों में जो नगरों से बड़े होते हैं नगर परिषदें होती हैं। नगर परिषदों को कुछ राज्यों में नगर पालिका या नगर बोर्ड भी कहते हैं।

नगर परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन नगर की जनता द्वारा किया जाता है। इन सदस्यों की संख्या नगर की कुल जनसंख्या पर निर्भर होती है। यह संख्या प्रायः नगर से नगर तक बदलती है। चुनाव के उद्देश्य से हर शहर को वार्डों में बाँट दिया जाता है। कुछ सीटें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, महिलाओं और अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षित होती हैं। कुल स्थानों का एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित होता है। नगर परिषद् के सदस्य पाँच वर्षों के कार्यकाल के लिए निर्वाचित किए जाते हैं।

मतदाता को भारत का नागरिक और उस नगर का निवासी होना चाहिए। उसका नाम मतदाता सूची में भी होना आवश्यक है। मतदाता के लिए न्यूनतम आयु 18 वर्ष है, जबकि चुनाव लड़ने के लिए व्यक्ति की आयु 21 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।

नगर परिषद् का सभापति प्रत्यक्ष रूप से लोगों द्वारा चुना जाता है। प्रत्येक नगर परिषद् उप-सभापति का चुनाव भी करती है, जो सभापति की अनुपस्थिति में उसका कार्य करता है। नगर परिषद् की बैठकें नियमित अंतराल पर होती हैं। बैठकों की अध्यक्षता सभापति करते हैं।

नगर परिषदें नगर की सीमाओं के अंदर कार्य करती हैं। उन्हें लोगों की बड़ी संख्या को नागरिक सुविधाएँ प्रदान करनी होती हैं और बढ़ती हुई
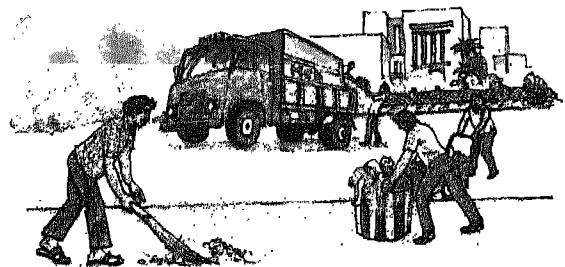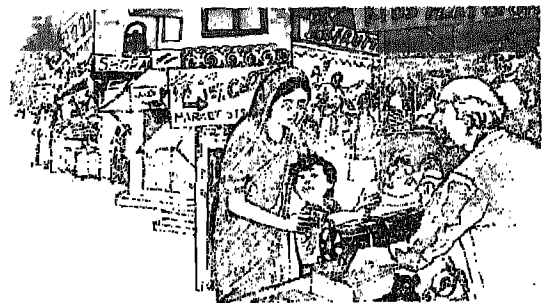
नगर निगम के कार्य

जनसंख्या की आवश्यकताओं के अनुसार कार्य करना होता है। उनके कार्यों में सड़कों, सेतुओं, जल-आपूर्ति हेतु जलाशयों और गंदे पानी की निकासी के लिए नालियों का निर्माण और रख-रखाव शामिल है। उन्हें विद्युत आपूर्ति, भवनों का निर्माण, बाज़ारों अथवा दुकानों की व्यवस्था करनी होती है। कुछ नगर परिषदें, संग्रहालयों और चिड़ियाघरों की भी व्यवस्था करती हैं। ये शहर की योजना इस प्रकार बनाती हैं कि उसमें पार्कों, आवासीय मकानों, दफ़्तरों, विद्यालयों और पुस्तकालयों के निर्माण क़े लिए भूखण्ड सरलता से उपलब्ध हो सके।

इनके अतिरिक्त नगर परिषदों के और भी कार्य हैं, जैसे श्मशान भूमि, कब्रिस्तान और विद्युत शवदाह गृह का रख-रखाव।

ये स्वास्थ्य संबंधी और साफ़-सफ़ाई, जन्म और मृत्यु का पंजीकरण, टीकाकरण और चेचक, हैज़ा, आंत्र ज्वर और पोलियो जैसी महामारियों से बचाव के लिए आवश्यक कदम उठाती हैं। ये खाद्य और खाद्य पदार्थों में मिलावट को रोकने का कार्य भी करती हैं।

आपके नगर में पर्यावरण कैसे दूषित होता है ?

नगर परिषदों की आय का मुख्य साधन है संपत्ति कर, व्यापार व व्यवसाय कर, पानी तथा वाहनों पर कर। ये परिषदें संपत्तियों जैसे मार्किटों, व्यावसायिक भवनों से किराया भी इकट्ठा करती हैं। इसके अतिरिक्त नगर परिषदों को राज्य सरकार से वार्षिक अनुदान भी प्राप्त होता है। ये राज्य सरकार की अनुमिति से ऋण भी ले सकती हैं।

नगर परिषद् में सामान्य प्रशासन के लिए एक कार्यपालक अधिकारी होता है। वह अलग-अलग राज्यों में भिन्न-भिन्न नामों से जाना
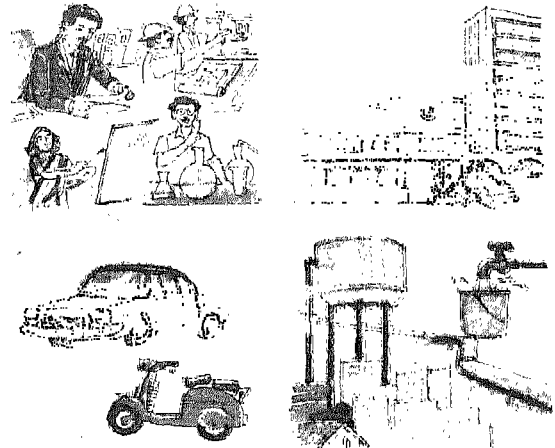
आय के साधन

जाता है। उसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है।

नगर निगम

नगर निगम बड़े शहरों में स्थापित किए जाते हैं जैसे दिल्ली, मुंबई, चैन्नई, कोलकाता, कानपुर, हैदराबाद, पुणे, लखनऊ, भोपाल, पटना, जयपुर इत्यादि।

अपने राज्य के एक नगर का नाम लिखिए जहाँ नगर निगम है।

निगम के सदस्यों का निर्वाचन शहर के नागरिकों द्वारा किया जाता है जो 18 वर्ष या उससे अधिक आयु के होते हैं। परंतु जो व्यक्ति चुनाव लड़ना चाहते हैं उनकी आयु 21 वर्ष या उससे अधिक होनी चाहिए। शहर वार्डों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक वार्ड से एक सदस्य निर्वाचित होता है। निर्वाचित सदस्यों की संख्या शहर की जनसंख्या पर निर्भर करती है। कुछ स्थान अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं के लिए आरक्षित होते हैं। निगम

के निर्वाचित सदस्यों का कार्यकाल पाँच वर्ष होता है।

नगर निगम के प्रमुख या अध्यक्ष को मेयर या महापौर कहते हैं। महापौर अलग-अलग राज्यों में भिन्न नामों से जाना जाता है। महापौर का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से होता है। उप-महापौर का निर्वाचन सदस्य करते हैं।

किन्हीं दो नगर निगमों के महापौरों के नाम ज्ञात कीजिए।

प्रत्येक नगर निगम में एक निगम आयुक्त या मुख्य प्रशासकीय अधिकारी होता है । वह लोगों द्वारा नहीं चुना जाता है। उसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। इस अधिकारी का मुख्य कार्य है, नगर निगम के निर्णयों को लागू करना।

आपके राज्य में निगम आयुक्त किस नाम से जाना जाता है?

नगर निगम के दिन-प्रतिदिन के कार्य की देख-भाल विभिन्न समितियाँ करती हैं। इन समितियों में पाँच से बारह सदस्य होते हैं। शिक्षा समिति तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य समिति, दो प्रमुख समितियाँ हैं। जल-आपूर्ति, विद्युत आपूर्ति, सफ़ाई आदि के लिए भी अलग समितियाँ होती हैं। इन्हें व्यावसायिक केंद्र, बाज़ार, दुकान, सड़क, पुल और पानी की टंकी बनाने का कार्य भी करना होता है। ये महामारियों और अन्य बीमारियों की रोकथाम तथा बचाव के लिए टीकाकरण अभियान चलाती हैं तथा सफ़ाई भी सुनिश्चित करती हैं।

ये अस्पतालों, औषधालयों, विद्यालयों , पालना-घरों, रैन बसेरों, अनाथालयों और शिशु कल्याण केंद्रों की भी व्यवस्था एवं संचालन करती हैं। नगर निगम प्राथमिक विद्यालय खोलता है तथा
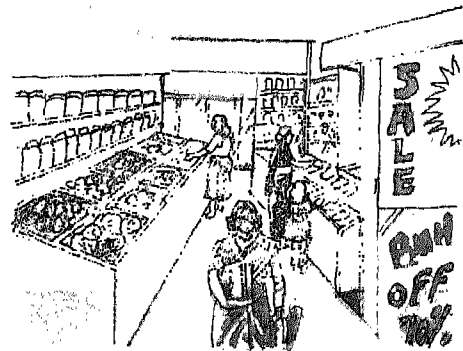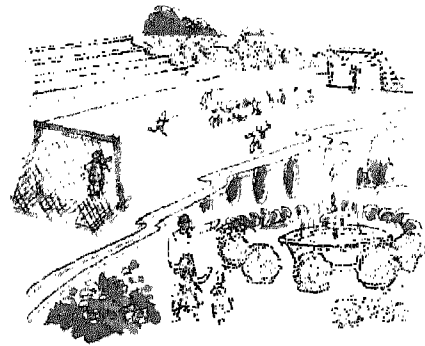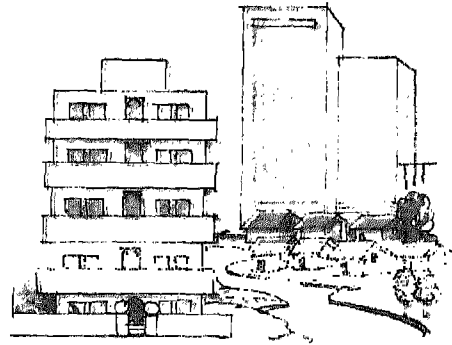
नगर निगम के कार्य

सार्वजनिक पुस्तकालयों, संग्रहालयों और वाचनालयों को भी स्थापित करने का कार्य करता है।

नगर निगम के मूल कर्तव्यों में एक कर्तव्य है जन्म और मृत्यु का पंजीकरण। ये श्मशान घाटों, कब्रिस्तानों और विद्युत शवदाह गृहों का रख-रखाव भी करते हैं।

नगर निगम और नगर परिषद् में दो मुख्य अंतर बताइए।

नगर निगम की आय के मुख्य स्रोत हैं– गृह कर, संपत्ति कर, जल कर, मनोरंजन कर, व्यावसायिक कर और नगर निगम की संपत्ति से प्राप्त किराया। दुकानदार और व्यापारियों को बाज़ार में सामान बेचने के लिए निगम का किराया और कर देना पड़ता है। इनके अतिरिक्त निगम को राज्य सरकार से वार्षिक वित्तीय अनुदान भी मिलता है।

इस प्रकार हमने यह देखा कि कैसे गाँव के लोग और शहरों के लोग कार्य करके अपनी समस्याएँ सुलझाते हैं। उनकी सक्रिय भागीदारी और सहयोग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। हमें स्थानीय स्वशासित संस्थाओं द्वारा दी गई सुविधाओं का गलत उपयोग नहीं करना चाहिए। कुछ लोगों द्वारा इन सुविधाओं के कुप्रयोग से लोगों की बहुत बड़ी संख्या के हितों की हानि होती है। उदाहरण के लिए सफ़ाई संबंधी लापरवाही से

ज़िलाधीश या ज़िला कलेक्टर

- शांति और व्यवस्था
  - पुलिस अधीक्षक
    - पुलिस उपाधीक्षक
      - इंस्पेक्टर
        - सब इंस्पेक्टर
          - सहायक सब इंस्पेक्टर
            - हैड सिपाही
              - सिपाही
                - चौकीदार
  - जेलर
    - उप ज़ेलर
- भूमि का ब्यौरा रखना और भू-राजस्व प्राप्ति
  - तहसीलदार
    - नायब तहसीलदार
      - कानूनगो
        - पटवारी अथवा लेखपाल
- नागरिक सुविधाएँ एवं विकास
  - ज़िला सिविल सर्जन/मुख्य चिकित्सा अधिकारी
  - ज़िला विद्यालय निरीक्षक
  - ज़िला नियोजन अधिकारी
  - कार्यकारी अभियंता
  - शहरी स्थानीय संस्थाएँ तथा पंचायती राज संस्थाएँ
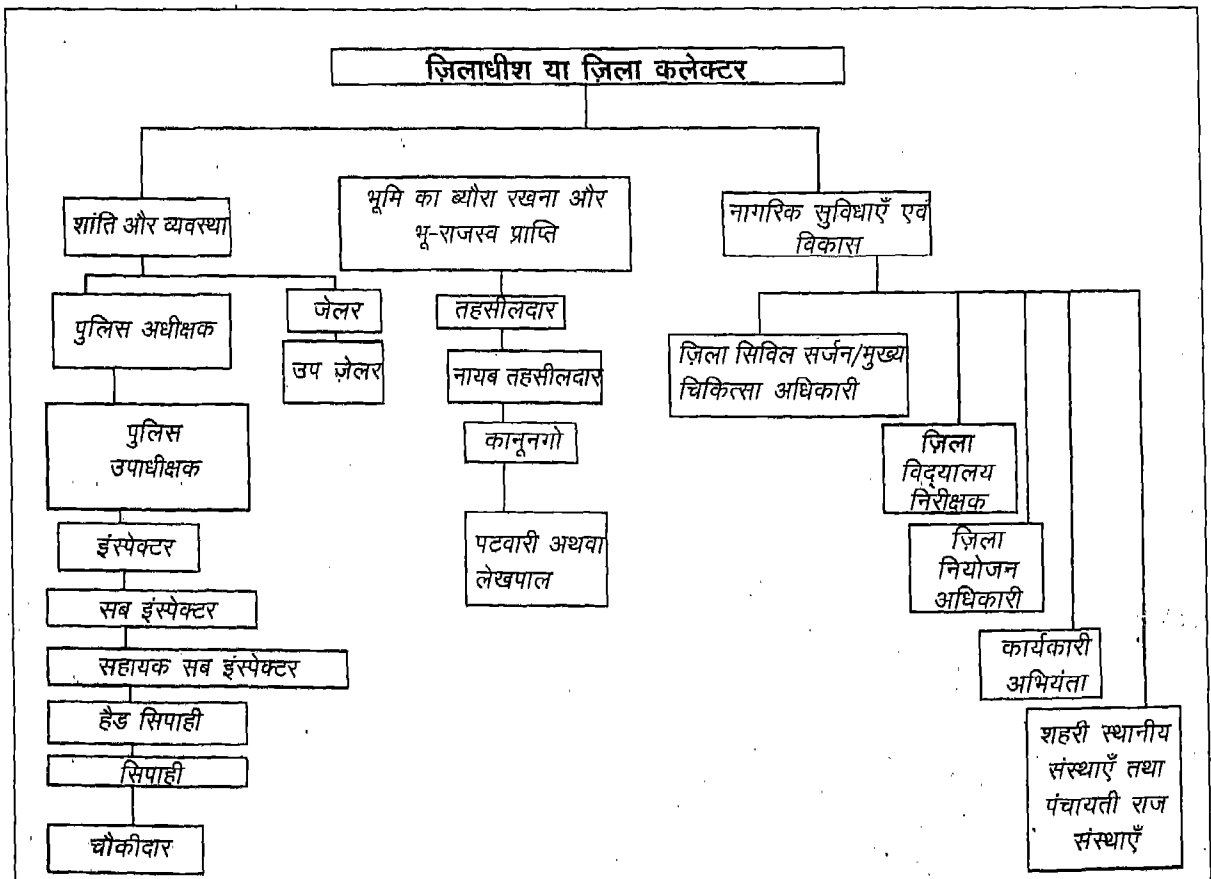
ज़िला प्रशासन

स्थानीय स्वशासित संस्थाओं के लिए जन्म और मृत्यु के पंजीकरण का कार्य अनिवार्य क्यों बनाया गया है?

कई प्रकार की बीमारियाँ और महामारियाँ फैल सकती हैं। यह हमारे हित में है कि हम योग्य और ईमानदार प्रतिनिधियों को चुनें। हमें उनके अच्छे कार्यों के लिए उनकी सहायता अवश्य करनी चाहिए।

ज़िला प्रशासन

भारत के मानचित्र को देखिए। हमारा देश राज्य और केंद्र शासित क्षेत्रों में बँटा हुआ है। ये क्षेत्र आगे ज़िलों में विभाजित किए गए हैं। हमारे देश में लगभग 600 ज़िले हैं। ज़िला भारत के प्रशासन की एक महत्त्वपूर्ण इकाई है । ज़िला प्रशासन का मुखिया ज़िला अधिकारी कहलाता है। कुछ राज्यों में उसे डिप्टी कमिश्नर अथवा कलेक्टर या ज़िलाधीश भी कहा जाता है। वह भारतीय प्रशासनिक सेवाओं का एक महत्त्वपूर्ण अधिकारी होता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) का अधिकारी अखिल भारतीय प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा चयनित होता है।

महामारी के समय सिविल सर्जन एवं स्वास्थ्य विभाग किस प्रकार लोगों की सहायता करते हैं?

ज़िला अधिकारी का मुख्य कार्य है ज़िले में कानून व्यवस्था बनाए रखना। इस कार्य में पुलिस अधीक्षक, जो ज़िले में पुलिस विभाग का मुखिया होता है, उसकी सहायता करता है। राज्य के नाम पर राजस्व एकत्रित करने के लिए ज़िला अधिकारी सामान्य रूप से उत्तरदायी होता है। भूमि संबंधी ब्यौरों को रखना भी उसका उत्तरदायित्व है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि उन्हें आजकल कंप्यूटरीकृत किया जा रहा है। इन वर्षों में उनका मुख्य कार्य विकास की गतिविधियों को बढ़ावा देना है। ज़िले के लोगों के विकास के लिए शिक्षा एवं स्वास्थ्य विभाग महत्त्वपूर्ण हैं। वह ज़िले में विभिन्न विभागों के कार्यकलापों में तालमेल बनाए रखता है। ज़िला प्रशासन के पास बहुत बड़ी संख्या में अधिकारी होते हैं जो ज़िला और गाँव अथवा नगर स्तर पर कार्य करते हैं।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए

(1) शहरी क्षेत्रों के लिए कौन सी तीन स्थानीय संस्थाएँ हैं?
(2) नगर पंचायत का मुखिया कौन होता है?
(3) नगर पालिकाओं को राज्य सरकार अनुदान क्यों देती है?
(4) बड़े शहरों में पार्क और भूमिगत नालियाँ क्यों आवश्यक हैं?

2. सही जोड़े बनाइए

(1)	अध्यक्ष	**(क)**	पंचायत समिति
(2)	विकास अधिकारी	**(ख)**	नगर निगम
(3)	महापौर	**(ग)**	ग्राम पंचायत
(4)	प्रधान	**(घ)**	ज़िला परिषद्

3. निम्नलिखित में से कौन सा नगरीय स्थानीय स्वशासन सरकार से जुड़ा है

(1) ब्लाक समिति
(2) नगर पंचायत
(3) न्याय पंचायत
(4) ज़िला परिषद्

करने के लिए कार्य

अपने निकट की किसी गंदी बस्ती/झुग्गी-झोपड़ी में जाकर पता लगाएँ कि वहाँ की निम्न व्यवस्था कैसी है –

- जल आपूर्ति संबंधी
- विद्युत प्रकाश संबंधी
- झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले लोगों की संख्या संबंधी
- परिवारों द्वारा अपनाया गया व्यवसाय

ज्ञात कीजिए कि किसी व्यक्ति को निम्नलिखित परिस्थितियों में किस सार्वजनिक विभाग में जाना पड़ेगा –

- एक शिक्षक के तबादले हेतु
- बीमारी प्रमाण-पत्र प्राप्त करने हेतु
- अपनी साइकिल की चोरी की रिपोर्ट लिखाने हेतु
- पोस्ट कार्डों और डाक टिकटों को खरीदने हेतु
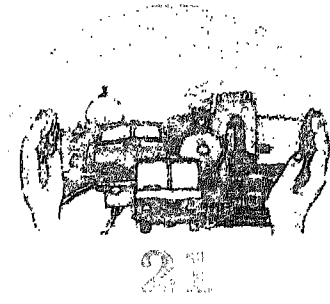
सार्वजनिक संपत्ति की देख-रेख

हम विद्यार्थियों को कलम, पेंसिल, पुस्तक अथवा कापी की आवश्यकता होती है। एक बार खरीदने पर यह हमारी हो जाती हैं और हम इनके स्वामी बन जाते हैं। ये वस्तुएँ हमारी निजी संपत्ति हैं। हम इनके रख-रखाव का ध्यान रखते हैं। हमें यह भी देखना होता है कि अन्य लोग इनका दुरुपयोग तो नहीं करते। हमें इन्हें चोरी से बचाने के लिए सतर्क रहना पड़ता है।

निजी संपत्ति

कभी-कभी हम भूमि अथवा घर अथवा अन्य बड़ी चीज़ अपना धन खर्च करके खरीदते हैं। यह झोपड़ी या मकान हो सकती है जिसमें हम रहते हैं। यह भूमि खेती के लिए भी हो सकती है। यह एक ट्रैक्टर या कार भी हो सकती है। यह साइकिल अथवा मोटर-साइकिल भी हो सकती है। इनमें कुछ उपयोगी पशु अथवा पालतू जानवर आदि भी हो सकते हैं। ये सब हमारी निजी संपत्ति हैं। इनकी उपयोगिता एवं मूल्य अधिक होने के कारण हम इन पर अधिक ध्यान देते हैं। हम इनकी
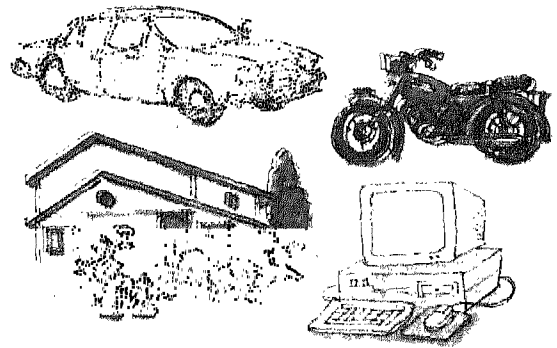
व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक संपत्ति

उचित सुरक्षा तथा उपयोग को भी सुनिश्चित करते हैं।

सार्वजनिक संपत्ति

प्रायः हम बड़ी तथा मूल्यवान वस्तुओं के संसर्ग में आते हैं। ये वस्तुएँ किसी व्यक्ति विशेष या परिवार की निजी संपत्ति नहीं होतीं। ऐसी वस्तुओं का उपयोग सामान्य रूप में बहुत से लोग करते हैं। आप अपने विद्यालय का ही उदाहरण लीजिए। पता कीजिए कि आपके विद्यालय का स्वामी

कौन है। नगरों में नगर पालिकाएँ बहुत बड़ी संख्या में विद्यालयों का संचालन करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में सामान्य रूप से ज़िला परिषदें विद्यालयों को स्थापित तथा उनका संचालन करती हैं। बहुत से राज्यों तथा संघ शासित क्षेत्रों में भी वे अनेक विद्यालयों की स्थापना तथा संचालन करते हैं। केंद्रीय विद्यालयों तथा नवोदय विद्यालयों की स्थापना तथा संचालन केंद्रीय सरकार करती है। हम देखते हैं कि इन विद्यालयों में हज़ारों की संख्या में विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। ऐसे सभी विद्यालय सार्वजनिक संपत्ति के अंग हैं क्योंकि अंततः ये जनता अर्थात जन साधारण से जुड़े हुए हैं। इनका उपयोग हज़ारों अथवा लाखों लोगों द्वारा किया जाता है, इसलिए इन्हें सार्वजनिक सुविधाएँ कहना ही ठीक है।

भारतीय रेलों द्वारा चलाई जाने वाली माल गाड़ियाँ तथा सवारी गाड़ियाँ भी सार्वजनिक संपत्ति

भारत सरकार के उस विभाग के नाम का पता कीजिए जो शीघ्रता से आपके पत्र तथा आवश्यक संदेश देश के किसी भी भाग में बहुत कम मूल्य पर पहुँचाता है।

(अ) पोस्ट-कार्ड (ब) अंतर्देशीय पत्र तथा (स) लिफ़ाफ़े के मूल्य का पता कीजिए। क्या दूसरे देशों में उन्हें भेजने के लिए कोई अतिरिक्त शुल्क लगता है ?

ऐसी सार्वजनिक सुविधा की अनुपस्थिति हमें किस प्रकार प्रभावित करेगी?

के उदाहरण हैं। प्रतिदिन हज़ारों रेल गाड़ियाँ लाखों यात्रियों को देश के एक भाग से दूसरे भाग तक लेकर जाती हैं। वे हज़ारों टन सामान भी देश के एक भाग से दूसरे भाग तक पहुँचाती हैं।

सार्वजनिक संपत्ति

सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा

हम अपने विद्यालयों में प्रतिदिन कई घंटे व्यतीत करते हैं। हम स्वयं सुनिश्चित करते हैं कि हमारे बैठने के डेस्क और टाटपट्टी साफ़-सुथरे और ठीक प्रकार से रखे हुए हों। हम कागज़ के फटे हुए टुकड़ों को विद्यालय के प्रांगण में न फेंक कर कूड़े-दान में फेंकते हैं जो इसी कार्य के लिए रखे गए हैं। हम अपने विद्यालय की फुलवाड़ी से फूल नहीं तोड़ते हैं क्योंकि हम चाहते हैं कि सभी इनकी सुंदरता का आनंद उठाएँ। हम विद्यालय के फर्नीचर की
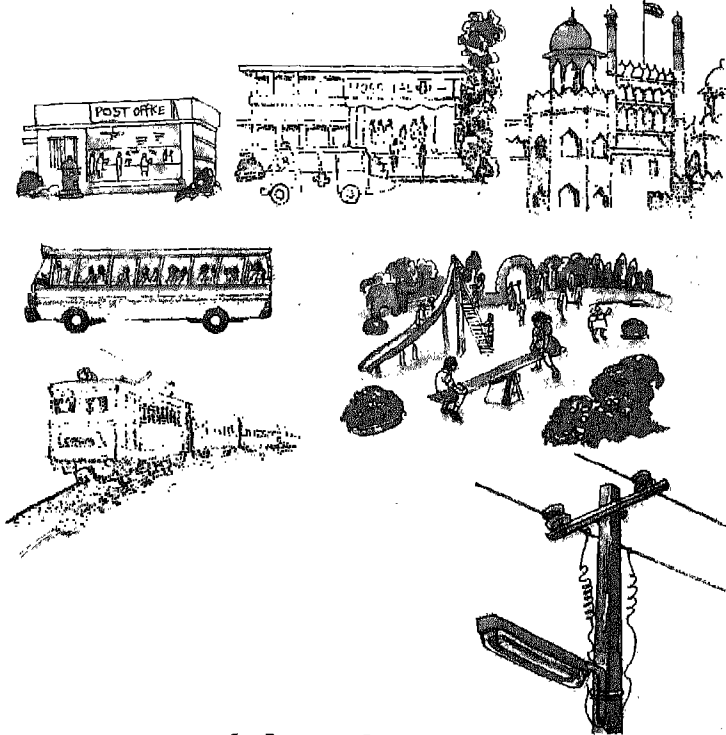
देख-भाल करते हैं। खेल के मैदान तथा खेल के सामान के रख-रखाव में हम विद्यालय के अधिकारियों की सहायता करते हैं। हम केवल अपनी पुस्तकों की ही नहीं अपितु विद्यालय, पुस्तकालय की पुस्तकों की भी देख-भाल करते हैं।

सार्वजनिक सुविधाओं जैसे बसों या रेलगाड़ियों का उपयोग करते समय हमें अधिक सतर्क रहना चाहिए। प्राप्त हर एक सार्वजनिक सुविधा के लिए हमें धन देना पड़ता है। ऐसा करने पर ही उनकी उचित देख-भाल हो सकती है और वे लंबे समय तक चल सकती हैं। रेल में यात्रा आरंभ करने से पूर्व हम रेल का टिकट खरीदते हैं। नगरीय बसों में चढ़ने के पश्चात हम टिकट लेते हैं। हम अपने मासिक पास की अवधि समाप्त होने से पूर्व उसका नवीनीकरण करा लेते हैं। अब आप जान गए हैं कि इन सभी सुविधाओं के लिए हम टिकट के रूप में धन देते हैं। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि बसों की सीटों पर या शीशों आदि पर कुछ न लिखें। इन बसों एवं रेल सुविधाओं का उपयोग करने वालों को उन पर लिखे नियमों का अनुसरण करना चाहिए।
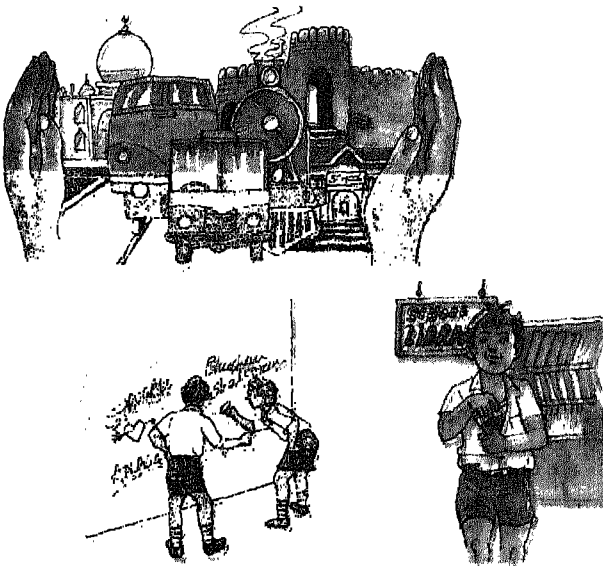
संपत्ति की सुरक्षा

प्रदर्शन के समय कुछ लोग अपना रोष प्रकट करने की सीमाओं को पार कर जाते हैं। लोकतांत्रिक देश के नागरिक होने के कारण हमारा विरोध शांतिपूर्वक ढंग से होना चाहिए। सार्वजनिक बसों को जलाने, विद्युत के खंभों एवं डाकघरों को क्षति पहुँचाने से हमारे घाटे में वृद्धि होती है। सार्वजनिक संपत्ति के क्षतिग्रस्त अथवा नष्ट होने से बहुत अधिक असुविधा तथा वित्तीय हानि होती है। इन संपत्तियों का रख-रखाव उन करों के द्वारा होता है जो हम स्थानीय, राज्य तथा केंद्रीय सरकारों को देते हैं।

अपनी धरोहर की रक्षा

हमारा देश राष्ट्रीय स्मारकों से भरपूर है। हमें उन्हें बनाए रखना चाहिए। वास्तव में यह एक बहुत कठिन कार्य है। इन स्मारकों को सुरक्षित रखने हेतु केंद्र सरकार ने पुरातत्व विभाग की स्थापना की है जो समय-समय पर इन स्मारकों की मरम्मत का कार्य वैज्ञानिक ढंग से करता है। अभी कुछ दिन पूर्व ही हमने एक राष्ट्रीय स्मारक को कई टुकड़ों में करके दूसरे स्थान पर सफलतापूर्वक स्थापित कर दिया है। प्रत्येक भाग पर उसकी क्रम संख्या लिखकर ऐसा किया गया। वे सभी टुकड़े सावधानीपूर्वक नए स्थान पर ले जाए गए। इस कार्य के संपन्न होने में कई महीने लग गए। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि मौलिक स्मारक अपने मूल स्थान से यदि हटाया न गया होता तो आंध्र प्रदेश के नागार्जुन सागर बाँध में डूब जाता। अब यह नए स्थान पर स्थापित है जो पहले स्थान से बहुत ऊँचा है।

ऐतिहासिक स्मारक

अजंता की गुफ़ाओं पर बने चित्रों के रंगों को धूमिल होने से बचाने के लिए भी वैज्ञानिक तरीकों का उपयोग किया जा रहा है। बहुत से लोग इन राष्ट्रीय स्मारकों पर अपने नाम अंकित कर देते हैं। ऐसा करके वे उन्हें नष्ट करते हैं तथा साथ ही उनका जीवन काल भी कम कर देते हैं।

ये प्राचीन स्मारक हमारी धरोहर हैं। धरोहर के रक्षक के रूप में हमारा कर्तव्य है कि हम भावी पीढ़ी के लिए उन्हें बचा कर रखने की उत्तम व्यवस्था करें। ये स्मारक हमारी प्राचीन प्रतिष्ठा के प्रतीक एवं सांस्कृतिक सभ्यता के राजदूतों जैसे हैं।

बड़े आकार वाला भारत का राजनीतिक रेखा मानचित्र लीजिए। कुछ राष्ट्रीय स्मारकों के चित्र एकत्र कीजिए। मानचित्र पर उस स्मारक का स्थान खोज कर उसकी स्थिति का चिह्न बनाइए। उन चिह्नों के सामने उन स्मारकों के चित्र चिपकाइए।
प्रत्येक चित्र के सामने एक या दो पंक्तियों में कुछ रोचक तथ्य लिखिए।

अभ्यास

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए

(1) निजी संपत्ति की सस्ती तथा महँगी वस्तुओं के दो-दो उदाहरण दीजिए।

(2) कौन सी तीन विधियों द्वारा हम निजी संपत्ति का ध्यान रखते हैं?

(3) सार्वजनिक सुविधा क्या है? तीन उपयुक्त उदाहरण दीजिए।

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति सही शब्द चुनकर कीजिए

(1) नवोदय विद्यालय .... सरकार की संपत्ति हैं।
(ज़िला परिषद्/ राज्य/ केंद्रीय)

(2) भारतीय रेल ....संपत्ति का सुंदर उदाहरण है।
(निजी/ सार्वजनिक)

(3) नागार्जुन सागर बाँध के निकट का स्मारक ....राज्य में है।
(आंध्र प्रदेश/ महाराष्ट्र/ तमिलनाडु)

करने के लिए कार्य

- अपने शहर में किसी निजी संदेश वाहक संस्था का पता ज्ञात कीजिए। वह एक बंद पत्र को एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजने के कितने पैसे लेती है?
- पता कीजिए कि शहर में अग्निशमन सेवा किस प्रकार निजी तथा सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा करती है।
- ज्ञात कीजिए कि बाढ़ आदि जैसी प्राकृतिक विपदा के आने पर आपकी स्थानीय/राज्य/केंद्रीय सरकारों ने लोगों की जान और माल की सहायता कैसे की।

शब्दावली

अन्य पिछड़ा वर्ग	अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के अतिरिक्त भारत में अनेक ऐसे वर्ग हैं, जो आर्थिक एवं सामाजिक रूप में पिछड़े हैं, इन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग कहते हैं। इनके उत्थान के लिए अनेक प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था की गई है।
अनुसूचित जनजाति	ऐसी जनजातियाँ जिनकी अनुसूची बनी है और जिन्हें विकास के लिए विशेष सुविधाएँ दी जाती हैं।
अनुसूचित जाति	भारतीय समाज की ऐसी जातियाँ, जो सामाजिक दृष्टि से पिछड़ी और आर्थिक रूप से कमज़ोर हैं। ये समाज के अन्य वर्गों के समकक्ष आ पाएँ, इस उद्देश्य से भारतीय संविधान में इनके लिए अनेक सुविधाओं का प्रावधान है। ऐसी जातियों की अनुसूची भारत के राष्ट्रपति के आदेश से तैयार की जाती है।
अभिलेख	शिला, चिकनी मिट्टी या धातु पर अंकित दस्तावेज़।
अवतार	धर्म की रक्षा हेतु विभिन्न कालों में किसी देवी या देवता का विभिन्न रूपों में आगमन।
अक्षांश	विषुवत वृत्त के उत्तर या दक्षिण दिशाओं में मापी गई कोणीय दूरी। ऐसी कोणीय दूरी से खींची गई काल्पनिक रेखाओं को अक्षांश रेखाएँ कहते हैं।
आकाशीय पिंड	आकाश से संबंधित। आकाश में दिखाई देने वाले पिंडों जैसे तारे, ग्रह,
(खगोलीय पिंड)	उपग्रह, धूमकेतु और ऐसे अन्य सभी पिंडों को आकाशीय पिंड कहते हैं।
आभासी संचलन है, **(सूर्य का)**	पृथ्वी के घूर्णन के कारण आकाश में सूर्य चलता हुआ प्रतीत होता जिसे आभासी संचलन कहते हैं।
आमात्य	मंत्री।
आहत सिक्के	चाँदी और ताँबे के बने भारत के प्रारंभिक सिक्के।
गणराज्य	एक प्रकार की सरकार जिसका प्रमुख प्रजा द्वारा चयनित होता है।
गोला	गोल या गेंद के आकार की तरह जैसा कि ग्लोब होता है।

घूर्णन	अपनी धुरी पर घूमने की क्रिया। यह आकाशीय पिंडों से संबंधित है।
चैत्य	बौद्ध मंदिर।
जनपद	पूर्ण रूप से सीमांकित क्षेत्र का राज्य।
जातक	बुद्ध के पूर्व जन्म से संबंधित कथाएँ।
ज्योतिष शास्त्र	आकाशीय पिंडों, उनकी बनावट, परिमाण और गति का अध्ययन करने वाला विज्ञान।
टैक्स (कर)	सरकार को देश के कार्यों के संचालन के लिए मुद्रा की ज़रूरत होती है। यह मुद्रा देश के नागरिकों से टैक्स के रूप में वसूल की जाती है।
तारामंडल	तारों का संरूपण। तारों का समूह जो कोई रूप या पैटर्न बनाता हो।
देशांतर	प्रधान मध्याह्न रेखा से पूर्व या पश्चिम दिशाओं में मापी गई कोणीय दूरी। ऐसी कोणीय दूरी से खींची गई रेखा को देशांतर रेखा कहते हैं।
नगर दुर्ग	ऊँचे धरातल पर बना गढ़ जो नगर की रक्षा के लिए बनाया जाता है।
नव पाषाण	एक सांस्कृतिक अवस्था जो पशु-पालन तथा कृषि के आरंभ से संबंधित है।
नागरिक सेवाएँ	नगर पालिकाओं, नगर पंचायतों तथा पंचायतों जैसे स्थानीय निकायों द्वारा स्थानीय नागरिकों के लिए स्वास्थ्य, साफ़-सफ़ाई, शिक्षा, जल-आपूर्ति आदि की व्यवस्था।
निर्वाण	मोक्ष की प्राप्ति।
पेपीरस	मिस्र में एक वृक्ष का नाम जिसके पत्तों तथा छाल का उपयोग लिखने के लिए किया जाता था।
परिक्रमा	आकाशीय पिंड की अपनी कक्षा में गति करने की क्रिया।
परिक्रमा पथ	आकाशीय पिंड के मार्ग।
पुर	किला बंद नगर या शहर।
पुरातत्व विज्ञान	बची हुई वस्तुओं के वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा पुरानी संस्कृति, लोगों तथा इतिहास के कालखंड का अध्ययन।

ब्रह्मांड	आकाश में अवलोकित विभिन्न पिंडों अथवा घटनाओं का समूह।
मतदाता	ऐसे नागरिक जो एक निश्चित आयु के हों उन्हें मत देने का अधिकार प्राप्त होता है। भारत में यह अधिकार 18 वर्ष से अधिक आयु के प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है।
मंत्रि-परिषद्	मंत्रियों की समिति।
मुद्रा	प्रमाणीकरण एवं सुरक्षा हेतु कार्यालयी या व्यक्तिगत उपयोग की मुहर।
मध्य पाषाण	पाषाण काल जिसमें पत्थरों के छोटे-छोटे औज़ारों का उपयोग होता था।
माघ मेला	माघ (जनवरी-फ़रवरी) के महीने में वार्षिक स्नान से संबंधित त्योहार।
महाकाव्य	महान चरित्रों के जीवन से संबंधित विस्तृत काव्य रचना।
महापाषाण	कब्र स्थल जिसमें बड़ी-बड़ी शिलाओं का उपयोग किया गया हो।
मेयर	नगरपालिका का अध्यक्ष जो निर्वाचित प्रतिनिधियों के द्वारा निर्वाचित किया जाता है।
यवन	ग्रीस तथा रोम के वासियों को प्राचीन भारत में यवन कहा जाता था।
राजतंत्र	एक प्रकार की सरकार जिसका मुखिया राजा होता है।
राजाज्ञा	किसी राजा द्वारा जारी आदेश-पत्र ।
वर्ण	कर्म (पेशा) के आधार पर समाज का वर्गीकरण।
वीरक्कल	कब्र स्थल पर खड़े किए गए शिला-स्मारक।
विहार	मठ जहाँ बौद्ध भिक्षु रहा करते थे।
शहर	एक ऐसा स्थान जहाँ बहुत से लोग रहते हों। उनमें से अधिकांश लोग अपना जीवन-निर्वाह गैर-कृषि कार्यों से करते हों। शहर (*सिटी*) शब्द की उत्पत्ति रोमन शब्द *सिविटाज़* से हुई है।
शुल्क	सामान्य टैक्स।
श्रेणी	शिल्पकारों तथा व्यापारियों का संघ।

स्तूप टीले के रूप में बना मिट्टी का स्मारक।

संगठन पुरुषों एवं महिलाओं द्वारा एक साथ मिलकर सामान्य उद्देश्य से कार्य करने की व्यवस्था।

संघ बौद्ध भिक्षुओं का संगठन।

संविधान किसी देश की शासन प्रणाली को चलाने हेतु मौलिक नियम या सिद्धांत।

सभा वयस्कों की बैठक।

समिति विशिष्ट व्यक्तियों की सभा।

समाज मित्रतापूर्ण तथा प्रेमभाव से रहने वाले लोगों का एक समूह। समूह बड़ा या छोटा हो सकता है।

सहकारिता किसी भी प्रकार का सहयोग जिसमें विभिन्न वर्ग आपस में मिलकर कार्य करते हों या किसी साझा उद्देश्य के लिए संगठित रूप में एक दूसरे के साथ मिलकर काम करते हों।

सेनापति सेना का नायक।

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51क

मूल कर्तव्य - भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके।

correlation should be much higher in the case of college graduates than for the great majority, since the former have had a superior opportunity to choose their careers (134 334)

The evidence of validity for the men's test may be summarized as follows (the women's test has not been studied, since it was issued only in the summer of 1935)·

1. Extent to which the test differentiates engineers from non-engineers (Similar tables could be given with respect to other occupations besides that of engineering if space permitted) On the average only 15 per cent of 933 non-engineers rate A in engineering interest in contrast with 75 per cent of engineers who rate A But the non-engineers who rate A in engineering are not evenly distributed among all occupations, they are largely found among occupations involving applications of the physical, and to a lesser degree the biological, sciences . .

2. [Extent to which the test] differentiates younger college men in such a way as to harmonize very well with their vocational choices

Of 286 college Seniors at Stanford (1926–27)

8% rate "Yes"—You have the interests of a lawyer.

35% rate "Not Sure"—Maybe you have the interests of a lawyer

57% rate "No"—You do not have the interests of a lawyer

Of 34 Seniors majoring in Law (included in the 286).

24% rate "Yes"—100% of these intend to enter law

62% rate "Not Sure"—69% of these intend to enter law—21% are undecided

15% rate "No"—0% of these intend to enter law—40% are undecided.

Of 252 Seniors not majoring in Law (included in the 286)

6% rate "Yes"—10% of these intend to enter law—37% are undecided

31% rate "Not Sure"—5% of these intend to enter law—33% are undecided

63% rate "No"—1% of these intend to enter law—34% are undecided

These results are about what one would expect About one-third of these seniors have not yet decided upon a career and many who have will change their plans in the future Conse-

quently we would view a guidance test with suspicion if it gave results that correlated too highly with what seniors are planning to do. The only way to determine the accuracy of the test is to follow these men for five and probably ten years and compare their careers with the present scores

3. A follow-up of these Stanford students over a two-year period makes possible a third expression of validity of this test In March 1927, . the seniors filled out the interest blank and expressed their vocational program Again in January 1929 they stated their vocational plans During this interval fully 96 per cent remained in ignorance of their interest test scores, so that these cannot have influenced the following results Utilizing all the blanks of students, who are sure of their choices and who are entering one of the 18 occupations for which the blanks have been scored, we find that 63 per cent were sure in March 1927 that they were going into that occupation on which they scored highest or second highest on the test. In January 1929 this percentage had risen to 67. This difference of 4 per cent is not statistically significant It indicates, however, that interests of young men between 20 and 25 years of age continue to be significant indicators of their future actions for at least two years According to chance 50 per cent of these men should be entering occupations on which they scored 10th to 18th among 18 occupations As an actual fact only 4 per cent were so headed in March 1927 and but 2 per cent in January 1929 (128 11–12).

Finch reports an extremely high index of permanence (using the rank-difference correlation for twenty occupational keys on Strong's test) between two measurements of interests of junior high-school students The time interval varied from three weeks to thirty-eight months (48)

If the vocational interests of young boys do change, it may well be that these changes are more in the nature of growth or intensification of interests than chaotic reversals Changes of interests with age may be vertical rather than, or in addition to, horizontal. Strong's study of such changes in interest maturity (132) has been criticized as resulting rather in a composite measure of age and occupational level of the individuals involved (10 19–23) Another study

by Strong suggests the vertical rather than the horizontal change of interests from one occupation to another for young boys (127)

A retest of Stanford seniors after five years reveals a permanence of interests of .84, corrected for attenuation (133)

Further evidence of the validity of this test based upon a study of the same college seniors studied five years after graduation is contained in the following summary statements from Strong's report:

4 Men continuing in an occupation obtain a higher score in it on the interest test than in any other occupation

5 Men continuing in an occupation obtain a higher score in it than men entering some other occupation

6 Men continuing in an occupation obtain higher scores in it than men who change from that occupation to some other

7. Men changing from some other occupation to occupation X five years later score higher while seniors in X or one other occupation than they did in eighteen other occupations

8 Men successfully employed in an occupation are differentiated from other occupational groups by the vocational interest test Young men who obtain interest scores indicative of membership in an occupational group are more likely to enter the occupation than any other (131 349)

PERSONALITY TESTS

In addition to these two major kinds of tests, aptitude and achievement tests, there are many other measuring instruments designed to cover the more intangible aspects of the individual's make-up. In this category are found the interest inventories, personality tests and rating scales, attitude scales, and similar instruments. Many tests in this group are set up in such a way that the individual's achievement on them is represented by a numerical score or letter grade or some similar objective measure The mistake most frequently made is the assumption that, because results of tests of this sort are expressed in quantitative terms, the test itself is objective and linear in

measurement The mere quantification of performance should not be mistaken for objectivity of measurement Unfortunately, most of us much prefer to use these quantitative measurements of fluctuating characteristics as final judgments Probably no greater mistake can be made than this

The problem of validating personality tests still presents one of the most serious obstacles to the development of this type of test (140) The social preference test referred to in the section on differential group norms was validated by the following methods:

1 Test differentiation of socially well-adjusted and poorly adjusted groups of students

2 Test differentiation of members of social and/or professional fraternities from unaffiliated students

3 Similar differentiation of women students members of sororities from unaffiliated women students

4 Test differentiation of groups of students by various criteria of social and economic status

5 The relationship between test scores and amount and type of participation in social and extracurricular activities

6 Test differentiation of students classified by extent to which certain types of social activities were enjoyed or disliked (172)

Symonds (137) has summarized the research evidence supporting personality tests in use prior to 1931 While this evidence is impressive from the standpoint of reliability, possibly validity, and other criteria applied as tests of scientific accuracy, yet we venture the opinion that so little counseling and clinical use has been made of tests of attitudes, adjustments, emotions, conduct, and ethical discrimination as to warrant the recommendation that such tests should be used cautiously and critically, if at all, as counseling tools

One counseling use of such tests appears to be useful, namely, as *aids to the interviewer* To have a student fill out the Bernreuter Personality Inventory (102. 32–41), Bell Adjustment Inventory (6), the Rundquist-Sletto Scale for the Survey of Opinions (116), the Minnesota Survey

of Student Social Preference and Student Social Reactions (169, 170), *prior* to the interview and then be asked why he answered such and such a question as he did, may be a satisfactory way of establishing rapport, to persuade the student to talk to the point of his real emotional problem, or even to discontinue his evasion of discussing his problem If, however, the student is sophisticated and wary in filling out the test when the counselor is not present, then the test results will have less value for these purposes It may be argued that a counselor well trained in mental hygiene has but little need for such crutches; the answer is that few personnel workers are skilled in this work But it may well be that in such hands personality tests are subject to such rigid and naive interpretations that most counselors would do well to concentrate on securing professional training in interviewing skill

A simple procedure in this difficult problem of locating attitudes and emotional disturbances which may interfere with a student's educational and vocational adjustment is to include in the case history form to be filled out by students *prior* to the counselor's interview a list of adjectives descriptive of personality characteristics and a list of symptoms descriptive of worries and conflicts. The following is an example of such a list

Underline any of the following words which describe your general make-up

persevering, friendly, patient, stubborn, capable, tolerant, calm, impetuous, pessimistic, reserved, bashful, self-confident, jealous, talented, quick-tempered, cynical, tactful, conscientious, cheerful, submissive, excited, irritable, anxious, depressed, nervous, easily exhausted, unhappy

---

Underline any of the following words which characterize you

nervousness, sleeplessness, easily exhausted, headaches, fainting spells, fits or convulsions, dizziness, backache, tingling in hands or feet, stammering or other speech difficulty, frequent periods of gloom or depression, poor health

---

Have you any physical disabilities? (describe)________________

Comments or remarks:

COUNSELING USES OF TESTS

Assuming that the counselor has been able to select types of tests that he deems sufficient for his purposes, what use does he make of these instruments in guidance? In the first place, he is concerned to some extent with the selection of students, particularly on the college level Even if he is powerless to improve the selection of students, he is concerned with the assignment of certain students to specialized curricula In the second place, tests permit him to make a diagnosis of problem cases in an effort to isolate the difficulties of a particular student. In the third place, tests permit of some prognosis or prediction of general accomplishment, and, in the fourth place, growing naturally out of this prediction will be some differential prediction for generalized fields of endeavor And, finally, tests can be used at the other end of the process in measuring the results of the counseling that has been given Under these five heads are included nearly all the uses to which the tests can be put in practical counseling

Most testing, as it is done at the present time, is of that general group of studies that can best be labeled "cross-section studies" That is, large groups of individuals are tested once, and the test scores are used for a certain purpose and then forgotten This type of testing may have its uses, but not in guidance. One thermometer reading taken throughout the individual's lifetime would certainly be an inadequate measurement of the state of his body temperature It cannot be too strongly emphasized that the best use of tests may result from longitudinal studies whereby the individual is tested periodically throughout a given period of training, and wherein the results of this periodic testing are recorded in cumulative form to indicate the development of the individual. Tests are admittedly not perfect, and probably never will be perfect, but the limitation of their use to cross-section, snapshot studies places responsibility beyond all bounds of reason upon the measuring instrument The use of tests, however, in

longitudinal studies designed to make an objective evaluation of the individual's development may bring them to their highest place in any well-rounded educational program Wagner and Mills (158) describe a method of using achievement tests for the purpose of placement in college courses and advancing those high-school students, who, without equal and uniform exposure to classroom instruction, have already excelled college students. Such a guidance use of achievement tests, proposed for many years by the Committee on Educational Testing of the American Council on Education, the Educational Records Bureau, and the Progressive Educational Association, should do much to articulate secondary and higher education with advantage to both the institution and the student.

This emphasis on the longitudinal type of study wherein tests are used for periodic checkup has some relation to the problem of validity It should be obvious, first, that the best method of predicting achievement is by sampling that achievement rather than by giving a general aptitude test and then relating that to measured achievement In the second place, it should be equally obvious that the more comparable two measures of the same thing are, the higher will be the reliability of the measurement of the trait under consideration Thus it would seem that periodic achievement testing would yield two results: first, it will be a valuable measure of individual change or growth, and, second, it will furnish research data for establishing a predictive testing program based on samples of behavior later actually to be employed in the academic situation This means that counselors should consider very seriously the substitution of achievement tests for the present entrance tests, usually of the intelligence type, now being used in guidance programs for purposes of selection.

We have already mentioned briefly some of the uses to which tests may be put in the counseling program, but it may be well to elaborate further on these points so that the strengths and weaknesses of the tests may be more

apparent In the first place, since the reliability, validity, and standards for any measuring instrument must be worked out on the local group, it should be obvious that practical use of tests should grow out of local research While this may tend to postpone the development of a testing program in conjunction with guidance, the results gained and the accuracy and stability of measurements will well repay the delay in setting up a program No matter what type of measuring instrument is used, the counselor must know how his own group performs on it The second caution in the use of tests in general is the necessity of having an adequate clinical testing setup For purposes of selection or admission to an academic institution most tests will be given under group testing conditions, but, at the same time, provision must be made for individual testing covering a wider range of the behavior of the individual This is only possible if a trained clinical tester administers these tests under carefully controlled conditions Diagnostic testing is a highly technical procedure, and the mere ability to hold a stop watch does not make a clinical tester

In earlier parts of this discussion we have talked about the distinction between research and empiric knowledge Empiric knowledge was defined as that large fund of information which the counselor possesses but which he has not yet reduced to quantitative and communicable terms It should be apparent that if tests are used in the counseling program they represent a beginning of the quantification of the counselor's empiric knowledge They offer the possibility of checking the accuracy and reliability for this knowledge and of establishing it on a communicable basis For example, the counselor has empiric knowledge that mathematics is one of the requisites for engineering Careful use of measuring instruments will allow the counselor to substitute for his empiric knowledge a critical area in the field of mathematics below which it is extremely doubtful that a candidate for engineering will succeed We use the phrase, critical area, rather than critical score, as indica-

tive of that point below which success in a given field is not probable because the variability of human behavior makes it highly improbable that inflexible critical scores can ever be set on any measuring instrument in academic work The establishment of areas which allow for this variability will surely prove to be a much more judicious attack on problems of selection

In individual programs carried on by the clinical tester, tests of all sorts and descriptions may be used in diagnosis of individual problems Th[illegible] problems [illegible] problems of strengths or weakn[illegible] [illegible] their isolation depends upon careful measurement In this work of diagnosis, achievement tests, aptitude tests, interest tests, attitude scales, special aptitude tests, and every conceivable type of measurement should be drawn upon in getting a well-rounded picture of the individual's capacities and background On the basis of such a diagnosis, it will be possible for the counselor to use the test results in differential prediction or guidance of the individual At the end of the testing program all test scores should be brought together in comparable scoring units on a profile chart or psychograph, which is designed to show in graphic form the strong and weak points of the individual under consideration This form of psychograph, because of its apparent simplicity and ease of interpretation, has thrown many otherwise excellent counselors off the main line of attack The mere representation of quantitative scores on the various tests is no cure-all Here again we would return to the analogy with medical practice to emphasize that these scores are no more than thermometer readings, and the skill of the counselor will in large part be determined by his ability to tease out the underlying causes and significance of a given score or set of scores on the profile chart Assuming, however, that the counselor is not led astray by the mere array of numbers on the psychograph, he has before him a fair picture of various segments of behavior of the individual with whom he is working It

should be noted that this picture is represented in the psychograph as static. But even with this static picture the counselor can, within certain, defined, broad fields, help the student in seeing the various alternatives that are before him. The supplementary use of test results which naturally follows is to be found in problems of motivation Where students show unusually high general ability but actually poor performance in academic work, the judicious interpretation of test scores will often have a motivating effect on the individual's work

In most cases, after the tests have been brought together for the vocational or counseling interview, they are conveniently filed and forgotten, thus perpetuating most of the errors of counseling procedures The vocational counselor must, of course, be numbered among those who find advice the easiest thing in the world to give, but it requires a good deal more courage to check up on the adequacy of this advice. Here again, tests may serve as an objective means of evaluating guidance to the extent that comparable achievement tests, for example, will permit of subsequent measurement indicating change or growth in the subject-matter fields This evaluation is naturally relatively limited, but it is indispensable if the counselor wishes to see actual evidence of success or failure For example, if a student shows unusually antisocial attitudes on a standardized attitude scale of some sort, and if, after intensive case work, the counselor finds on repeating this attitude scale that the attitudes have changed to a more favorable type, he can be fairly sure that something has intervened in the student's life to bring about this change This, of course, is not experimental evidence of the success of counseling, but it indicates that the individual has acquired more socially acceptable attitudes, and that, after all, is the main problem the counselor has with this case

Most tests are usually printed without a long list of cautions for their use It would be wiser if these cautions were given, no doubt, but it is surprising how quickly the

weaknesses of tests appear when they are incorporated in a counseling program. Probably the first and most important caution of all, in testing, is the simple statement, "When in doubt, retest." In fact, it might be elaborated to, "Retest always, to be especially cautious." If an individual's score is in any way out of line, or at all questionable, the test must be administered to him again, or the test score must be checked against his performance on comparable tests. For example, the score on one intelligence test can very well be checked by scores on other tests of the same type. The more measures on the same individual, the greater will be the accuracy of the diagnosis. The second caution is to make sure that test conditions are optimal and that the individual is not working under any temporary mental or physical handicap at the time of being tested. While evidence can be assembled to show that, in general, physical and mental condition have relatively slight influence on the results of a group test, at least the counselor will forestall alibis on the basis of mental or physical condition if he makes sure that this factor is carefully controlled in the test situation.

In the extensive use of tests of various sorts, there will be obvious discrepancies between test results and the results of teaching or grading systems. An individual may show a surprisingly high degree of accomplishment on a standardized achievement test, and this accomplishment will not at all check with the actual records handed down by the teacher or professor. The test scores have, on their side of the argument, accuracy and reliability of measurement, and grading systems have behind them the tremendous weight of tradition. It is wise to remember that the grading system cannot be changed overnight, but at the same time one may certainly pile up a tremendous amount of evidence against it, as far as individualized education is concerned. The following quotation from Eurich and Carroll's new text on educational psychology has much relevancy regarding this point.

In view of the fact that these uses have been recognized for a period of years, it is surprising indeed that educational practice has lagged so far behind. Few school systems today have a systematic and well-organized examination system to diagnose thoroughly the work of individual pupils. Adequate records are also lacking. Usually the measurement program is very haphazard and depends primarily upon the whims of each teacher or principal. It is time to recognize, as the Committee on Educational Tests and Their Uses of the American Educational Research Association has so aptly expressed it, that "the highest purpose and ultimate aim of the objective testing movement is to help inaugurate a continuous study of individuals throughout the whole educational ladder by means of systematically recorded, comparable measures and observation which will make such spasmodic examinations largely unnecessary."

When every teacher begins to realize his responsibilities in this regard, the significance of the testing movement will for the first time be fully realized. Until then the schools will struggle along trying to adapt the courses of study to the pupils without knowing the pupils to the extent to which it is possible. Teachers' guesses concerning the achievement level of each pupil in regard to the various outcomes of instruction or the use of poor examinations will not yield satisfactory measures of accomplishments. While the point has not been reached when teachers' judgments can be supplanted entirely, there is little excuse for using poor examinations. If the educational system exists primarily for the development of the pupils, it has only two major functions: (1) to provide the most stimulating environment for growth that it is possible to set up, and (2) to measure changes in pupils with the most satisfactory techniques that have been devised, in order to determine whether the conditions for learning are satisfactory. The adjustments necessary to carry out the first function satisfactorily depend almost wholly upon the degree to which adequate measuring instruments are used. Poor tests cannot possibly detect the changes, and without this knowledge modifications in curricula and in methods of teaching will continue to be based upon speculation and armchair philosophizing. The procedure is analogous to groping in the dark for an unknown object (46: 130–131).

One of the commonest criticisms of standardized achievement tests is the glib phrase that they do not measure thinking. Thinking is as variously defined as is intelligence Possibly this criticism should be changed to read that objective achievement tests do not measure the student's ability to assemble the thoughts that will most impress the professor

We have confined most of our discussion of tests to generalized statements about their use in academic work This would follow naturally from our emphasis on prediction of success in training We have not tried to give a comprehensive and historical survey of the field of test development, for such surveys are available in many standard references Nowhere, however, will be found any statement of the actual tricks of the trade in using tests. This is best learned by experience, often bitter, but consistently illuminating. It is our own opinion that tests are invaluable adjuncts to a well-rounded counseling program They are indispensable, too, in objectifying our estimates of the individual, but, as is true with any tool, no standardized set of instructions brings us proficiency in their use Tests can best be understood by extensive experience with them in the local setup

No *single* test or *other* analytical item of information permits a valid diagnosis of a student's educational and vocational possibilities A great number of factors operate to make each one's possibilities complex and individual. One must take into account the personality of the student, his social and economic background, his health—in short, all those personal details which might have a bearing on his educational or vocational adjustment But this is not all, each academic goal group—engineering, medicine, business, law, etc.—requires a certain type and/or amount of aptitudes Any one necessary ability may be common to several of these goal groups But the skill required in the use of this one ability may vary from one group to another A knowledge of mathematics, its principles, and

the application of those principles may be useful in both engineering and scientific agriculture. But more of this knowledge may be needed in training for engineering than in training for agriculture

For the purposes of these comparisons, those tests which have demonstrated their predictive efficiency are used Statistically, this means that they must show a correlation of a certain magnitude with scholarship That is, they should be able to differentiate, with a certain degree of accuracy, prior to competition, those who will be successful from those who will be unsuccessful in competition within any one goal group The ideal situation would be the possession of tests which yield perfect correlations with scholastic achievement But that, of course, is not possible Too many elements, as yet unmeasured or even unidentified, influence achievement Counseling must be in terms of probability, and the fact that tests help to determine probabilities of failure and success justifies their use That tests are fallible is no excuse for their abandonment

> On the contrary, the test score may almost always be of great value, since it is a clear addition of available impressionistic knowledge, it taps new sources of information It will be of great value, provided we do not misuse it (142 193).

It is possible to estimate probable success without using tests Otl [illegible] sed—high-school scholarship, for instance; teachers' ratings, a subjective judgment crystallizing from the interview, or even a case history or personality inventory All these data are most worth while when used in combination in a clinical synthesis We may conclude, then, that each one should be employed as a supplement, not as a substitute, for each of the others It is certainly a just criticism that tests, as predictive agents, are not perfect, but they do constitute a significant improvement over the older traditional techniques

Once the tests have been selected, administered, scored, and interpreted, and some estimate made of the case's personal and social acquirements, the counselor must advise the student as to his chances for success in training for various occupations At this point, all available evidence of the students' abilities are coordinated The test data on the student are collected, together with the interview material, grades, a report of his general health, some record of his socio-economic status, and a summary of his extracurricular activities and interests It is the job of the counselor to integrate this material, to interpret the present abilities and achievements of the case in terms of his background, and to draw conclusions from those interpretations

The final act of counseling the case is not performed by instructing the student to train for this or that particular profession, but by presenting to the student his possibilities in certain lines of endeavor, alternative goals, with the evidence for and against a choice, help to clarify the student's thinking and provide needed data for a tentative decision. He is urged to try out, at least, that course which seems to suit his abilities and interests most favorably, the tentative nature of the try-out and the necessity for further interviews, before a final decision, are emphasized And some measures are taken to make this more possible If, for instance, the student wishes to transfer from one training sequence to another in which it seems probable that he will do better work, a recommendation with the supporting evidence is made to the administrative body concerned In some instances where the case shows superior ability in several lines and no definite interests, he is advised to defer his decision regarding his vocational choice until he has had more opportunity to sample work of various types; or the advice of his faculty, friends, or parents may be requested In any event counseling depends on the critical analysis of all case material, even as that material presents itself through the student's behavior during the interview

The counselor should be so far sympathetic with the student that he is able to see the problem through the student's eyes, and so far objective that he is able to recognize the errors in the student's judgment Once the general direction toward which the student's aptitudes and interests should be oriented is tentatively determined—and we have seen that this may be done, with a certain margin of error, by means of tests and other data—the counselor must attempt to clear the student's thinking Vocational maladjustments often result from inadequate analysis and understanding of the abilities and interests possessed and those required, and a failure to see how one is related to the other It is not uncommon, for instance, that the student mistakes a superficial or layman's interest for a technical interest in a profession. That is, he misinterprets a desire for a layman's knowledge of medicine or law as a desire to practice medicine or law. It is the duty of the counselor to distinguish between these two types of interests so that the student will understand the difference and look to other criteria for selecting a vocation. In no instance should a decision be made by the counselor without explanation to the student as to how that decision was reached Tentative conclusions should be evolved by counselor and counseled working in cooperation This does not mean that no prediction is made, or no advice given But prediction and advice should follow upon explanation and persuasion If the counselor is successful in his guidance, the student should come to see the possible solutions of his problems just as the counselor sees them. If the counselor is unsuccessful, if the advisee fails to see eye-to-eye with his adviser, it must be inferred that the counselor is not sufficiently persuasive, that some information vital to correct diagnosis is lacking, or that the counselor has attempted to develop a plan for the student which is not in harmony with all important facts of the case.

CHAPTER VI

CLINICAL PROCEDURES

In describing student personnel work, we have pointed out that it is based upon a body of empiric and research knowledge evolving in the area lying between educational structure and student behavior To bring some order out of its development, ten principles that seem basic to adequate student personnel work were enunciated And the final step was to delimit the three broad divisions in methodology: the development of new, or the standardization of existing, analytical techniques, the clinical study of individual problems, and the place and importance of preventive measures in personnel work The term "student personnel work" has been used because it includes all these divisions and all the developmental trends and principles touched upon, whereas the terms "guidance" and "counseling" apply primarily to the study of individual problems and the resultant educational or vocational suggestions given by the counselor

The preceding chapter has been given over to a discussion of the use and value of various analytic techniques The task of the present chapter is to describe in so far as possible what happens in the interviews, and the problems of the individual, which are thrown into sharp relief in the actual guidance or counseling of the student In other words, what does the counselor do, and how does he help the student?

When a student appears before the counselor, seeking solutions for a constellation of problems that are peculiarly his own in intensity and interrelationships, student personnel work narrows down to clinical and case-work pro-

cedures. It is at this point that the results of research and measurement are tempered with the diagnostic skill, the experience, and even the hunches of the trained counselor We may schematize these clinical steps in order to bring them into focus.

CLINICAL ANALYSIS

Assume that a student has come to the counselor for educational and vocational guidance The first step is that of *clinical analysis* From the various analytic techniques described in Chap V, the counselor must select those which will best apply to the student in front of him If the student is planning to enter academic competition on the college level, it becomes advisable to determine whether he possesses what Wood has defined as the minimum amount of intelligence for college-level work (175: 134). Whatever standard mental test is in use in a particular institution will serve the purpose, although it is advisable to check this measurement either by a retest or by another intelligence test, or both, if the counselor feels that a single measurement of intelligence may be unreliable with a particular student The student may be planning a certain type of professional training on the college level, or may express interest in a certain type of training. These plans immediately suggest the use of a standard vocational interest inventory and of standardized educational achievement tests or aptitude tests covering materials and characteristics basic to the work that the student is considering For example, a standard achievement test in mathematics, with the score expressed in terms of the performance of the students with whom this student will later be in academic competition, will cover one of the basic characteristics in the field of engineering An art judgment test or a music appreciation test may isolate characteristics necessary for success in architecture, art education, fine arts, commercial design, music education, music criticism, or music appreciation. A clerical aptitude test may cover basic character-

istics in office clerical work, accounting, bookkeeping, credit management, retail selling, or any job involving record keeping Educational achievement tests in general and specific sciences give some idea as to the individual's probable success in medical or dental or other scientific fields A standard achievement test in current affairs is a logical measuring instrument in the case of a student desiring training in journalism, together with standard tests in English usage, spelling, and literature, and tests in history or government. Within each one of the areas used as examples, the results from the use of available vocational interest inventories will indicate the pattern of interests possessed by the individual These examples could be multiplied indefinitely Behind them, however, there are plainly to be seen some of the counselor's ten guiding principles One of these is the estimation of the student's probable success in training by using norms or standards derived from groups with which he plans to compete Another is the attempt to analyze the student's types and levels of abilities and interests

But clinical analysis is by no means complete with the selection of a battery of tests. It is possible to interpret the student's grades in high school or college to see whether different areas of knowledge show different levels of achievement It is advisable to study health and medical records to see if unique problems are present that may restrict the student's future work It is necessary to use the interview or some standard record form filled out in advance by the student to isolate certain socio-economic facts about finances, family and home conditions, developmental trends in the individual, sibling relationships, and similar data which may later have a bearing on the case Extracurricular activities, vocational or work experiences, interests and leisure-time activities must all be probed or sampled if the total individual is to be understood Diagnostic tests of reading deficiencies, of personality problems, and of other possible liabilities may be required. Other personnel

agencies, such as the speech clinic, the health service, the psychiatrist, and special faculty or vocational counselors are all available in the process of clinical analysis

The extent of the clinical analysis will depend in part upon the facilities of the particular institution, in part upon the thoroughness of the counselor, and finally upon the severity of the student's problems In any event, at the end of the analysis, the counselor will be in possession of many isolated fragments of information about the student Numerical test scores, interest test patterns, impressions and interview records, medical data, grade reports, socio-economic case history materials—all these will be before him, waiting for the next step in student guidance

CLINICAL SYNTHESIS

This second step may be defined as *clinical synthesis*, or the or[illegible] of facts derived from [illegible] personnel agency It is in th[illegible] that the counselor's diagnostic experience again comes into play, in weighting the various facts, in seeing behind test scores or thermometer readings to their possible causes, in setting quantitative data in its proper relation to qualitative data about the individual Clinical synthesis involves among other things the physical arrangement of the data in such a way that a summary of the various areas sampled in the individual is possible Test scores are grouped and subgrouped into achievement fields, special aptitude tests, tests of general academic ability, interest inventories, special diagnostic tests of individual deficiencies, and tests of personality adjustments Case history material is summarized under the various headings mentioned above. High-school or college grades, medical reports, and reports from specialized personnel agencies are grouped separately for reference. These mechanical arrangements may seem unworthy of mention, but much of the accuracy and skill

necessary in synthesizing the data on the individual case may depend upon a systematic arrangement of the material

On the basis of this synthesis, the counselor can see the strong and weak points of the individual which are to be considered next in the steps of diagnosis and prognosis Special areas of high achievement in the test data stand out in relation to areas of weakness or lack of achievement Pertinent case history material about the individual's past record throws light on test evidence, on family background, on financial problems basic to advanced academic training. The record of educational and vocational try-out experiences gives clues as to some of the probable bases of claimed vocational interests or choices Attitudes probed by the interview, sibling and social relations uncovered either in the interview itself or in case history forms or by means of personality inventories, and impressions or comments from other counselors are valuable leads in estimating student morale and motivation Essentially the synthesis of data about the student foreshadows the later steps in student guidance or case work The synthesis is analogous to the preparation of a three-dimensional map, which will guide the counselor in working through the rough and often tortuous terrain of the student's problems

CLINICAL DIAGNOSIS

After the steps of clinical analysis and clinical synthesis are completed, the third step in student guidance is that of *diagnosis.* Diagnosis is aimed at describing the maladjustments or problems or problem complexes in six broad, major areas of student activity. In working with students this step of diagnosis is the rule rather than the exception because students tend to seek the counselor's aid only when a problem exists. But, just as in many medical examinations, a diagnosed maladjustment is not inevitable, preventive work may frequently be substituted for curative work with the individual student However,

diagnosis is usually predicated upon the counselor's experience that a large majority of students' vocational and educational choices are made on illogical or irrational bases Consequently it becomes the counselor's duty to look into the student's vocational and educational choices as objectively as possible, rather than to accept the student's expression of what he wants to do as a valid index of what he will be able to do. Irrational or illogical bases of making educational and vocational plans are often the causes of the maladjustments which need diagnosis in this step of student guidance.

For purposes of classification it is possible to subsume nearly all student problems under six broad headings as follows: financial, educational, vocational, social-emotional-personal; family, and finally, health or physical-disability problems Under these six headings an almost endless number of specific problems may be grouped For example, in the financial area we find students of good ability who could benefit from advanced academic training but who are financially incapable of taking as much training as they could absorb. We also find students who are making educational and vocational plans far in excess of their financial capacity In the field of educational problems we find that specific problems range all the way from poor study habits and faulty preparation in basic subjects up to the problem of the student who has reached his educational limit in high school and who lacks the ability to maintain himself in college-level educational competition In the area of vocational problems we find frequently that students make vocational choices because of the amount of money they believe they will be able to earn, because of the social prestige attached to the vocation they have chosen, because of family pressure of some sort, or simply because some of their friends are in that particular vocational field The common characteristic of most of the vocational problems is that students have usually made their vocational choices not on the basis of an adequate analysis of their

own abilities, interests, background, and potentialities, but rather on the basis of their usually incorrect information about what the vocation is or might be for them The grouping of problems labeled, for want of a better term, social-emotional-personal includes problems of undersocialization and oversocialization, severe emotional upsets conditioned by family, social, or sex problems, and those border-line personality problems wherein personality adjustments now characteristic of the student do not fit in with other indices of his probable vocational adjustment Family problems may include conflicts over religion, finances, or sibling relationships. They may also cover cases of too great a dependence on the family or too great a struggle for independence in the family situation. The last area, that of health or physical disability, needs little elaboration. Considerations of health or physical condition are obvious limiting factors in whatever plans are made for the student (167)

Admittedly any attempt to classify student problems is subject to the same criticisms that arise elsewhere when dynamic human beings are categorized and fixed within defined limits As a matter of fact, this entire schematization of various steps in student guidance or case work tends to be too static and artificial in its description of what the counselor does However, since there are so few available descriptions of what goes on in the counseling situation, we feel that the present outline is justifiable Later, in discussing the symptoms of student maladjustments and in citing case histories wherein the various steps are indicated, we shall return to the dynamics of the counseling situation.

Perhaps the best way to elucidate the steps in diagnosis is to present the following two sentences in which the words or phrases in quotation marks in each sentence are comparable The first illustrates the vocabulary of the medical practitioner and the second illustrates the vocabulary of the student counselor.

"The medical examination" showed "a pattern of symptoms or a syndrome" which was "diagnosed" as a "disorder of the circulatory system," specifically "arteriosclerosis"	"Clinical analysis" showed "a problem complex" which was "diagnosed" as "an educational problem," specifically "poor study habits"

In other words, the diagnosis of the student counselor is analogous, in the various areas of student behavior, to the diagnosis made by the medical practitioner in the various areas of bodily function. In this sense diagnosis means essentially finding out what is wrong with a student or what is preventing him from making a satisfactory adjustment to the life and educational situations in which he finds himself

PROGNOSIS

The next step in student case work, that of prognosis, grows naturally out of the step of diagnosis. All available evidence is summarized and presented to the student in terms of the respective probabilities of various alternative recommendations concerning the student's occupational and educational plans. The *recommendations upon which prognoses are based must be in terms of alternatives so that the student may make his own choice.* It is at this point in the case work that the counselor translates his two basic principles, about prediction for success in training and prediction based upon the characteristics of goal groups or occupational groups, into terms that the student can understand in relation to his own problem For example, in the case of a student who is not succeeding in his present educational and vocational choice of engineering, the clinical analysis and synthesis may lead to a diagnosis of inadequate aptitudes; but this diagnosis naturally does not solve the student's problem, the counselor must make certain recommendations and predictions in order that the student will understand clearly what will happen if he follows any one of these recommendations If the evidence is such that the counselor believes the student will be more successful

in social sciences than in engineering, he presents the clima
basis of this prediction, explains vocational outlets growing
out of the social sciences, and brings to the student's atten-
tion all the facts that should have a bearing upon his deci-
sion in regard to changing or adhering to his present
educational and vocational plan The counselor may al
safely point out what may happen if the student continues
in his present educational and vocational plans; and, if t
evidence warrants it, he may safely predict a more serio
maladjustment attendant upon continued failure in t
particular course that he is pursuing. In many cases it
necessary to persuade a student that his ambitions exc
his abilities That downgrading process has been d
in the educational system by the simple but often unj
fiable expedient of flunking the student. The coun
must go a step farther: in his downgrading he must pr
alternative occupational and educational goals and mot
the student to look for satisfaction in such goals.

Prognosis, then, is simply the prediction which the
selor is able to make about the student, assuming th
various recommendations outlined for the studen
founded on a sufficiently sound and reasonable ba
warrant the choice of one of these recommendations.

TREATMENT

The fifth step in our scheme of student guidance
of *treatment.* This word has an unfortunate conn
but we should prefer to have it stand for whatever
by the counselor, by the student, or by the institu
put into operation the set of recommendations sele
the student. Thus treatment may involve ques
attitude and morale that can be handled by the c
or by others It may involve remedial treatm
deficiencies in the student such as speech defects, te
physical conditions, bad study habits, visual defe
things of that sort, or it may involve nothing mo

curricular planning that will bring the student into contact with the type of vocational preparation in line with the counselor's recommendation Often the counselor is possessed of sufficient information about the student to justify a request for exceptions to existing academic regulations, so as to give the student try-out experiences in a course or field hitherto untouched Similarly, the counselor may be in possession of sufficient information to ask for a removal of disciplinary measures which have been taken without full knowledge of the student's problem Many cases of this sort instantly come to mind, one of which involved the instructor who gave a *D* to a student, not because she had earned the grade of *D* in examinations, but simply because, as he stated, she struck him as being too flighty, too sociably inclined, and too satisfied just to get by in her work Later investigation in the counseling situation brought to light the fact that the girl was working forty hours a week as night telephone-switchboard operator and was actually too exhausted physically to spend more time on her work, in spite of the fact that she had good abilities. This is not an extreme or exceptional case.

Often, since the counselor occupies a peculiar position of trust in the student's mind, he finds himself in a position to motivate the student up to the limits of his capacities much as the tutorial system is designed to motivate the student by providing a freedom of contact with the instructor that large classes preclude The more serious attitude problems that border on serious mental conflicts can be referred to the psychiatrist in the hope that psychiatric treatment will permit the counselor's other recommendations to proceed without hindrance Many other varieties of treatment could be cited but the important point about all of them is that the counselor and the student actively work together to solve the student's problem Counseling is not a snapshot procedure or a matter of judgments handed down from on high The time involved in bringing about student adjustments can profitably be devoted to active

work on the part of the counselor if he wants to see his recommendations put into effect

FOLLOW-UP WORK

The final step in student case work or guidance is that of *follow-up work.* The student may be followed up for at least four purposes The first of these is the simple routine follow-up involved in completing the clinical analysis in any student case Many students start through the analysis in a halfhearted fashion and drop it after a short time, just as many of us resolve to go to the doctor but never quite get there. A second form of follow-up is involved when the counselor wishes to see the effect of the treatment he has provided. He may want to determine, for example, the effect of attendance at a speech clinic on the speech habits of the student, or the effect of certain medical recommendations designed to put the student in better physical condition He may want to see also the results of a planned study program to determine whether or not study habits have been improved A third type of follow-up is designed to determine whether or not additional problems have arisen after the first diagnosis Since human beings do not stand still, and since they are in constant contact with stimuli that may give rise to further problems, this type of follow-up is rather important This means that counseling is not finished until the student passes beyond the horizon of the counselor, since life is a continuous process of adjustment. The final type of follow-up is mainly a post-mortem study of groups of counseling cases to evaluate the effectiveness of the counseling. While this overlaps with the three previous types of follow-up studies, its main characteristic is that it is conducted more on the lines of a research study than a continuing case study for individual service needs.

SUMMARY

These, then, are the six steps involved in guidance or case work: analysis, synthesis, diagnosis, prognosis, treat-

ment, and follow-up Within their scope, case work can go on interminably. We find chronic cases for whom the process must be repeated many times We find other cases, with the diagnostic step eliminated in favor of preventive measures, who later return with a problem to be diagnosed Finally, we find cases who are completed and adjusted to their environment before all the steps are finished Completing some of the steps depends upon the efficiency of a given personnel program This is true in the clinical analysis and clinical synthesis particularly The completion of all steps depends in large part upon the diagnostic skill of the counselor and the personnel resources upon which he may draw in the institution in which he is working The follow-up work designed to evaluate the effectiveness of counseling is a step demanded by many people but attempted by only the more tough-minded in the field of student personnel All this clinical work comes eventually to be integrated in the division of student personnel work that is concerned with the development or validation of analytic techniques. The present status of student personnel work may best be summarized by saying that on some fronts it has outrun its research evidence, on other fronts it has not yet utilized to the fullest its available research evidence, and on still other fronts research evidence is completely lacking. Since the history of medical science has worked through the same developmental stages, with clinical practice out-running scientific medicine, we feel that the clinical practice of student personnel work cannot justifiably be damned out of court because some of its principles are as yet unproven by research The confessional was an adequate empiric tool before psychoanalysis defined the dynamics of the mind, herbs were beneficial in solving illnesses before the laboratory isolated the specific healing elements in them. In almost every field of applied science the practitioner has outrun the experimenter Admittedly research and practice should be interlocked, but practice based on experience must serve where research

is lacking. The pressure to do something about student problems and the fact that students will turn to other, less objective sources of assistance combine to give practical justification to clinical work

ANALOGY WITH MEDICAL PRACTICE

In the preceding paragraphs we have had occasion to draw an analogy between the clinical practice of student personnel work and the work of the medical practitioner At the risk of laboring this analogy it may be expanded into a series of parallel functions within the six steps of clinical student personnel work The following parallel columns show the points of similarity between medical practice and case work in guidance.

MEDICAL PRACTICE	STUDENT CASE WORK
Medical examination	*Clinical analysis*
Temperature	Intelligence tests
Blood pressure	Vocational interest tests
Height and weight	Mechanical aptitude tests
Pulse	Clerical aptitude tests
Urinalysis	Grades
Basal metabolism	Achievement tests
Pain	Claimed interests
Nervousness	Shyness
Tics	Tics
Worries	Worries
Family medical history	Socio-economic background
Previous medical record	Previous educational and vocational history
1 Work conditions	1 Study habits and conditions
2 Diet	2 Vocational educational ambition, social habits and attitudes
3 Recreational habits	3 Work experience
Fluoroscope and X-ray examinations	Diagnostic educational tests
Psychological examinations	Medical examinations
Psychiatric examinations	Psychiatric examinations

depends on the patient, unless the case be hospitalized or be so seriously ill that visits on the part of the doctor are required Similarly in student guidance, follow-up work is often voluntary with the student, except for pressure exerted by administrators, parents, or the counselor.

While there are essential differences of approach characteristic of medical practice as compared with student guidance, the parallels between the two fields are sufficiently clear to permit student guidance to be elucidated in terms of medical practice, mainly because medical practice is more familiar to the majority of readers than guidance work Consequently, at the risk of offending medical practitioners this analogy has been developed.

tional and vocational competition in alternative restricted areas The doctor uses in his prediction accident probabilities, disease probabilities, and death probabilities, figured on an actuarial basis and in terms of his clinical experience. The counselor, dealing mainly with probabilities of success or failure in training, bases his predictions on existing research studies or on records of previous students and again tempers these research or empiric judgments with his own clinical experience

In the step of treatment, however, the analogy may again be charted to bring out more clearly the types of treatment

MEDICAL TREATMENT	STUDENT TREATMENT
Medication	Downgrading of student ambitions
Surgery	Curricular arrangement
Rest and diet	Change of occupational choice
Change in occupation	Development of skills and study habits
Change in health habits	Financial aid arrangement
Physical therapies	Vocational information
Referral to specialist or specialized agency	Vocational or educational try-out
	Understanding of abilities and disabilities on the part of the student
	Realignment of recreational or avocational activities
	Cultivation of student's morale
	Referral to specialist or specialized agencies such as speech clinic, psychiatrist, etc

In the field of treatment, then, the medical practitioner and the counselor have at their command many resources, some of which are directly comparable and some of which are highly specific to each field. In both cases these various types of treatment, either of a directly remedial character or of a type that will facilitate the completion of the practitioner's recommendations, are the means by which the medical practitioner and the counselor work out their recommendations and predictions for their cases Follow-up work in medical practice is usually voluntary and

depends on the patient, unless the case be hospitalized or be so seriously ill that visits on the part of the doctor are required. Similarly in student guidance, follow-up work is often voluntary with the student, except for pressure exerted by administrators, parents, or the counselor.

While there are essential differences of approach characteristic of medical practice as compared with student guidance, the parallels between the two fields are sufficiently clear to permit student guidance to be elucidated in terms of medical practice, mainly because medical practice is more familiar to the majority of readers than guidance work. Consequently, at the risk of offending medical practitioners this analogy has been developed.

CHAPTER VII

STUDENT PROBLEMS AND TREATMENT

The question immediately arises as to the danger signals to watch for in working with students Are there any symptoms indicative of maladjustment in the broad areas outlined in the preceding chapter? As one works with individual students, there arises out of the apparent chaos and complexity and uniqueness of problems, some degree of order; one begins to notice minor and major variations on the same theme Were it not for this emergent orderliness of symptoms the possible combinations and permutations of symptoms and problems would be endless. But over a period of time and experience there are isolated symptoms that appear with sufficient regularity to be listed separately. While each case presents a complex of problems, as will appear in the case histories to be discussed later, the itemization of common problems may be of some service to counselors in helping them identify and classify broader problem complexes in the students with whom they work In one sense these symptoms or signs are actually the problems themselves; in other cases they may be the outward manifestation of more deep-seated problems The point of reference of the counselor will usually be the deciding factor in determining whether a particular sign is a problem or a symptom Furthermore, these signs are primarily the ones seen by the counselor, the student himself may see his problem in a completely different light or may assign causal significance to an actually irrelevant aspect or condition.

In summarizing these various signs of student maladjustment an attempt has been made to group them under

the major problem areas outlined earlier The categories and the classifications of items under them are in no sense rigid or final, nor possibly are they completely logical It is doubtful, however, if the dynamics of human behavior can ever completely be confined within the boundaries of any hard and fast system of classification, nor is it possible to list opposite any item all its conditions and causes or all methods of treatment The ingenuity of the counselor, the personnel resources of the institution within which he works, and the willingness on the part of the student to cooperate are the determining factors in clearing up the causes or symptoms of student maladjustment in the major areas With these qualifications, then, the following symptoms or signs are presented

FINANCIAL

Complete Self-support —This symptom of financial maladjustment is too obvious to need extensive elaboration The causes of the economic background producing this particular condition can usually be elicited from the student but can seldom be remedied by the counselor Referral to loan or scholarship agencies, consideration of the relative advantages of borrowing money to relieve the burden, and serious consideration of the possibilities of dropping out of school until earnings permit a return without this heavy work burden are some of the possible treatment methods If educational planning or program planning are to be done for students with this handicap, a light schedule or one that fits in with the outside working hours of the student is immediately necessary Health problems because of overwork are to be watched for, as are problems of undersocialization because of an inability to make and maintain social contacts. From the vocational standpoint this symptom of difficulty may often bring the student and counselor face to face with the reality that the student cannot complete the training to which his abilities and interests entitle him and, consequently, cannot enter the profession or

vocation for which he is best fitted because of the inability to finance the requisite education.

Plans Incomplete without Financial Aid.—The causes or economic background producing this particular condition or symptom may also be easily elicited from the student It differs from the first item mainly because many students enter college work with finances sufficient to carry them only a short way along the entire goal Here again loan or scholarship agencies may be brought into play, and educational and vocational planning should be made with the possibility in mind of outside work if it can be obtained later In many institutions entering students are not eligible for outside jobs in their first or second year but do become eligible beyond this period, and consequently the possibility of such jobs may be kept in mind in planning with the student. Frequently a referral to the employment agency maintained by the institution or to other sources of part-time work will aid in clearing up this particular problem Like other financial problems this may be said to be a contributing cause of the mortality that occurs in many educational institutions on the college level. Some students are obliged to leave because of inadequate financial backing

Plans Limited by Financial Resources.—This particular symptom is a minor variation of the other items in this financial area of student maladjustment Some students know definitely, upon entrance to an institution of higher learning, that their financial backing will cover only a certain period of time. If such a condition develops in the case work with a particular student, it becomes necessary to bend all the resources of the institution toward the provision of the best possible type of training consonant with the student's interests and abilities that may be provided in the time at hand. Unfortunately such provision is frequently hindered by the academic red tape of prerequisite sequential courses and by other time-serving devices In such cases it may be wisest to suggest that the

student invest his stated resources in training more definitely vocational, if that is what he needs, rather than in the training offered in the usual preprofessional or usual four-year curriculum Such suggestions would be based upon a choice, from among the various vocational alternatives for this particular individual, which fits the practical needs of his financial limitations rather than upon the choice of an alternative which ideally might be better but practically could not be worked out with the student's financial resources

Too Much Outside Work.—This particular problem has been located in the financial area though it might justifiably be reflected in other areas such as health, emotional, social, or personal. Frequently a poor record of academic achievement is conditioned by an excessive number of hours spent in outside work or an outside work load that interferes with accepted health habits for the individual This particular symptom or problem may in turn be a cause of a discrepancy between the individual's abilities and achievements, reflected in a lower achievement than would be expected on the basis of the individual's measured abilities The condition of too much outside work itself may be cleared up from the educational end by lightening the individual's schedule, by finding a vocational and training goal that can be completed in a shorter length of time, by consideration of the advantages of borrowing money to relieve the outside work load, or by advising students to consider seriously the possibility of leaving school until they can return to academic training with an adequate backing While it is as difficult to clear up this particular condition as it is other conditions in this area, an overload of outside work becomes particularly significant as the basis for symptoms or signs of maladjustment in other areas and the possibility of its presence should consequently be probed carefully by the counselor

Worry over Family Financial Sacrifices.—Many students either become overanxious in choosing an educational plan

or a vocational plan or become self-condemnatory because of their academic record or become self-condemnatory because of a feeling that they are a financial drag on their families while they are receiving training. In some cases this feeling is fostered in the student by the family, consciously or unconsciously, and in some cases it is a definite and sincere feeling on the part of the student himself. It is sometimes used as an excuse for poor work. It sometimes takes the form of eagerness to get on with professional training, resulting in resentment at the barriers of prerequisites and other academic hurdles. From the treatment standpoint the counselor must first determine whether the feeling has been fostered in the individual by the family, in which case it becomes a family problem to be treated possibly through contact with the family. If it is a valid feeling that has arisen within the individual, the counselor can do little more than point out that in each generation families make sacrifices for children and that this student himself will at some time be making sacrifices to send his own children into the training consonant with their abilities and interests that will enable them to take their place in society. Another form of treatment obviously is to put the student in line for outside work so that he can relieve the family of part of the sacrifice he believes it is making. A recommendation to seek outside work should be made only if the counselor believes that the student can handle this additional load without impairment to his academic record or his health.

A few points may be made in general conclusion to this discussion of problems in the financial area of student maladjustment. It has been a popular concept for many years that a student who works his way through school would profit more from this experience than one whose education was made easier. This assumption is a faint reflection of the concept of formal discipline implying whatever is difficult must consequently be beneficial to the individual, or whatever is hard to get is consequently more

worth getting The student personnel worker can justifiably question the validity of the advantages of outside work with its alleged effect upon student achievement It is possible that if the educational system were more adequate in motivating all its students, those students whose education is not hampered by financial restrictions would profit more than they do from the education they are now given It is further possible that under these ideal conditions of motivation, the student who is working on the outside would be unable to follow out the various leads developed in the teaching situation to their integrated meanings for him as an individual Too frequently the effect of outside work is definitely to handicap the student, although in most cases little can be done to alleviate the situation In any event the isolation and consideration of financial difficulties force the reality, whether such reality is to be desired or not, in presenting alternatives to the student for his educational and vocational plans. These decisions are made not only in the light of the student's interests, abilities, and background but also in the light of financial limitations as they are discovered in the case work As in every separate problem area it is particularly important for the counselor to observe the ramifications of financial problems into other areas such as health, educational achievement, emotional or social adjustment

EDUCATIONAL

Discrepancies between Achievements and Abilities.—This particular symptom or sign is familiar to many research workers in education in studies of the relation of measured abilities to subsequent achievement It takes the form of discrepancies between a predicted and an actual achievement level for individual students as evolved in the regression equation. In common observation, as Thorndike has pointed out, very few people are working up to the actual limits of their ability The symptom itself becomes a problem when the discrepancy is such that a nonachiever

gets into academic difficulties leading to the possibility of an enforced termination of his educational career. The symptom is placed in the educational area because it is immediately observable there in the student's academic record As a problem, however, the counselor may look for its causes in the health area, in the area of emotional or social or family adjustments, in inadequate study habits or inadequate skill in using abilities or in specific academic deficiencies which pull down an otherwise good record Treatment is dictated by the particular set of conditions isolated as the cause of the discrepancy between achievement and abilities Study habits may be changed by a better planning of time distribution, a better arrangement of conditions of study; specific deficiencies may be approached through diagnostic and curative treatment of specialized agencies If the discrepancy is due to a lack of motivation, it becomes in part the duty of the counselor to set goals for the student so clearly and to lay out incentives in such a way that achievements and abilities will be brought more in line If the discrepancy is due to family, or social or emotional or financial problems, family contacts, attempts to provide more adequate socialization, psychiatric referrals, and the various treatment techniques for financial problems may be brought into play. This discrepancy may also conceivably be caused by excessive educational red tape. The high-ability student may be forced to pursue courses the content of which he has already mastered until this artificial leveling of his abilities causes a complete loss of interest with consequent lowered achievement The discrepancy may also be in the direction of low measured abilities with high actual achievement In such cases the obvious approach is through a retesting of the measured abilities with a careful use of checking tests and repeating tests in the same measurement area If the ability remains constant and the achievement level still exceeds it, it is possible that a survey of the student's study habits and distribution of study time will indicate an excessive amount

of time devoted to studies at the expense of other areas of student adjustment or an excessive amount of time devoted to studies that cannot be continued over a four-year academic career. In other words, many students may play over their heads academically and keep up with a class through excessive efforts for a short period of time, but it is doubtful if they can continue that form of behavior as competition becomes keener and the time factor becomes more important. In such cases the counselor must meet the problem by pointing out that the given achievement level has been attained by excessive work and that it may not continue over a long period of time unless the individual readjusts by undertaking academic work more in line with abilities and interests.

Discrepancy between Ambitions and Abilities.—Studies have been cited elsewhere (168) to indicate that a large proportion of students entering colleges choose eventual occupational goals for which the training standard is beyond their ability level. In so far as society demands the completion of certain training requirements before job participation is permitted to the individual, these discrepancies can sometimes be handled by the technique of straight downgrading or by assisting the individual to choose a less ambitious goal. In other cases the discrepancy between ambitions and abilities involves what might be considered horizontal readjustment. An illustration would be the readjustment of a student with very definite ambitions for graduation from a school of journalism but with patterns of interests and abilities indicating certain limitations of creative writing skill or reportorial skill which would make a course in business administration more advisable. From the prestige standpoint or the social and economic standpoint there is not so much to choose between the goal of journalism and the goal of advertising. Both may be four-year courses, but the student may possess the differential types of abilities that will make his chances of success in business training greater. The discrepancy may infre-

quently take a third form, wherein the individual is relatively lacking in ambition and is perfectly content to drift along in the educational system in spite of the fact that he possesses abilities and interests which warrant specialized training In such isolated cases a process of upgrading by motivation, by encouragement, or by persuasion is the obvious form of treatment In any treatment technique aimed at bringing ambitions and abilities more in line, the principle of alternative goals becomes extremely important Counseling cannot be done by telling a student that he cannot do a certain thing. This is similar to ordinary personnel practices, where the person who is not hired on a job is turned away from the employment gate with little further attention If downgrading, upgrading, or horizontal adjustment is to be effective, the treatment must include the presentation to the student of recommendations and alternative goals that he himself can understand. In many cases treatment can be effected only by the time-honored method of letting the student make his own mistakes In other words, in extreme cases it often becomes necessary to let the student fail before he is convinced that an alternative choice would have been better. Since in most educational practice, however, course work is not regarded as material for try-out experiences, this failure will often put the student into jeopardy from the standpoint of academic discipline In such cases the prediction of failure should be made a matter of written record in the counselor's files so that educational administrators may be persuaded to give the student another opportunity in a training program better suited to his abilities and interests.

Discrepancy between Claimed and Measured Interest.—This particular symptom of maladjustment is, to some extent, a modification of the immediately preceding symptom. Most students' claimed interests are beyond their capacities for fulfillment The measurement of interest has attained a sufficiently high level of reliability to justify us in saying that measured interests should receive much

greater weight than claimed interests in diagnosing students' problems wherever a discrepancy between the two occurs Most frequently the claimed interests are at a higher academic or occupational level than the measured interests, which means that the downgrading process must be brought into play Occasionally the claimed interests need to be readjusted horizontally to bring them in line with measured interests The reason for vocational choices or claimed interests on the part of students are many and illogical A desire for economic security, a desire for social prestige, a wish to be with friends, a suggestion by parents, a family professional tradition, a liking for superficial aspects of work that adhere to a simple job label are some of the many bases for student choices, no one of which alone is valid or logical One particularly valid treatment technique involves a very clear explanation of the principles behind the measurement of vocational interest and a fairly simple summary of the research upon which the measurement of interest is based Students can be brought to see the logic of such group comparison technique, they may identify themselves with the groups in which their interest patterns locate them and come to feel that their most satisfactory adjustment will be made in such groups.

Discrepancy between Measured Interest and Ability.—An earlier problem has been described as a discrepancy between ambitions and abilities, usually with excessive ambition as its main characteristic. The problem now under discussion is related to a particular phenomenon of measurement Nearly all the studies which have been made concerning the relations between measured interests and measured abilities or achievements yield relationships that are too low to permit interests to predict abilities or interests to predict achievement. In the present state of knowledge about human behavior, consequently, interests must be measured and evaluated separately, and abilities must be measured and evaluated separately, and the two must then be combined until each receives the proper

empiric weighting A student whose measured *interests* lie in the technical fields which follow upon satisfactory completion of engineering or chemical training and similar technical occupations growing out of college-level academic work may not possess the requisite *abilities* and background of achievement to be successful in the college-level competition and training for these occupations Similarly students who possess the measured interest patterns of successful men in business-contact fields, such as direct sales, purchasing, and similar work, may not be able to find training for such occupation on the college level In the first example cited a research publication of the University of Minnesota Employment Stabilization Research Institute is particularly pertinent (10: 14). In that survey it was found that workers in the higher levels of the skilled trades, tool and dye makers, machinists, carpenters, and similar workers, possess the same pattern of measured interests as engineers, chemists, scientific agriculturists, and others in related technical fields requiring college training This particular finding would seem to indicate that a student of limited abilities whose interests are in technical fields will be most satisfied (provided his white-collar complex can be eliminated) by participation in the higher levels of mechanical work. Similar readjustment, for another example, could be made in the case of one having marked interest as measured in the field of art but no creative ability The logic here is that the individual would be happy within the limits of his ability in such occupations as show-card lettering, certain forms of advertising display, and occupations of that kind The elimination of the discrepancy between measured interests and abilities may best be handled by the treatment technique of working out vocational goals in the same broad occupational area indicated by measured interests but more in line with the measured abilities of the individual, because ability is still the dominant factor in judging the individual's success If the situation were such that one or the other piece of evidence had to be dis-

regarded, it would probably be most practical to disregard measured interests and cleave to measured abilities, inasmuch as the student must succeed in training before he is allowed to enter job competition

Poor Study Habits.—This particular symptom or problem has received sufficient attention elsewhere in the literature and in the common-sense judgment of educators and teachers and consequently needs little elaboration here. Conditions of study, physical surroundings during study, the effect of certain physical defects (visual defects, etc) on study habits, laziness, and lack of concentration may singly or in combination result in the problem of poor study habits Treatment depends primarily upon the development of new habits under various effective conditions of motivation in the learning process. Mechanically study habits may be improved by adherence to a fairly rigid time schedule and by whatever penalties or rewards will assure adherence to such a schedule. A regular academic course in study methods and practice has justified itself as a most important personnel resource (15) The problem can usually be elicited by questioning the students indirectly about conditions and extent of study, about specific study difficulties with certain types of course content, and things of that sort Quite frequently the student uses poor study habits in conjunction with inadequate motivation to explain away a poor record, the assumption in the student's mind apparently being that, given another chance, he will do better Study habits should, consequently, be very carefully checked against standard measures of ability to determine whether or not an educational problem arising out of poor study habits is really to be so defined or whether or not an educational problem attributed to poor study habits is not more properly a question of lack of ability A tradition of guerilla warfare that exists throughout the educational system between teachers and students has fostered the idea of getting by, which is to some extent responsible for poor study habits. The freedom found in the college environ-

with his interests and abilities. As a matter of fact, some students would not be in the college environment were it not for the pressure on the part of the parents Often the student has recognized his own limitations far earlier than the parents and would be perfectly willing to face these realities if the parents would permit him to drop out of school and to adjust himself in the job for which he is fitted Frequently this particular condition or problem results in an apathy on the part of the student It may also result in a more serious maladjustment if the pressure is great and if constant criticism is directed toward the individual when he fails in any part of the program laid down by the parents Treatment can take several forms, two of which may be mentioned An alternative and more adequate vocational goal may be presented to the student in such a way that it wins his complete support and that he will consequently discuss it with the family as the thing he himself wants to do more than anything else. Another form of treatment involves direct contact with the parents, reviewing the case for them either by letter or by interview, explaining the bases of the various recommendations and the reason for the inadequacy of the choice that the parents have made for the student. It may be also pointed out to the parents that consistent failure resulting from a forced vocational choice may be damaging to the student's morale. The completely praiseworthy desire of parents to do everything they can for their children is often in practice a very fertile ground for student maladjustments.

No Information or Misinformation about Occupations.—A very brief series of questions in an interview will usually elicit the presence of this particular symptom Very few students have either the background of experience or the background of information to understand clearly the various duties of the jobs or occupations they are choosing This is evidenced by such sweeping generalizations as the desire to avoid monotony, the desire to avoid routine or detailed work, or the desire to travel as a basis for an occupational

choice. While present-day knowledge on the part of the counselor is usually limited as to job or occupational information, it is still usually superior to that possessed by the student If a student be asked a very simple question, "What are the differential requirements of this occupation?" he will probably flounder around contriving such things as honesty, initiative, and other generalities that are equally applicable to nearly all occupations. Very seldom will he describe an occupation in terms of real differential characteristics such as types and levels of required abilities and interests, specified types of training, job opportunities, employment demands, and similar aspects of a given occupation Unfortunately the treatment for this particular symptom or problem has in the past history of guidance taken the form of talks or lectures by representatives of various occupations, tours of industries and organizations, occupational literature, and try-out experiences As the scientific approach to job analysis progresses, there will be available more objective and quantitative estimates of differential characteristics of occupations The job description as given by V. V. Anderson in his *Psychiatry in Industry* (3), the job analysis studies of the Employment Stabilization Research Institute (39, 79; 146), and other research publications in the field are a vital part of the counselor's equipment either from the factual standpoint or from the methodological standpoint. The study again of the Employment Stabilization Research Institute of differential occupational ability patterns (39) is the first step in the measurement description of jobs in terms of human abilities and, as successive occupational groups are analyzed in this fashion, the counselor will have at his command an ever-growing body of information for treatment of the symptoms of occupational misinformation or lack of information.

Conflicts between Academic and Job Standards in a Given Occupational Area.—A few examples may make this problem clearer. In the ordinary secretarial school a stu-

dent must be able to type about 50 words a minute and take about 120 words a minute in shorthand before being considered eligible for a certificate. Yet probably not one out of ten firms or organizations demands this level of achievement from stenographic workers In this case, training standards are definitely higher than job standards. In training for the medical profession relatively little has been done in setting any value upon what is termed "the bedside manner" or that particular personality skill in handling patients that is a fairly important characteristic of success in medical practice. In this case, training requirements overlook a characteristic that may be important on the job In most courses for architects mathematics is an integral part of the subject matter to be learned by the student, yet most architectural firms refer structural problems involving mathematical knowledge to consulting engineers. In this case, training requirements attach more importance to a specified subject than does the job behavior of the prospective architect Students frequently assume that a school of business administration is designed to train managers of small retail stores Actually, it is designed to make business a professional pursuit and to prepare people for certain fields of specialization within the broader area of business. These examples could be multiplied indefinitely indicating a higher training standard, a lag in training standards, a gap in training standards, or a gratuitous assumption of identity between an academic label and an occupational label Another form of the symptom is found in the student who feels that if he could only get on the job he would be successful although he is clearly unable to handle the training that society has made the prerequisite to job competition The obvious form of treatment involves a very clear explanation on the part of the counselor of the types of conflicts that exist between academic and job standards, the methods of getting around such conflicts if the counselor feels that the student will make a satisfactory adjustment in a given occupational

area, and a clear explanation of the relation between educational and job competition. For example, it is logical to advise a student to get his occupational training in an institution whose standards are not quite so high if it is felt that the student will be a good practitioner in that given occupation. In one sense the important part of the treatment is that the counselor realize that these conflicts exist so that he can elucidate them for the student's benefit

Idealization, Romanticism, and Fadism in Vocational Choices.—In this particular class of symptoms are grouped all the illogical or irrational bases of vocational choice, ranging all the way from a family tradition to a romantic attachment for a member of a given profession transferred to the profession itself. At one time most youngsters wanted to be cowboys or railroad engineers. This is partly romantic and partly a fad After the completion of the first trans-Atlantic airplane flight an immediate fad for aviation grew up in student choices These fairly simple examples are characteristic of the basis of choice in many students Diagnosis involves the skillful use of the interview, probing into underlying interest patterns and determining whether an interest or an expressed vocational choice is romantic, idealistic, a fad, or a form of escape mechanism. Treatment involves the presentation of valid measured interest patterns and measured abilities and the presentation of an alternative that may be made satisfying to the student or come to be satisfying to him after a try-out in the recommended occupational area.

Use of a Job Label to Achieve Other Aims.—Some students will pick a particular job label as a choice in order to satisfy drives quite distantly related to the job adjustment itself For example, many of the children of immigrant families will choose one of the higher level professions because of the economic security and social prestige that is assumed to inhere in such professions The desire for economic security and social prestige growing out of the practice of a profession is again a direct reflection of the

assumption that education is a form of unemployment insurance or the uplifting agency in society. Similarly, many students select a particular occupation as an escape from certain realities, as a vehicle for superficial and transient interests, or as a part of their notion of social acceptability. Treatment again involves a clear presentation of the differential types and levels of the abilities possessed by the individual and an uncovering for the student of the real basis for a particular occupational choice. In many cases it is necessary to let the student stumble in his own occupational choice before it can be brought home to him that the choice was based on irrational and secondary motives.

No Vocational Plan.—This symptom of complete vocational disorientation may result from lack of experience on the part of the individual, disinterest, apathy, lack of information, or it may be a normal, adolescent phenomenon The problem may be complicated by the inadequacy of the tool of interest measurements. In other words, either the student may have no vocational choice of his own or the interest measurement itself may not show any valid area of interest. One form of treatment is directed at an evaluation of hobbies, recreational activities, avocational interests, and other experiences in the individual's past so that some compromise or tentative goal can be arrived at Another form of treatment may be the use of the try-out method either in selected courses or in job experiences to provide a similar, tentative plan for a trial on the part of the student. In some cases a multiplicity of minor and unrelated interests may preclude the possibility of a dominant vocational choice The counselors should not try to solve every one of these problems by providing a vocational choice for the individual, inasmuch as some people will always be satisfied with maintenance jobs or a fair amount of transiency in their occupational adjustment.

Overspecialization in Vocational Choice.—The opposite of a complete lack of choice is to be found in the student

who has picked out a particular job in a particular organization in a particular place and has assumed that training will guarantee him such job activity. In many cases training cannot be provided for the student's choice in the institution in which he is enrolled In other cases, even if training could be so provided, the narrowness of choice leads to too intensive specialization on the part of the individual at the risk of decreasing his versatility as a potential worker. The treatment is in part a question of pointing out the danger of this loss of versatility and presenting it to the student so that it will convince him of the advisability of broadening his educational base

Failure to Relate Education to the Job Adjustment.—A common characteristic of students is frequently the assumption they make that what they do in the educational system has little bearing on what they will later do in job adjustment An example of the symptom may be seen in the student who is having a good time while he can and leaving his occupational adjustment to take care of itself In so far as employers review the academic record of the individual, it becomes necessary to make the student aware of this so that his educational record will not be a distorted or undersized picture of what he may do Another form of the symptom is found in the student who can see no relation between a particular item of information acquired in the classroom and later job activity. In some cases this lack of insight on the part of the student is a valid criticism of education; in others it is an excuse for his own inability to master a certain segment of his training. The treatment again is the logical process of making the student see the relations between education and job activity.

Job Opportunity with Different Ability and Interest Patterns.—Some students find themselves with a job opening upon completion of training. This job opening is often dependent upon completion of a specified type of training that may not be consonant with the individual's abilities or interests If the discrepancy between the individual's

abilities and interests and the type of abilities and interests required on the prospective job is too great, academic failure may naturally result. If the discrepancy between the interest pattern required by the job and the interest pattern of the individual is too great, the individual may find his training extremely distasteful and may express himself in extracurricular activities and other forms of outlets If the student cannot be convinced of the advisability of dropping the job opportunity or if, in the counselor's mind, it does not seem fair to the student to ask him to drop the job opportunity, then substitute satisfactions must be set up by the counselor for the student so that the maintenance activity of the proffered job may not too seriously impair the student's subsequent social and emotional adjustment. Another form of this symptom is found in the student who has a job opportunity but no enthusiasm for the opening whatsoever. Many students who are to follow into the father's firm, for example, fall in either of these two categories, and the extent to which the counselor must compromise the ideal adjustment with the reality of the available adjustment cannot be determined by blanket prescriptions. Too wide a discrepancy between the job opportunity and the individual's job pattern naturally leads to serious maladjustment. It becomes the duty of the counselor first to determine whether or not the prognosis is one of maladjustment in such cases.

In general conclusion to this description of symptoms or signs in the vocational area, it should be repeated that it overlaps and duplicates certain symptoms in the educational area This duplication is in a way unavoidable inasmuch as one of the dominant functions of education is to prepare for occupational adjustment. It should also be pointed out that many of the symptoms or signs are to be discovered only by the use of measurement techniques. The availability of such techniques and the familiarity of the counselor with them will in part determine whether or not these symptoms or signs are isolated in the counseling situation.

In this vocational area particularly, the list is not complete and the symptoms themselves are occasionally different forms of the same underlying drive on the part of the student; but, as was mentioned earlier, the point of reference for the counselor must determine whether a given condition is a problem, a symptom, or a sign. No claim is made for the finality or the exclusiveness of the classification employed in this area.

SOCIAL-EMOTIONAL-PERSONAL

Personality Traits Precluding Life or Job Adjustment.—In this and succeeding problems in this area the counselor is coming close to the poorly defined borders of his own sphere of activity. The activities of the psychiatrist and the social worker and the student personnel worker begin to fuse in these problems, and the availability of the services of a psychiatrist or a social worker in a particular institution, in addition to the counselor's own skill, will determine how far he trespasses upon these other fields It is obvious, however, that certain marked deviations of behavior forms will often have a bearing on the educational and vocational adjustment of the individual without falling in the danger zone where the psychiatrist or the social worker is the only remaining treatment agency The individual who worries excessively, the markedly egocentric individual, the extremely shy individual, and many other such types are particularly liable to unsatisfactory educational and vocational adjustment. Serious lack of morale, marked feelings of inferiority, and lack of various social skills are all part of this picture If psychiatric referral is not necessary, many of these behavior forms may be cleared up by retraining; others clear up automatically upon being pointed out to the student; some involve a long-time process of new habit formation Occasionally an individual has marked interests in various forms of contact jobs such as selling, social service work, and things of that sort, but is prevented from getting an outlet for these interests by unusual shyness

or by a definite lack of social skills. Here reliance on measurement evidence alone, without taking into consideration the various clinical signs and interview evidence of social and personal adjustment, would be a very near-sighted form of counseling. If the counselor finds it possible, the best form of treatment in these cases is found in referral to specialized agencies better able to cope with such problems in the student. The counseling function here is primarily the isolation of the symptoms or the diagnosis of the existence of the problem preparatory to treatment. In addition, the counselor has the function of explaining to the student the importance of the symptom or problem isolated in so far as occupational and educational adjustments are concerned.

Inappropriate Socialization.—Many students coming from the high-school environment to the college environment find that their social activity is markedly curtailed because they are not so well known, because they are less important as freshmen than they were as high-school seniors, or because the newness of the situation upsets them emotionally The difference in amount of social activity may become a very severe social worry for the student. It may set up feelings of uncertainty that ramify into other areas of his adjustment, causing problems in these other areas. This is often a temporary or transient condition that will be cleared up in the course of time as the student makes new friends and finds new sources of social contact. A more serious form of the problem is illustrated in the individual whose entire past record from high school and earlier indicates marked undersocialization. Such undersocialization has a bearing on occupational choice, naturally, but a more serious consideration is found in the fact that most counselors or educators seem to believe that such individuals should be forced into an abnormal amount of social activity to compensate for their undersocialization. Not all students who are undersocialized in the traditional sense are necessarily maladjusted or unhappy. They may have recreational and

avocational outlets which are more than adequate compensations for a deficiency in the usual type of social intercourse. The counselor's only point of reference here should be the extent to which the given degree of socialization makes for a satisfactory life adjustment. If increased social activity seems desirable the student should be brought into situations where the increased social activity is possible. But the forcing of social activity simply for the sake of social activity has never been shown to be a valid treatment technique. The more usual form of this inadequate socialization, inappropriate socialization, is illustrated in the oversocialized individual, the student for whom education tends to interfere with social activity. This oversocialization may be a reflection of the fact that the educational situation has never dominated the student's interests so that compensatory activity has been sought in the social area, or it may simply be an expression of the individual's dominant life style or preference. Unchecked and unregulated socialization will probably lead to academic difficulties but, if checked in time by the substitution of a more acceptable goal from the standpoint of educators, the oversocialized individual may work out his own problems with no conflict with the academic system.

Sex Conflicts.—In spite of the liberalization of the curricula and other educational advances, sex education is still primarily a back-alley function in the present social order. It often becomes the duty of the counselor to furnish sex education on an individual basis in the interview situation. Various figures have been checked on the incidence of sex problems and sex maladjustments not only in academic populations but in society in general. The accuracy or validity of these figures does not become a primary concern here The most important question for consideration here is that the counseling situation should be absolutely amoral, nonethical, and nonconventional to the extent that the counselor must be able to listen to anything that the student has to say without the appearance

of being shocked or upset and without any other form of behavior that would indicate to the student that the counselor is passing judgment on the story he is telling. Summed up more briefly the counseling situation must be characterized by absolute objectivity in order that the student may find in the interview the freedom he will find nowhere else in the academic situation. The handling of sex conflict, as is the case with the handling of other problems in this particular area, is best left to specialists in the field The function of the counselor is to probe, to isolate, to objectify, or to diagnose such problems before referral

In general conclusion to this rather limited section on social, emotional, and personal problems, it must be pointed out again that the counselor here should call upon specialists in a cooperative approach to the student's problems. It is absolutely essential that the counselor have the mental-hygiene viewpoint, but it is impossible for him to have the psychiatric skills necessary for the satisfactory treatment of these problems. Psychiatric referral should be used only when other problem areas are carefully cleared as possible sources of maladjustment, and psychiatric referrals should be accompanied by objective description to the student of why such techniques are being used in his particular case, in order to avoid the stigma that may be attached to such referrals

FAMILY

Sibling Conflict.—This and succeeding problems have been grouped into one area because they have as a common characteristic their origin primarily in the family situation The presence of brothers and sisters in the family group *may* lead to various maladjustment problems. Favoritism on the part of the parents toward one of the children, continual discord between children, the domination by older brothers and sisters of a younger child, the development in any individual child of feelings of inferiority, either because of invidious comparisons made between him and other

children or because the child himself recognizes the differences existing between him and his brothers and sisters, are all possible situations in which a maladjustment may arise The symptoms can be spotted only by use of the interview or the social case-work method as the tool of analysis and only after other possible sources of family maladjustment have been eliminated In severe cases this and other family maladjustments become questions of psychiatric referral One approach in ordinary interviewing treatment is to objectify the problem for the student and to make him realize the state to which the conflict has brought him, which may be a state of overcompensation, of apathy, of dislike of the family, or of clear feelings of inferiority which lead to a letdown on the part of the individual Once the conflict is objectified and presented to the student he may cease to feel it so keenly as an individual question and may then be brought to the point of compensating along socially acceptable lines in accordance with his interests and abilities It may be necessary to go directly to the family and present the conflict to them so that any conscious or unconscious behavior on their part intensifying the situation may be corrected

Split-family Situations.—Separation, divorce, or remarriage frequently cause children to be maladjusted because they are forced to take sides in the family split, or are left to their own devices, or dislike the stepparents The situation can be isolated on any basic information sheet from the socio-economic data which are assembled for a particular case. Treatment techniques here, as in all family problems, are fairly limited. Beyond objectifying the problem for the student, beyond pointing out its probable effect on his present behavior, there is little that can be done except to teach the student to be resigned to the fact that until he is economically independent of the family, the source or environment of maladjustment will always be with him With this attempt to bring resignation there may also be an attempt to provide substitute satisfactions

or activities which keep the student so far as possible out of the unsatisfactory home environment or provide him with the successes and goals which he needs to make a happier adjustment.

Overdependence on the Part of the Student.—The child who remains tied to the family apron strings into the late adolescent period of university entrance presents a problem of immaturity and lack of sure-footedness that may be hard to overcome. The symptom or sign is difficult to isolate clearly. It may be apparent in indecision about his educational and vocational plans It may be apparent in a frequent use of the mother's or father's opinions to back up what the student is trying to believe. It may be a fear of facing responsibility or a fear of failure on the part of the individual that keeps him tied to the family situation. Treatment is difficult again. It is usually a question of weaning the student away from this overdependence by the formation of new habits, by forcing decisions upon the individual, by placing greater responsibility upon his shoulders

A Difficult Transition to Independence.—The previous symptom, that of overdependence on the part of the student, differs from the present symptom in that it is confined primarily to the student's behavior In the case of a difficult transition to independence either the parent or the student may be the dominant factor. The parents may be holding the child to their side by various techniques or the student himself may be having difficulty in making the transition which he knows must be made The signs indicating the presence of this particular condition or symptom may be found in such restrictions of the student's activity as forcing the student to come to the parent whenever he needs money, refusing to allow the student more than a very limited number of nights out each week, refusing to allow the student the use of the family car, or various other disciplinary forms which are well intentioned but often misdirected. Not only are the recreational activities of

the student curtailed or dictated by the family, but often the vocational and educational plans of the student are similarly prescribed by the family with little consideration of the student's own potentialities Treatment here may include a direct attack on the family situation by means of interviews with the parents. It frequently is useful to suggest to the student that he demand to be put on a strict financial allowance. In extreme cases it is often necessary to arrange that the student complete training where he will be partially, at least, independent of the family domination

Serious and Overt Family Conflict.—In many instances of family problems the children never verbalize their complaints or take any overt steps to assert their individuality. The conflict may exist without any knowledge on the part of the parents, and the student may talk about it only infrequently and then to someone in whom he has confidence On the other hand, there are other cases in which the conflicts are brought out into the open with consequent arguments and discords. For example, the student may rebel violently against the educational and vocational plans that are being made for him. He may complain bitterly about the limited finances allowed him, he may actively disregard the religious faith of the family or have marked conflict over religious viewpoints and make his conflict apparent in the discord following upon any interruption of the delicate personality adjustment within the family situation. Finally, he may argue, perhaps validly, about differences in standards of social conduct, politics, choice of friends, conventional and unconventional behavior, and things of that sort. These various problems differ little from other problems mentioned in this section The main difference is that they are overt and constitute a source of discord between all members of the family rather than being walled up in the student's own behavior and hidden from other members of the family. Treatment of the symptoms differs little from the treatment outlined earlier in the section

In general conclusion to this particular area it should be evident that maladjustments whose origins are found in family situations are difficult to get at simply because the family environment plays such a large part in the individual student's life. The social order is so arranged that incompatibility between parents may be used as grounds for divorce, but incompatibility between children and parents is impossible to clear up by the same method. Family maladjustments grow out of the well-intentioned but misdirected efforts of parents to do things for their children according to one set of standards that may not be applicable to the individual child. Family maladjustments grow out of the desire on the part of the parents to have the child fulfill unfulfilled parental ambitions Some family maladjustments grow out of conflicts that are in many cases irresolvable Beyond objectifying the problem of the student by showing him that it also exists with many other students, beyond contact with the parents in an effort to change the conflict situation, and beyond an attempt to suggest resignation or substitute satisfaction, there are few effective methods of treatment.

PHYSICAL OR HEALTH

General Poor Health.—This particular condition in students results in the phenomenon known in industrial psychology as absenteeism or frequent nonattendance because of chronic and mild illnesses such as colds or other transitory physical conditions. The condition itself may be a symptom of more serious physical maladjustment, and the counselor in treatment should make use as soon as possible of the available medical facilities of the institution in which he is working

Residual Defects.—This particular condition refers primarily to the behavioral sequelae of various diseases such as the postencephalitic condition, the behavioral effects of glandular disturbances, and similar conditions following upon malfunction of the organism. Beyond his limited

familiarity with the symptoms of these various diseases the counselor must again fall back upon the services of the medical practitioner for a thorough diagnosis and treatment of such conditions

Specific Physical Defects.—In this particular group may be placed eye defects, hearing defects, speech defects, and other defects of the motor or sensorial equipment of the individual organism Corrective treatment by specialists is the obvious form of treatment in such cases, and again the counselor needs little more than the limited knowledge necessary to recognize or isolate the presence of such conditions Speech clinic treatments, eye examinations, fitting of glasses or mechanical hearing devices, and treatments of that sort must be suggested in such cases

Limiting Physical Handicaps.—Heart conditions, various forms of paralysis, mutilations by accidents, and other allied impairments of normal bodily functions are placed, somewhat arbitrarily, in this group Their main significance is found in the limitations they impose on the educational and vocational plans of the individual Many of such limiting physical defects are impossible of correction, and consequently can only be allowed for in the educational and vocational analysis of the individual. In many states the state government has set up funds and training programs for the rehabilitation of physically handicapped people, and the counselor must have at least a working familiarity and contact with the plans that exist in his particular state for treating such cases It is purely a matter of opinion as to whether or not color blindness should be located here or in the area of specific defects, but it serves as a good example of a limiting factor in the educational and vocational plans of the individual inasmuch as it automatically precludes certain occupations where differentiation of color is a primary requisite. Similarly a permanently injured hand will preclude the possibility of many manual occupations or blindness of one eye will preclude the possibility of various forms of employment In some cases these limiting phys-

ical defects that make for semifitness in the employment situation impose an unnecessary hardship on the individual in that he is so classed only because of a superficial and observable condition of the organism. Many workers, who would be technically known as semifit from the standpoint of workers' compensation or other forms of employee insurance, may actually be very careful workers and much less prone to accidents than those workers in whom no such defect is observable. Studies of liability to accident among the apparently sound individuals show an unusually high concentration of accidents among an unusually small proportion of the working group In many instances it is unfair to consider a person with a limiting physical defect as a greater employment risk than an accident-prone person who is apparently physically sound. However, because of the increased compensation that would result from the injury of a person already injured, since it may lead to permanent disability, employers often steer clear of people with limiting physical defects. It is primarily a compromise technique whereby the ideal occupational adjustment for the individual is recast in terms of the practical employment limitations of his handicap.

Severe Physical Handicaps.—There are certain people who are seriously unfit for occupational competition because of their physical condition. They will always be semidependent or completely dependent either upon the family or upon some other institution of society. In such cases guidance itself, in terms of educational-vocational potentialities, is inadequate and an effort must be made simply to find some form of activity that will keep the individual as well adjusted as can be expected in this state of semidependency or total dependency.

Persistent Worries about Health.—This particular condition or symptom is placed here although it might more properly be placed in the area of social, emotional, or personal maladjustment. It is usually the symptom of a more deep-seated maladjustment, but its signs are fairly easily

recognizable in terms of the student who worries excessively about his health or who blames a poor showing upon health factors that may or may not have any relation to his achievements Treatment may involve a thorough medical examination to prove the absence of any physical condition that is not conducive to satisfactory work It will then involve a reeducation of the individual so that he ceases to excuse himself on the basis of possible ill-health for a bad showing and is brought to face whatever reality underlies the hypochondria as a symptom.

In general conclusion to this discussion of the health or physical area it is quite obvious that the counselor is limited in his classifications and groupings by his superficial familiarity with medical science. There may justifiably be any amount of revision of the symptoms or conditions that have been grouped in this area. The important thing, however, is that the counselor make very sure in his work that health or physical conditions are not causal factors in the maladjustment of the individual with whom he is working Since it is relatively easy to determine these physical or health factors, if medical resources are available in the institution, this is frequently the first point of attack with a student suspected of maladjustment Here the cooperation of medical men is quite essential, and the counselor will find his work markedly handicapped if he lacks facilities for the medical examinations of his students.

SUMMARY

In all, six possible areas of maladjustment have been outlined in the preceding pages, with groupings of symptoms, signs, or conditions in each of the broad areas Again it should be pointed out that any attempt to classify the dynamics of human behavior leads to an arbitrariness and an abstractness that distort the picture to some extent The possibility of cross reference in the problems outlined from one area to another indicates quite clearly the hopelessness of making a final classification of student problems

The only justification for such a classification is that it may serve to instill a certain orderliness in an otherwise chaotic mass of student behavior. Counselors will find that habits and defense mechanisms, previously useful to the organism, will drop out of the organism's total behavior with great difficulty even though their usefulness has been far outlived Counselors will find that their original diagnosis will be upset by the appearance of a problem that was either not present in the original diagnosis or that went unobserved in that diagnosis. Actually no student case is ever completely closed until it passes beyond the time horizon of the counselor, and even then it is closed only by virtue of practical difficulties involved in follow-ups beyond the schooling period and not because the case itself has reached perfect adjustment. In one sense perfect adjustment is impossible to achieve because the organism is always being faced with new situations involving the necessity of new adjustments, unpredictable at the present, but possibly fertile fields for later maladjustment on the part of the individual. Admittedly it is dangerous to set up classifications because they lend themselves too readily to uncritical use. In spite of all these qualifications and reservations the foregoing classification system has been presented in some detail in order, first, to emphasize the complexity of student case work and, in the second place, to set up lines as orderly as possible between different areas of student activity

The symptoms, conditions, or signs outlined are the most frequently appearing danger signals in individual cases They have evolved out of the diagnosis of student problems, which diagnosis in turn has been based on the clinical analysis and synthesis described earlier. In so far as these are described as isolated problems the reader may possibly overlook their groupings in the actual cases of individual students. In the next chapter we shall present a number of actual case histories which will illustrate the characteristically complicated grouping of problems as they actually occur in the counseling room.

PREVENTIVE WORK

In conclusion, there is one other aspect of student personnel work that may well be treated in this chapter It is the aspect of the prevention of student maladjustment Earlier it was possible to indicate parallel analogies with medical practice in illustrating the points made in the procedures of diagnosis, treatment, etc. Here again it is possible to revert to this medical analogy to introduce the present topic. In medicine periodic health examinations constitute one possible form of preventive work. In the field of public health, periodic inspection of water and milk supplies, periodic food inspection, and various forms of epidemic control by inoculation, isolation, or various diagnostic medical tests are well-known preventive methods. Industrial hygiene, as carried on by private firms or corporations, and free health clinics maintained by private or public support may also be cited to illustrate preventive aspects of medical science. Closely allied, of course, with these various methods is the propaganda being used to further the cause of mental hygiene All these various methods grow out of a realization, on the part of the medical profession, that disease or illness can and should be controlled and prevented. In student personnel work certain obvious parallels present themselves Periodic examinations, cumulative case histories, continuous counseling and testing for growth may be cited as parallels. Curricular adjustment to student needs is another educational device that parallels medical practice in the prevention of disease. Well-established faculty and student relations permit the possibility of preventive work in student maladjustment Adequate student social life and organized extracurricular activity suggest methods of preventing student maladjustment Parent education should become increasingly important at all age levels so that student maladjustment that is due to family pressures or to erroneous assumptions in the family situation may be prevented Financial aid to

able and deserving students is also useful in preventing maladjustment in those cases where society could profitably train certain individuals for leadership in various areas.

If such parallels were more fully developed, it would become increasingly apparent that prevention, not only in medicine, but in student life, is dependent to a marked extent on prevention in the broader social and economic areas in which medicine and education play a part. While one of the basic objectives in student personnel work is the matching of the abilities and interests possessed by the student with the abilities and interests required in a particular occupational area, it is obvious that certain economic and industrial conditions may complicate or completely block this matching procedure as an effective technique in guidance. Certain industries are not at present organized to utilize or need a high level of mechanical ability (79). There may be more jobs utilizing average or low ability than there are people with corresponding levels of such ability (12) Conversely, there may be more people with superior levels of ability than there are jobs requiring these particular levels. The present organization of industry with its specialization and division of labor has resulted in a serious discrepancy between the levels of abilities available and those actually needed. Beyond this, the process of matching the individual with his job is complicated by the fact that society's ability to pay for certain occupational services does not necessarily reflect society's need for such services. For example, the present 56 dentists per 100,000 population cannot provide adequate dental care for society; between 99 and 179 are needed, but, in terms of capacity to pay on the part of society, these 56 per 100,000 may represent an overcrowding of the profession (83). Since vocational counselors have no control over these basic economic conditions, to what extent should they encourage students to prepare for certain professions or vocations in view of this discrepancy between capacity to pay and actual needs? Furthermore, reliable data regarding the number of workers needed are available for very few occupations

or professions. The United States census figures, invaluable as they may be for interpreting long-time trends in occupational distribution, do not afford adequate indices of the number and kind of workers needed by industry, business, and the professions.

Another limiting factor in student personnel work is that the student, for the most part, is being counseled at the beginning of a training period that will last from about two to eight years What assurance can the counselor give the student that at the end of the training period he will find a place for his services in society? Earlier in the chapter the conflicts between training standards and job standards have been pointed out There again it was found that the economic and educational systems are somewhat out of step with guidance practice.

Some counselors attempt to solve the problem laid down by these economic restrictions by enlightening students, by stimulating basic research, and by educating the public to a better understanding Such workers hope to bring about a solution through agitation for a public demand for planning of employment needs, financial incomes, and occupational trends A few other counselors hold to a frank realization of the probability of continued oversupply of labor in all occupations and the consequent postponement of the age at which youth may enter upon economic competition. It has been proposed that students be kept in school longer, for example; and that this additional training period be given over to training in citizenship, in an intelligent understanding of present-day technology, problems of government, and appreciation of cultural values. There is, of course, a danger of resignation when youth is told that the days of overnight success are gone never to return and that subsequent generations must adjust to the expectation of permanently curtailed financial income If this be true, vigorous attempts must be made to establish new values in place of the old ones growing out of the dollar sign

One other solution has been suggested. It is characterized by the word "versatility." The adaptability of the

human nervous system needs to be reemphasized, and the student must be taught to make it supply two strings to his bow. Those who counsel students would agree that in many cases vocational choices are too rigid, too specialized in view of technological changes and the actual distribution of abilities and interests Many students seem to think that each human being inherits the ability to engage in only one type of activity. Too little significance has been attached to the data on occupational shifting of college graduates For example, Johnson (66) has shown that graduates of one type of professional training actually do shift to other fields of work with subsequent success. This fact would argue for a community of training values in different curricula, for potential versatility among students, and therefore for less rigidity of occupational choice. But on the other hand, the principle of versatility has its limitations in the distribution of abilities and the amount of time available for training As an extreme case, not everyone can or should train for medicine as a form of insurance against unemployment in engineering. This absurd extension of the principle does not do justice to the basic idea behind the concept of versatility, but it indicates the necessity of delimiting the counseling at some point.

These points have been made to indicate the fact that while one of the many social institutions may move ahead at a differential rate, sooner or later the entire social order must move ahead if the institution under consideration is to develop to its fullest extent. The answer to the points raised are not yet known and may never be known. The questions themselves are stone walls against which counselors may waste their efforts fruitlessly. A recognition of the need for prevention in the economic system and the social system at large does not mean that one must be necessarily hopeless about student personnel work, but simply that one must operate within the limits laid down by the present organization of society.

CHAPTER VIII

ILLUSTRATIVE CASE HISTORIES

In the preceding chapter we outlined the more important problems encountered in guidance and for convenience organized these in a somewhat artificial classification of problem areas. It was emphasized in that chapter and may be repeated here that we were discussing the problems abstractly and not as they actually occur. In actual practice each case presents its unique combination of elements from several areas and for adequate diagnosis and treatment must be considered as *sui generis*. We can best illustrate the infinite variety of these combinations, together with the often baffling confusion of the problems actually encountered in counseling, by outlining the histories of concrete cases taken from the files of the University Testing Bureau.

In summarized form, the case histories here presented will perhaps give the reader a misleading impression of simplicity. Once the work of diagnosis on a case is completed the recommended treatment may, indeed, seem obvious enough, but only the person who has had a considerable experience in counseling will be able to appreciate the extreme difficulty of discriminating between the significant and the worthless in appraising the mass of details originally assembled on each case. An apparently trifling item of information may be of critical significance, an apparently significant fact may prove to be of merely marginal importance. Much of this work of discrimination and judgment is unrecorded in any form; it goes on in the mind of the counselor at a pace too rapid and with processes too complex for ordinary record taking. This is not to suggest that such judgments partake of the nature of clairvoyance.

There is nothing mystical or supra-rational about the business; it is simply a matter of forming swift judgments on the basis of wide experience in dealing with somewhat similar problems. The counselor does, however, record as many of these judgments as he may consider to be useful, and even in this condensed form the data thus assembled on an ordinary case form a folio of information too voluminous and too confusing for the ordinary reader. The reader should therefore gratefully remember that in all except the first of the following case studies he is being spared a vast accumulation of data which proved irrelevant. But to give the reader a sense of the chaotic character of the raw and undigested material which may be assembled on any case we shall first outline in something like their original confusion the facts assembled on the case of William Greene.[1]

WILLIAM GREENE — CASE NO. 4-7-33 A 35

William Greene came to the bureau as a sophomore in the Arts College although he had been in residence at the university for seven quarters distributed over three years He was registered in the premedical course but indicated that he had little interest in this or any other course. His scholastic record in college was unsatisfactory; his grades were mostly *C*'s and *D*'s with a good many failures Some of his failing courses he had repeated and failed a second time He was undecided vocationally and designated his own problem as "doubt as to correct course of study."

The student filled out the usual basic information sheets indicating that in high school, where he had maintained a *C* average, he had liked his courses in English, chemistry, and manual training and had disliked Latin and zoology. He had taken some interest in high-school football. His occupational experiences included one year of retail selling in a store, one year in an oil station, and another year of office work with a retail credit company He liked the last experience "due to the responsibility." He listed ten occupations in which he claimed an interest: newspaper work, medicine, dentistry, engineering, aviation, "movies," "speculative business," "research," truck driving, testing cars or planes. He characterized himself as subject to nervousness, headaches, exhaustion, speech difficulties, tingling in hands and feet, frequent periods of depression. But his health-service report indicated no important physical defects.

[1] The names in all these histories are, of course, fictitious.

At the time the student entered the university he had taken the usual entrance tests and had a percentile score of 87 in the college aptitude test and a percentile score of 81 in the English section of that test His relatively high performance in these tests did not correspond with his college grades

The student was given Strong's Vocational Interest Test and scored a *B* as chemist, physician, office clerk, purchasing agent, Y.M C A physical director, and *B*— as personnel manager Strong's test, like every other test, should never be used in isolation and apart from corroborative case data In this particular instance the test was chiefly useful in pointing out a negative symptom The conspicuous absence of any marked vocational interest, and the presence of a number of weak, unrelated, marginal interests puzzled the counselor and led him to suspect that this apparent apathy was due to some obscure emotional problem As the case later developed this suspicion proved well founded

In the first counseling interview the student accounted for his poor record by admitting that he was lazy and that he had cut classes a good deal. In German, for example, he would cut the class when unprepared, and when he began to cut classes, the work seemed to pile up He failed the course He belonged to a fraternity which absorbed a good deal of his time

In the second interview the student was more talkative. He explained that he happened to be preparing for medicine chiefly because his parents had always talked medicine to him He had little interest in it himself The one thing that really interested him was newspaper work, but that was out of the question since his parents were anxious that he should be a physician Although his grades in composition were not high he declared he enjoyed this course more than any other. He complained of not being able to remember what he had learned, and seemed relieved when the counselor assured him that everyone has that experience The interviewer's notes conclude: "Greene seems to be taking his problem quite seriously now He knows his trouble is his lackadaisical attitude toward his studies, but doesn't know how to overcome it Feels that it is useless for him to continue in school unless he gets some 'spark' Gives a very favorable impression and seems self-assured Yet I noticed sudden lapses into feelings of inferiority and on all the information blanks relating to 'personality' there are evidences of considerable emotional instability But I did not suspect this from his behavior in the interview" A personality test given later tended to support the interviewer's belief that the case was complicated by personality factors. He had almost no confidence in his ability

An interview with the parents confirmed the student's description of the parental influences at work in determining his vocational choice. William was an only child The father was a lawyer engaged in an insurance business. He was now perfectly willing to allow his son to shift to some other occupational goal and felt that the boy had been supervised too much at home by his mother. A later interview with the mother elicited important new facts: "Mrs. Greene has the feeling that William may have something wrong with him physically which explains his lack of self-confidence He is self-conscious of his height and of the large size of his hands and feet She says that when he was a freshman he wrote a theme which she saw revealing this embarrassment. She also indicates that he hides these feelings by 'wisecracking' about his physique. In the course of the conversation she remarked that when William was eight years old he was tested by a Stanford psychologist and was reported to have a very high I Q. This may be important" (The quotation is from the interviewer's notes.)

It developed that the Stanford test was one administered in Terman's early (1921–1922) study of 1,000 gifted children. His I Q. was given as 150, which, of course, would place him among the upper 1 per cent of the general school population. On the Stanford achievement tests he rated as follows: reading, ninth grade; arithmetic, eighth grade, language, tenth grade; spelling, seventh grade, nature study and science, tenth grade; history and civics, sixth grade; literature, eleventh, all-round information, ninth grade These, of course, were remarkable scores for a fourth-grade pupil. But, amusingly enough, his teachers' ratings of the quality of his school work on a scale of 1 to 7, 4 being average, ranged from 2 to 4.

What was the explanation of the great discrepancy between this student's extraordinary ability and his poor scholastic record? From the very first it was plain that he had very little confidence in his ability. At home his failures were rather severely criticized and he was allowed to develop a habit of depending upon others. His feelings of inferiority were obviously aggravated by his consciousness of physical peculiarities, the importance of which he tended to magnify He had never been told of his remarkable scores in the Stanford tests and was inclined to discredit any reassuring statements from others This student simply had no adequate idea of his capacities and he mentally resisted all efforts at enlightenment One might think that intelligence of so distinctly superior a type would manifest itself at least occasionally in the course of his college career. But this student had never really attacked his studies with any assurance, his capacity for effort was paralyzed by his irrational conviction of inferiority. He was—without being aware of it—haunted

by the drooping image of his inadequacy The counselor was well aware that any attempt at reeducation would require prolonged attention since the attitudes and thinking habits acquired over a period of many years would have to be overcome Psychiatric treatment in this case proved ineffective

With the approval of his parents the student was urged to change his course Because his interest in journalism appeared to be the *only* strong interest the boy had, it was recommended that he prepare for work in that field He received the recommendation with enthusiasm However, because of his poor scholastic record—he was lacking 75 honor points—administration authorities made his admission to the School of Journalism contingent upon his maintaining a *C* average He acted upon this advice The change in course naturally disarranged the student's program from the point of view of credit requirements, course prerequisites, sequences, etc , but the counselor pointed out that a college degree might not be absolutely necessary for work in the newspaper field The student was advised to pursue courses in composition, literature, history, and sociology which would supply him with a useful background for newspaper work He acted upon this advice and his scholastic record slowly improved, though not sufficiently to warrant his admission to the courses in journalism The slowness of this adjustment was not to be wondered at, it would, indeed, have been strange if this deeply rooted conviction of inferiority had disappeared overnight

The student did not return to school in the following year Two years later he was invited to come to the bureau for a follow-up interview At that time he was engaged in sales work and said that he was quite happy in it although he still believed he might be able to get into newspaper work He had in fact tried to obtain employment with several newspapers and had even volunteered to sweep the floors of a newspaper office His parents, who had ceased to exert pressure on him, were rather pleased at the adjustment he had made He had matured considerably since the time of his leaving school and apparently had acquired more confidence in his own capacity.

By no means every case has a happy ending While from one point of view this student has made a comparatively satisfactory adjustment, he is still far from achieving up to his capacity Here was a student who was capable of intellectual work of a very high order but who, because of an emotional disturbance which was too long neglected, failed to realize and exercise his unquestionable ability Had the problem been diagnosed earlier and had the parents and teachers of the boy recognized his superior ability and encouraged him to make use of it, there might have been an entirely different case history to

record The "moral" of the case is that genius does not always find its own way unaided

WALTER SAWYER CASE No 10-7-34 A 36

We have in the following case a well-marked example of a student with only average ability but with a very definitely crystallized pattern of interests which had long been neglected This student was twenty years of age at the time of his first contact with the University Testing Bureau and he had spent four years at the university in premedic work. Because of his poor scholastic record he was still classified as a sophomore. His premedic grades included a number of *F*'s and the balance of his grades were *C*'s and *D*'s He seemed to have his greatest difficulty with courses in chemistry, physics, and German The student had considered the possibility of transferring to the School of Business, and was referred by a business-school adviser to the bureau for advice and recommendation as to his vocational choice

The student had had only three months' occupational experience in odd jobs. In his recreations and social life, he gave evidence of satisfactory social habits and adjustments He belonged to a fraternity and took some part in athletics. He said he could never become interested in his premedic work and that his study habits were very poor. His father was a physician and his parents were separated This family situation did not affect him emotionally but it did cause a financial problem which made his future residence at the university rather uncertain He listed as his occupational preferences: investment business, banking, medicine, hotel management, merchandising, advertising, and manufacturing

According to his college aptitude test rating, he had about average academic ability. His scores on the general culture test represented a low average achievement compared with Arts College students who had two years of college training. His deficiencies were especially marked in composition and literature. In the general science section of the culture test he had a percentile score of 93, using Arts College sophomore norms, and a percentile score of 61, using premedic norms. This rating although good was not unusual, considering his long exposure to the subject matter of the premedic course His test records indicated that despite four years of Arts College work, he was a consistently average student for the academic competition he was facing On the other hand his special clerical aptitude was well above the average of successful business workers engaged in various types of office work; and when given Strong's Vocational Interest Test, he showed a pattern of significant interests in commercial occupations, an auxiliary pattern in social activities, and no professional interests in any form of technical occupation. Since his interests all pointed to some commercial type of occupation, it seemed advisable

to recommend a transfer from the premedic to the prebusiness course. The transfer was approved.

The bureau had a follow-up interview with the student one and one-half years after the date of the bureau's first contact with the student. Because of financial difficulties he was unable to finish in the School of Business, since that would require an additional year of work. He therefore chose an Arts College major in economics and if he maintains his grade average in the Arts College he will be graduated at the end of the current school year. His grades in economics and business subjects were distinctly better than in premedic courses. In the first year after changing his course he received a *B* average. Although his average dropped a little after the first year, he was well pleased with his new vocational choice. This case well illustrates that class of problems wherein the individual has chosen or has been forced into training not in line with his abilities and interests and, consequently, has failed to find either success or satisfaction in his professional training career. The student's statements in the follow-up interview give subjective evidence of greatly increased satisfaction and interest in his work. Added to this we may note a measurable increase in scholastic achievement.

Horace Bacon — Case No. 838-4-33 A 37

This student was referred to the University Testing Bureau by a faculty member who was acquainted with his family. At the time of referral the student was sixteen years old, had just been graduated from high school, where he had made a brilliant scholastic record, and was planning to enter the university at the beginning of the school year. He had been referred because he was undecided as to his vocational choice. This indecision was chiefly due to the wide variety of his interests. The father held a college degree and the mother had had three years of college work. The home environment tended to encourage the student's intellectual ambitions. Both parents were proud of the boy's achievements and encouraged him in the continuation of his education. There was also evidence of complete friendliness and social enjoyment within the family group.

During the first interview with the boy, he mentioned college teaching as a possible professional goal. He had not, however, decided in which field he would like to teach. His claimed interests covered diverse fields—science, foreign languages, literature, social studies. It was recommended, therefore, that he fill out the Strong's Interest Blank in order to discover whether or not his likes and dislikes were similar to those of any one professional goal group. It was also suggested that he take a battery of achievement tests in order to determine more exactly the extent of his scholastic and intellectual accomplishments.

The boy took seventeen objective examinations on academic subject matter and his test scores were compared with those of Minnesota sophomores. The scores on this wide variety of tests emphasized his extreme versatility. His achievement on eleven of these tests was superior to 90 per cent of college sophomores. On four of the remaining six tests his achievement was superior to 80 per cent of college sophomores, and his scores on the final two tests were well above the average In order to appreciate fully this boy's remarkable abilities, it must be remembered that he had, as yet, no formal college training His college entrance test, which measured general academic aptitude, showed him to rank in the upper 2 per cent of university freshmen, and this score was verified by his score on the American Council Psychological examination The student's objectively measured interests, on the Strong Vocational Interest Blank, fell uniformly in those professions or technical fields requiring advanced academic training. He scored an *A* as a psychologist, physician, mathematician, physicist, editor, lawyer, and a *B*+ as chemist, engineer, accountant. Such a broad pattern of academic interests was valuable evidence in preventing too early specialization in any one curriculum

The boy's recreational habits and outside interests were essentially of an intellectual nature. For example, he studied Spanish independently, took private lessons in German and Russian, and enrolled in the university for a summer-school course in Japanese; he had a broad background in English literature His high-school extracurricular activities were confined to honor clubs and literary or cultural groups. He disliked participation in athletics and most social functions, but his antipathy was not a result of shyness or physical insufficiency. Such activities simply failed to stimulate or entertain him. This disinclination to enter into social relationships tended to limit the number of fields in which he might otherwise succeed. The boy was not, however, antisocial On the contrary, he had a lively *intellectual* interest in social problems and had an academic interest in the amelioration of human ills. But he was himself unsocial by nature and he half-apologetically characterized himself as being "almost painfully unresponsive to strong emotions in others" This last expression exactly describes his emphatically rational nature. From these facts it became evident that those professions requiring many human contacts would be unsuited to his temperament Here, obviously, was an exclusively intellectual worker whose only interest lay in the pursuit of truth for its own sake. It was clear that any effort at forcing socialization would be foredoomed to failure.

Because of this boy's youth and his unusual range of interests and because of his extraordinary capacity in so many fields, it was considered advisable to withhold all recommendations leading to a pre-

mature vocational choice. He was advised to eschew early specialization in favor of securing a broad general background while allowing his interests to crystallize within the next few years.

In the meantime it was obvious that many of the ordinary college requirements and courses would involve unnecessary repetition and wasted time in his schedule. He was, therefore, assigned to a special faculty counselor, and his case was brought to the attention of the Dean of the College so that exemptions could be made in particular course requirements to facilitate his progress. An effort was made to bring the resources of the university into line to provide him with the fullest opportunities for the use of his abilities and interests.

The student acting on the advice of this faculty adviser registered for a program of courses, many of them advanced, in zoology, French, chemistry, German, history, etc. His college grades were high in all subjects, as was expected, and after receiving a few *B*'s in his first year, he settled down to a straight *A* record. Although his grades in the sciences were as high as the others, he developed a great distaste for laboratory work and determined to add no additional science courses to his program. Gradually, his dominant interest in language studies asserted itself. He developed an especially strong interest in German, partly because the authorities in that department were so willing to allow the student to proceed at his own pace. At the present time he is carrying work in four languages. German, Greek, Italian, and French. He has formed plans for summer study this year in Germany and Greece before beginning his graduate work. The application of objective measurement in this case meant that a superior individual has been located in sufficient time to prevent his being lost or hopelessly entangled in the curricular detail surrounding the average student.

STANISLAUS KOVLAPEK CASE No. 469-33 Gen 35

This student was a freshman in the University of Minnesota General College, a boy nineteen years of age, when he reported at the University Testing Bureau. At the time of the first contact with the bureau he said he was interested in engineering but could not decide between chemical and aeronautical engineering, and wanted some help in solving this problem.

In high school he ranked in the lower third of the group in scholastic rating and his college entrance test rating was found to be very low. His achievement in the General College had only been average. His occupational experiences had included many types of manual labor in coal yards, packing plants, grocery stores, and on a paper route. At high school he was on the track team and on one or two minor committees. He listed as recreations and outside interests popular scienti-

fic literature, shop work, stamp collecting, and boxing Both parents were foreign born and neither had any formal education Since the father was dead, the boy had to work his way through college This student was remarkably ambitious and was determined to make his way through all difficulties He set a great value upon education and was resolved to have it at all costs.

In order to check his low entrance rating he was given the American Council Psychological Examination and retested on the Minnesota College Aptitude Test and Iowa English test. Besides these tests he was given achievement tests in general mathematics and general science. His scores on these tests were very low, most of them falling in the lowest one-tenth of college freshmen. He was also given tests in mechanical ability and manual dexterity and his performance on these tests was excellent. Compared with the general population, he was markedly superior—that is, he ranked in the upper 2 per cent of that group in the mechanical assembly and dexterity tests. His interests, measured objectively by the Strong's Interest Blank, were distributed between commercial and technical fields

Obviously, the boy's ambition outstripped his capacity. Economic conditions, lack of scholastic aptitude, and specific deficiencies in mathematics and English presented almost insurmountable obstacles in the completion of a professional course in engineering. On the other hand his excellent mechanical abilities and dexterities suited him for vocational or trade training. In order to combine his interests in aeronautics and his unusual abilities for skilled physical work it was suggested that he complete his year of background courses in the General College, and then enroll in a vocational school and take training with a view to becoming an aeroplane mechanic. Since the student was not entirely convinced that this recommendation was the best solution to his problems, the counselor recommended that he should take try-out courses in mathematics. Such a program would determine whether or not his ambition and genuine technical interest could compensate for lack of academic ability, and it was thought that it might serve to convince the boy that he should not attempt the professional engineering sequence. The boy was at length convinced of the impossibility of realizing his professional ambitions It was suggested to him that enlistment in the navy would furnish him with an excellent opportunity for training in a wide variety of mechanical skills He sought to act on this advice but his application was rejected because of a minor physical defect. He completed his year's work in the General College and then left school

A follow-up investigation was made on this case two years and four months after the original contact with the University Testing Bureau The student had spent one year in General College taking in the last

two quarters courses in engineering drawing in which he received less than a *C* average. He also took a few courses in aeroplane mechanics in the following year through the Extension Division. His grades in these practical courses were high. A little later he went to the native country of his parents. He is now attending a technical institute there and is reported to be making a very satisfactory adjustment. The counselor's primary objective in this case was to help the boy to realize as painlessly as possible that his real happiness would lie in the exercise of his very superior mechanical skills and not in the futile pursuit of a professional goal beyond his intellectual capacities.

GERTRUDE HOUSMAN CASE NO 816-3-34 A 37

This student was a voluntary case, a girl eighteen years of age, when she first came to the University Testing Bureau. She had attended the University for three quarters of work in the Arts College and then had canceled out of school a short time before she came to the bureau. She explained that her cancellation was not the result of poor grades or any financial problem but said she felt that she was not getting what she should out of school and added that she questioned her ability to carry college work. She came to the bureau for an examination of her mental ability. Up to the time of her cancellation she had been doing rather superior work and had almost a *B* average in college grades.

While in high school she had been interested in writing poetry, and had contributed to various papers and magazines. She belonged to a writing club and was a member on the staffs of the school paper and yearbook. She wished to continue her creative writing in her university work. While she had formed no definite vocational plans, she indicated that she was interested in the teaching of English, social research, and library work. Her father would finance her for whatever university training she needed. He had had some college work and the girl's mother had had high-school training. The student had two brothers, one a businessman and the other an artist, and also a younger sister in high school.

She had been better scholastically than the average student in high school, having a scholarship percentile rating of 79. There was apparently no difficulty in her study habits or her scholastic accomplishments. But she seemed to think that grades were not an indication of ability, and that most people were able to get pretty good grades. In spite of her good college record for three quarters she was very unsure of herself. On two occasions she had consulted psychiatrists but had not followed this treatment through. She was inclined to frequent periods of depression and had some trouble with sleeplessness. Her health service report indicated that her general health

was good. There existed some friction between the mother and the girl, both being quite headstrong. The girl seemed to feel that she had rather limited intelligence because she believed that her whole family was not very bright. According to her test results she was a girl of superior intellectual capacities, having a uniformly high rating in all her tests with the exception of mathematics. She had a college aptitude test rating of 92. Using Minnesota sophomore norms she received percentile scores of 90 in Cooperative English Test, Series 1, 87 in Cooperative Literary Acquaintance Test, but only 7 in Iowa Mathematics Test (Training). On her clerical aptitude tests she was given percentile scores of 84 in numbers and 100 in names (general population norms)

The counselor's first efforts to disabuse the student of her notion that she was stupid were ineffective He then suggested that she try to forget her idea of being stupid for the following three months and gave her some reading material in psychology. He advised her to come back to school, take any courses she could get during that quarter, and work *as though* his interpretation of her intelligence were correct Eventually she was to decide between journalism, advertising, teaching, or creative writing, but that could be decided after her emotional problem had been cleared up. It was felt that by frequent interviews with the girl, she might gradually overcome her feeling of intellectual inferiority. She was interviewed at regular intervals and the counselor tried to give her a great deal of encouragement, persuading her to bolster up her self-confidence and change her attitude toward her general intelligence. There was no indication that her feeling of intellectual inferiority was a disguise for some maladjustment in her social life. There also was no outward evidence of a serious personality problem.

Two years after the first contact with the girl, she was invited to come in for a follow-up interview. At that time she was planning to enter senior college the following quarter and had decided upon journalism She was entirely satisfied with her choice and announced that she had overcome her feeling of intellectual inferiority. She said she had tried, successfully sometimes and often unsuccessfully, to think in terms of her abilities as was suggested to her, and that gradually she grew out of it She claimed that she had developed greater self-confidence and consequently was much happier in her work She regarded her problem as cleared up and her attitude was much better and more cheerful She had developed more social contacts and was now finding school much more enjoyable than she did a year or two before Clearing up the emotional problem in this case gradually solved her vocational problem. She developed greater interest in her work and was now quite definitely decided on journalism

JONATHAN SCHMIDT CASE No 745-2-35 Chem 37

This student was twenty years of age, a sophomore in the School of Chemistry, at the time of first contact with the University Testing Bureau He was referred to the bureau by a professor in the School of Chemistry because his grades were getting progressively worse and a check on his vocational choice seemed advisable.

Both of the boy's parents had a grade-school education, the father being a railroad employee There were six other children in the family, he being second to the oldest In high school he participated in athletics and played in the school orchestra His work experience had been varied, delivery boy for a bakery, section hand for a railroad company, and office boy and clerk for an interior decorator He characterized himself as friendly, tolerant, reserved, tactful, conscientious, and submissive

His grades had been mostly *C*'s and *D*'s, with *F*'s in nineteen credit hours of work, for his first five quarters in the School of Chemistry. The only vocational field he had considered was the field of chemistry, and if this choice seemed inadvisable, he had no idea of what occupation to shift to His general ability seemed to be well above average, judging from his percentile score of 87 on the college aptitude test taken when he first entered the University. Now, almost two years later, when he came to the bureau to check on his vocational choice he was given the Cooperative English Series I Test and received a percentile rating of 47, using Arts College sophomore norms, in the Cooperative Chemistry Test, 85, using norms of those having had one year of high-school chemistry, in Cooperative Algebra Test, 75, using national freshman norms In order to measure his clerical ability, he was given a clerical aptitude test in which he received percentile ratings of 77 in numbers and 97 in names, using general population norms On the above achievement tests he rated about average in English, and considering that he had chemistry through qualitative, the rating of 85 would not indicate that he was much superior to the average college sophomore His background in mathematics seemed fairly good The results of the clerical aptitude tests indicated that he did have superior ability in clerical work In order to check his vocational interests he was given the Strong's Interest Blank This objective measurement of his interests gave him an *A* as office clerk, *B* as personnel manager or specialty salesman, and *B* – as Y M C A physical director or purchasing agent This test indicated no technical interests whatever From a health report requested from the Health Service as a check on any physical disabilities it was learned that the boy was partially color-blind but was otherwise without serious handicaps It was considered that his difficulty with chemistry might possibly be due to his partial color-blindness, but this would not account for his poor achievement in some of his other courses

Certainly this student's lack of interest was a major factor in his maladjustment. He was "not at all certain" about his choice of occupations. On the basis of his interest pattern as revealed by Strong's test and his mediocre achievement on science and mathematics tests and his outstanding clerical aptitude, he was advised to transfer to prebusiness and go into the School of Business as soon as he could meet the requirements for that school. The School of Business authorities were willing to give him a chance provided he could make up the thirty-two honor points which he lacked at the time. He would have to maintain better than a *B* average for two quarters of work in the Arts College if the transfer to the School of Business were to be made by the winter quarter of the following year. This would demand a speedy readjustment. He was, however, very much pleased with the new course outlined to him and quite anxious to have an opportunity to show what he could do. He was urged to come back for interviews at various intervals so that his progress could be noted. After one quarter's work in the Arts College he came back to the bureau for an interview. He had received grades of *A* in five credits of work and *B*'s in nine credits of work. In all, he had made up nineteen honor points. He was quite delighted with the increase in his grades and with his shift in vocational objective.

Over a year after the first contact with the University Testing Bureau, the student was called in for a follow-up interview. He had made up his deficiency of thirty-two honor points in two quarters in the Arts College and had then transferred to the School of Business. He was doing excellent work and keeping his scholastic average above a *B* rating. He continued to be very well satisfied with his new choice and had made an excellent readjustment both vocationally and scholastically. This is a clear-cut example of a vocationally maladjusted student who was guided into the field of his interests and abilities. By making this transfer from chemistry to business the boy immediately changed from a failing student on probation to a well-satisfied student maintaining a *B*+ average.

MARGARET JOHNSTON CASE NO. 888-4-34 A 36

This student, a girl nineteen years of age, came to the University Testing Bureau after having had two years of prebusiness work in a small college and two quarters' work in the personnel sequence offered in the School of Business at the University of Minnesota. She had become dissatisfied with her business courses and was seeking advice about transferring to some other course. Her grades in the School of Business were low—*C*'s, *D*'s, and *F*'s.

This student had acquired some secretarial training in high school. Since her father was dead, she was obliged to finance her college career

by doing part-time secretarial work, to which she devoted some four or five hours daily. She had a practical background of two years' secretarial work experience. The student's mother, educated through high school, was employed as assistant town treasurer in a rather large community. The daughter said that her mother had an avocational interest in archaeology and anthropology and that from her mother she had acquired similar interests. These interests were more than casual; she had, in fact, considered the possibility of transferring to the Arts College in order to take a major in anthropology.

The counselor wished, first, to gain a more adequate idea of her abilities. Although her School of Business grades were low, her pre-business grades were well above average. On the college aptitude tests taken in her last year of high school, she had a percentile rating of 73; on the English section of the test she scored 92. To verify these high scores she was now given the American Council Psychological Examination and scored an 88. Her percentile scores on other tests were as follows: Cooperative Literary Acquaintance Test, 28, using Minnesota sophomore norms; Cooperative General Science Test, 53, same norms; clerical aptitude test, 94 in numbers, 100 in names.

From the test results it was clear that this girl was of good intelligence with marked special abilities for clerical and secretarial work. She did not, however, manifest the very high aptitudes demanded for successful work in the highly specialized field of anthropology. Moreover, her financial position would make it extremely difficult for her to pursue the prolonged graduate work which would be required in that profession. The counselor therefore hesitated to recommend anthropology as a vocational objective. It was plain, however, that her cultural aspirations would never be entirely satisfied in a purely commercial field.

The student was finally advised to complete her already extensive background for secretarial work and to take at the same time an anthropology major in the Arts College. It was suggested that this combination might eventually enable her to obtain a secretarial position in a museum or with anthropological societies or expeditions. It was clearly explained that so specialized a position might be difficult to secure, but that, at the worst, she would at least be thoroughly equipped for secretarial work and her avocational interest in anthropology would be satisfied. It was arranged that she should take only those secretarial courses which would not oblige her to repeat material already familiar.

The student made the transfer and her grades improved at once. In a follow-up interview shortly before she finished school the girl gave subjective evidence of satisfaction with this solution to her

problem. The suggested combination of anthropology with secretarial training gave her a new interest in the latter. She was aware of the difficulty she might meet in securing the proper occupational opportunity for using both types of training but declared that she would be perfectly willing to do secretarial work in a commercial field until the opportunity turned up.

CHAPTER IX

FOLLOW-UP AND EVALUATION OF GUIDANCE WORK

The various techniques and procedures of student personnel work have been described in the preceding chapters One step in guidance remains to be discussed, namely, follow-up work In social work this is recognized as indispensable, but student personnel workers have not yet professionalized their work sufficiently to include systematic and continuous follow-up of each case Usually, only the self-initiated and voluntarily returning cases are handled after the first few interviews That student problems are too complex to understand, or treat, in a few interviews, is axiomatic Nevertheless, the pressure of other duties and the failure to set up a simple mechanism for follow-up work have prevented the development of this phase of guidance.

In Chaps. IV and VI a simple procedure has been outlined for this sixth step in personnel work. A time card for automatic notices of follow-up interviews with student cases is an indispensable mechanism. This card is filled out by the vocational counselor immediately after the interview. Prior to the date of the desired interview, a notice is mailed to the student or he is called by telephone It is unsystematic and unfair to expect either the student or the counselor to remember the date of interviews set months in advance

A second follow-up procedure is borrowed from social case work. A trained clerical worker systematically and periodically, say once each year, reads each case record critically to determine what, if any, additional case data are necessary for further counseling. Since no case is ever

completely closed, it is necessary to work continuously in bringing up to date the case information As a result of such case reading, letters are written for new information, additional interviews are held with the case regarding questions and problems not adequately discussed or treated by the counselor, and information is collected regarding the results of the counselor's case work and treatment.

A third type of follow-up work involves the statistical analysis of case records on a research basis to determine the general effectiveness of counseling, and what techniques of diagnosis and treatment proved effective. This type of research study is a most important step in the further professionalization of student personnel work. A report of this third type of follow-up work is made in this chapter

Any attempt to evaluate or determine the effectiveness of guidance on the college level involves the problem of securing an adequate criterion of effectiveness In previous sections the scope of guidance has been limited mainly to adjustment of students during the training period in college. Adjustment on the job after college is another problem in evaluation and calls for the use of different criteria and possibly different methods of analysis

Very few follow-up studies have been made utilizing bases of diagnosis similar to those of the testing bureau (78); no studies on the college level are reviewed here for that reason.

In the *Prediction of Vocational Success* (143) Thorndike and his coworkers report the results of a ten-year study, in which measurement evidence was used as a basis of evaluating prediction of vocational adjustment The criticisms and comments aroused by this publication appear at first glance to be rather damaging to the cause of student personnel work. Because measurement techniques are so emphasized in our book it may be worth while to review Thorndike's work. In the study conducted under his supervision tests of clerical intelligence, clerical activ-

ity, mechanical assembly, arithmetic, and reading were used Adjusting the test scores statistically to the base age, fourteen, the subjects were followed up to two criterion periods, ages eighteen to twenty and twenty to twenty-two. At that time their occupational status was grouped as follows: clerical, mechanical; mixed; and professional The criteria of vocational success used in this study were three: financial earning; level of work achieved ten years after the vocational testing; and interest in the work These last two criteria were rated or classified

The mediocrity and heterogeneity of the jobs included in the classification system will be apparent upon reading the original reference For example, in the mechanical group, boxers are included. Beyond this, of course, is the lack of present-day knowledge of the capacities required on these jobs and the inability to measure these capacities with as few tests as were used in this study. The criteria used are not particularly specific and are subject to all the errors that inhere particularly in expression of interest in work and in the use of salaries as a standard of success A severe economic upheaval intervened between the beginning and the end of this study. Furthermore, the stability and comparability of salaries or wages at these job levels is questionable, as is the use of any salary index as a measure of achievement, considering the differences and practices of remuneration of various industries and organizations. In the results, a slight increase was noticed in the predictive efficiency of the test between ages eighteen to twenty and ages twenty to twenty-two, but in neither case are the correlations as published sufficiently high to indicate validity of prediction with the original test battery. This extensive study should not be confused with, nor does the author confuse it with, student personnel work, but it was at first uncritically accepted as a condemnation of student personnel work as described in the present text Consequently, it becomes necessary to point out the inadequacies of Thorndike's study along the lines mentioned above

before describing the present attempt to evaluate student personnel work more intensively.

Proctor (107) reports a significant study of the relationship between I.Q. taken in 1917–1918 and occupational status achieved by 1930–1931 for 945 cases tested originally as high-school students. For an additional 569 cases, no data could be collected regarding their vocational status 13 years after the testing. The average I.Q. of the 569 cases was 93 as compared with an average of 108 for the 945 cases with records of present occupational status. The omission of the 569 cases would tend to decrease the number of cases in the lower occupational classes, as reported below.

TABLE IX
(After Proctor)

Barr classification of occupational status	Number	Average years of school	Average I.Q.
I	130	17.3	115
II	565	14.04	108
III	228	12	104
IV	12	10.8	99
V	10	9.4	97
Total	945	13.9	107.6

Proctor summarizes his study thus:

(1) That so far as general averages go, the persons ranking high in intelligence tend to gravitate toward the high ranking vocations; (2) that those found in the high ranking vocations had had correspondingly longer periods of schooling than those found in low ranking vocations; (3) that these generalizations are only significant in relation to trends and should not be assumed to apply in individual cases (107).

Burt (23) found for 100 children of fourteen years of age that 80 per cent of those who followed the advice of voca-

tional counselors declared themselves satisfied with their job placement; 40 per cent of those who did not follow advice reported themselves satisfied Viteles (157), diagnosing and advising 75 adolescents, found, two and one-half years after the first contact, that 58 per cent followed advice completely and 21 per cent partly. Thirty-five of the cases were still in school at the time of the follow-up, of the 6 who had failed one or more courses, 1 4 per cent had followed advice and 2 25 per cent had partly followed advice Macrae (91) followed up 33 boys and found that of the 57 per cent who followed advice, all but one were satisfied with their occupational adjustment Only 21 per cent of those who did not follow advice were satisfied Earle (42) followed up 600 children matched with control students leaving school at the same time but not receiving guidance services Those students following recommendations reported themselves satisfied in 60 per cent of the cases; 36 per cent of those not following advice reported themselves satisfied Scipp (122) analyzed the case records of 100 adults diagnosed and advised by the Adjustment Service of New York, using a methodology similar to that of the bureau's study; the degree of adjustment, however, was judged in part by the extent to which the cases followed the recommendations Of these 100 cases, 57 made a satisfactory adjustment and 36 an unsatisfactory adjustment The study reported by Trabue and Dvorak (147) involved a methodology more comparable to that of the bureau and, in addition, included evaluation of adjustment in training for occupational adjustment, whereas the other studies cited involved job adjustment only.

Dvorak found that:

> Two-thirds of those who were given training along lines other than those indicated by an occupational analysis were unsuccessful in their courses, and fewer than 5 per cent were successful. On the other hand, more than three-fourths of those who took the training recommended were successful, and fewer than 6 per cent were unsuccessful (147, 22).

There would seem to be four possible methods, with four corresponding criteria, for evaluating college guidance work The first is the case-work method, in which individual cases are described and evaluated by common-sense judgment regarding the adjustments brought about. This method has been the favorite one of psychiatrists. A reading of their case histories indicated that they use as criteria the psychiatrist's judgment, the client's satisfaction with his adjustment, and the client's adjustment to his total life situation. The second method and its corresponding criterion pertain to scholastic adjustment. So much of college life involves scholastic success that most outcomes of education are evaluated in terms of this single criterion, which is, after all, only one aspect of the student's total adjustment. This criterion and corresponding method are not at all satisfactory for low-aptitude students who are shunted out of college. As a matter of fact, many such students who are given guidance and as a result cancel their registration in college are distinctly benefited by that counseling, but this effectiveness does not reveal itself in this criterion. Nor does this method cover adequately the prediction of failure in a recommended try-out experience made necessary by the student's insistence on making an unwise choice of vocational training. The third method involves a recording of the student's satisfaction with the diagnosis made in guidance and with the advice and counseling. Much could be said in favor of this criterion and this method since, without this feeling of satisfaction, the student may not carry out the recommendations of the counselor enthusiastically and effectively. The fourth method is somewhat similar to the third and has to do with the change and development of attitudes toward the vocational problem. The clinical types of cases discussed in previous sections of this manual illustrate this criterion.

At the present time, if evaluation is limited to objective methods, grades would seem to be the sole criterion of effectiveness, since they are quantitative, although faulty

in reliability and validity There is still another argument against the use of grades as a criterion of the effectiveness of counseling and the use of grades as a prediction of after-college vocational success. The chief weakness of grades is that, as a criterion of effectiveness of counseling in training, they do not make it possible to use the criterion of intellectual growth, presumably the major objective of education and, therefore, important in counseling and guidance. The lack of comparability of grades, not only among colleges and classes, but within the same class conducted by the same instructor, indicates their weakness Academic grades as a criterion of the effectiveness of counseling suffer from the weaknesses of unreliability, lack of comparability for the study of growth, and low predictive value for after-college success A still further weakness of grades is that they are the resultant of a complex of factors, many of which, such as inherently low ability, are not and possibly cannot be treated successfully in the college situation by a counselor They are, however, used as measures of success or failure in college and are accepted by all as an important outcome.

Presumably, if guidance is effective, it will bring about a better vocational choice by the student and will help him to select an occupation in line with his possibilities and to select the corresponding vocational training course which is possible of attainment for one with his aptitude. The criterion of feelings of satisfaction assumes the validity of the assumption that a student who does what he is capable of doing is better satisfied and better adjusted than one who is attempting work beyond his capacities It is also dependent upon the validity of the methods of diagnosis, adequacy of norms, and the extent and accuracy of the student's vocational information and attitudes. On the other hand, guidance being essentially individual in its methodology, the uniqueness of individual cases looms large in importance Moreover, no single case is classifiable by a single label. There is always a multiplicity of factors

in each case which produces the uniqueness itself and also makes for greater difficulty in adjustment and evaluation. Because of the multiplicity of these case factors, it is necessary to evaluate, by measurement or judgment, the effectiveness of guidance on the basis of a multiplicity of criteria. We need many yardsticks to determine progress in adjusting individual cases. We need a valid yardstick for each type of problem and adjustment. In the absence of yardsticks we are forced to evaluate by means of judgments as uniform and reproducible or verifiable as possible.

The question arises, why has no use been made of the technique of control cases, either in the preliminary studies of the testing bureau or in the revised procedure? It is difficult, if not impossible, to secure matched controls of cases not given advice by the bureau. One might match on the basis of sex, age, college, and intelligence, but one cannot match on the important factor of problem-mindedness of the student. One would have little confidence in any attempt to force similarity by classifying cases only in broad categories.

It has been suggested that every other case might be selected, in order of initial contact, and the others refused advice after diagnosis or given "faked" advice Even if one survived the storm of criticisms resulting from such a procedure, there would be little assurance that the cases had been truly matched on all important aspects of problem characteristics.

The method of control finally selected as both feasible and capable of revealing a measure of the efficacy of the bureau's service was afforded by studying those cases unwilling or unable to follow advice. These cases were given the same diagnosis and went through the same procedures as those who did follow the bureau's recommendations. Presumably the chief difference between these two types of cases is found in the extent to which advice was followed. It is, however, a research problem to discover if these two types do actually differ in other respects, some of which

may be identified at the time of diagnosis If such proves to be the case, then the accuracy of prognosis will be increased and still better evaluation can be afforded in so far as these other differences may be seen to have a bearing on the conclusions of the prognosticator

One year or more after the initial contact, 196 student cases, selected on the basis of completeness of case work, were followed up to provide data for an evaluation of the guidance services of the bureau. The characteristics of these cases and the amount of guidance services they received are presented at this point in preparation for a review of effectiveness. Of these cases, 80 were volunteers who came directly to the bureau for counseling, 47 were referred by faculty members, 20 by other counselors, 45 by deans and administrators, and 4 by people outside the university One hundred and thirty-one of the cases are men, and 65 are women They are classified by college as follows College of Agriculture, Forestry, and Home Economics, 9; School of Chemistry, 4, School of Medicine, 1, School of Business, 2, College of Education, 6, Precollege cases, 37, College of Science, Literature, and the Arts, 97; General College, 26, College of Engineering, 12, Graduate School, 1, unclassified, 1. On the basis of college year, 37 were precollege students, 61 were freshmen, 65 were sophomores, 22 were juniors, 7 were seniors, 1 was a graduate student, 3 were unclassed students.

A total of 776 interviews were given to this group, ranging from 1 to 15 interviews per student The average was 3 96 interviews per student. These data and others that are to follow may be compared with a similar study made in the College of Science, Literature, and the Arts in 1934 (173) In this latter survey 371 cases appeared in the analysis, for whom an average of 2 78 interviews had been held

In classifying the students in the present study according to college aptitude test and high-school scholarship as indices of general academic ability, it appears that the majority of the students are in the upper brackets in these

ratings, which is some evidence that students of high ability need and seek aid in solving their problems as well as those of lower ability Table X presents these data

TABLE X

Percentile rank	High-school scholarship	College aptitude test
91–100	29	37
81– 90	25	28
71– 80	29	15
61– 70	20	18
51– 60	16	10
41– 50	29	23
31– 40	10	12
21– 30	9	14
11– 20	3	18
1– 10	11	21
Total	181	196
No record	15	
	196	

In the process of clinical analysis an extensive body of information had been assembled on these 196 cases. Table XI summarizes this material under various headings.

TABLE XI.—CASE DATA COLLECTED IN CLINICAL ANALYSIS

University Testing Bureau test profiles	197
Reports from Health Service	137
University entrance test ratings	167
Grades from Registrar's Office	224
Other counselor reports	96
Clearance slips from Faculty-Student Contact Desk	442
Special test results	10
Total	1273

The heading "University Testing Bureau test profiles" may include anywhere from 5 to 15 separate tests over and

TABLE XII.—AGENCIES USED BY COUNSELOR FOR DIAGNOSIS AND TREATMENT OF CASES

	Agency	Number of Times Each Agency Was Used
1.	Deans of women and men for disciplinary action and general information about extracurricular activities	7
2.	Employment Bureau for part-time work for students	8
3	Financial aid agencies for loans, Federal Aid Scholarships, and university scholarships	18
4	Health Service for health examination results, and referral for special health examinations	113
5.	Faculty and department major advisers for curricula and sequence of courses	34
6	How-to-Study instructors for referral of students to them for instruction	10
7.	High-school counselors or teachers for report of students' high-school problems, attitudes, and interests	11
8.	Junior and Senior College deans for advice as to changing of students' courses and general information as to students' work	109
9	Other counselors for advice and opinion and case history data collected by them	93
10	Scholastic probation advisers for case history data	8
11	Parents and other relatives for interviews or communication concerning students' problems	19
12	Other students or instructors for personal information about students	5
13	Psychiatrist for referral of students to them for diagnosis	15
14.	Registrar for high-school record and grades	156
15	Social case workers for home visits for diagnosis	1
16	Board of Admissions for information concerning high-school record and student admission application blanks	2
17.	University Testing Bureau (testing division) for vocational aptitude and interest tests, and for interpretation of tests and collection of vocational information	527[1]
18	Speech Clinic for diagnosis of speech difficulties	6
19	Child Health Clinic for general information	2
20	Y M C A. and Y.W.C.A for aid in social adjustment of students	2
		1146

[1] It was necessary to refer many students several times to the bureau for additional tests before a satisfactory diagnosis could be made.

above the entrance test ratings and special test results collected in other programs The total of 1,273 items of information about these 196 cases indicates the extent of the clinical analysis.

Table XII summarizes the various agencies used either in diagnosis or in treatment of the problems presented by this group of cases. Here again the advantages of a coordinated personnel system in an institution are apparent. The clearance or exchange of information made possible by these cooperating agencies is of inestimable value in handling student problems.

The classification of these 196 cases by level of academic ability, the amount of case data collected, and the frequency of use of outside agencies give some idea of the amount of work involved in analyzing, synthesizing, diagnosing, and treating student problems. In these processes the entire machinery of university student personnel was utilized to the end that these 196 students could be handled as individuals in the process of adjustment to education and, ultimately, to occupational responsibilities. The data in Table XII, in so far as they deal with diagnosis and treatment of problems, may be augmented by a presentation of the problems these 196 students presented Table XIII summarizes the analyses of case histories, with the frequency of problems in various major areas.

In the group of 196, a total of 784 problems was found, or an average of 4 problems per student. This compares with an average of 3.5 problems per student in the Science, Literature, and Arts study previously mentioned (173). Considering the fact that 190 of the problems in the Science, Literature, and the Arts group were solved by use of the class schedule for program making, or, in other words, by simple registration counseling procedures, and that in only 86 cases in the present analysis did the problem of selection of courses occur, it appears that, in this group, there was found approximately one problem more per student than in the Arts College group. The high fre-

TABLE XIII.—TYPES OF STUDENT PROBLEMS

	Frequency of Occurrence
1 *Financial* Need or desire for part-time work, scholarship or loans, inadequate finances	45
2 *Vocational* Poor aptitude for chosen vocation; choice of an occupation; dearth of interest in any vocation; dearth of interest in chosen vocation, information about occupations, vocational choice without adequate self-analysis; inadequate information in regard to professional choice	300
3 *Educational.* Poor aptitude for college work, selection of courses in line with occupational choice, inferiority in academic skills such as reading, study habits, English usage, etc ; understanding grading standards; high general aptitude and poor scholastic achievements, understanding responsibilities in college, high aptitude hampered by standard curricula, outside work interfering with studies, university entrance without proper requirements .	227
4 *Social, Personal, and Emotional* Too much social life or too many social activities, inadequate participation in extracurricular activities; selecting student activities in line with interests, social personality traits which may hinder professional success; need for encouragement and self-confidence, social timidity, emotional disturbances, family domination in vocational choice, conflict with family or friends, parental anxiety for a wise vocational choice; fear of intellectual inadequacy, idealization of a profession, overevaluation of a college degree; vocational indecision because of possible marriage; no self-expression in the home	136
5 *Family* Sibling conflict; split-family situation; overdependence on part of student, difficulty in transition to independence, serious and overt family conflict over educational and vocational plans, finances, religion, difference in standards, personality adjustment . . .	39
6 *Health and Physical Disabilities* Serious physical disabilities, easily fatigued, inability to do justice to work because of intermittent illness; physical habits, diet and sleep, etc	37
Total. .	784

quency of educational and vocational problems indicates to some extent the relation that has come to exist between these two areas of the individual's activity. Naturally, any system of classification is subject to criticism because of nonexclusive categories. But, to the extent that one agrees with the classification of symptoms or conditions discussed earlier in this chapter, the data in Table XIII are valid summaries of students' problems in various areas.

To determine whether or not these problems were concentrated in the upper or lower ranges of an available index of academic success, the number of students and the number of their problems were classified in terms of deciles of the college aptitude test, as given in Table XIV. The differences in average number of problems at the various deciles are so slight as to appear insignificant. Again, it develops that educational practice is inadequate if it assumes that the potentially good student will succeed in adjusting his own problems.

TABLE XIV

Minnesota College Aptitude Test percentile	Number of students	Number of problems	Average number of problems per student
91–100	37	150	4.05
81– 90	28	130	4.64
71– 80	15	61	4.07
61– 70	18	60	3.33
51– 60	10	38	3.80
41– 50	23	82	3.57
31– 40	12	51	4.25
21– 30	14	53	3.78
11– 20	18	77	4.28
1– 10	21	82	3.90
Total	196	784	4.00

In evaluating this follow-up study of student cases it is necessary to know what suggestions, advice, and recom-

mendations were made by the vocational counselor on the basis of the case data available Accordingly, a detailed analysis was made of the case records; the results, classified by problem areas, are presented below. These procedures or techniques are those initiated and carried out by the vocational counselor himself in addition to the use made of other personnel agencies listed in Table XII.

TABLE XV

Financial Problems

1 Discussion of relation of part-time work to class schedule
2. Discussion of need for work
3 Suggestions of ways of getting jobs
4 Discussion of student's expenses and financial resources
5. Discussion of scholarships and loan funds
6 Letters of recommendation for jobs, scholarships, and loans

Vocational Problems

1. Description of occupations
2. Referral to informational books
3. Discussion of aptitude
4 Discussion of student's financial resources for occupational training
5 Vocational try-outs through college courses
6. Advice and recommendation of occupational choice
7 Advice of General College or S.L.A. training until choice is made
8 Method of entering chosen occupation
9 Referral to faculty member to show wider meaning of course

Educational Problems

1. Use of class schedule for program making
2. Discussion of course prerequisites, sequences, majors, etc
3. Cultivation of interest in studies, scholastic record, etc.
4. Explanation of recitation method of study
5 Discussion of physical surroundings conducive to effective study
6 Discussion of methods of vocabulary building
7. Tutorial aid with a specific subject
8 Aid in selecting a schedule of classes in line with aptitude, interests, special disabilities, etc.
9 Aid in planning schedule of hours for study

TABLE XV.—(Continued)

10. An attempt to analyze cause for difficulty with a specific subject
11. Explanation of student's low aptitude as cause of low scholarship
12. Recommendation of noncollege type of vocational training
13. Attempt to diagnose and overcome special disability in spelling, grammar, mathematics, etc
14. Discussion and explanation of student's responsibility in college, grading standards, etc
15. Recommendation that student change course of study
16. Aid to student lacking proper entrance requirements
17. Discussion of eligibility for prescribed work

Social, Personal, and Emotional Problems

1. Warning of overemphasis put upon social activities
2. Arranging contact with proper activities such as band, debate, etc
3. Suggestion of proper activities to try
4. Establishing friendly contact with faculty for future use
5. Continuance of friendly contacts
6. General discussion, encouragement, and assistance with self-confidence
7. Suggested treatment for specific personality difficulties
8. Discussion of meeting people and making friends
9. Treatment suggesting special things to do
10. Discussion of worries and other emotional problems
11. Recommendation of welfare agency to assist student

Family Problems

1. Suggesting discussion between family and friends over mutual conflicts
2. Remedial treatment for personality difficulties causing conflicts
3. Advice of transfer to another school because of home environment
4. Suggestions for acquiring self-expression in the home
5. Discussion of parental anxiety over student's choice of vocation
6. Suggestions regarding family domination in vocational choice

Health and Physical Disabilities

1. Discussion of handicaps
2. Advising remedial gym
3. Discussion of living arrangement, sleep, diet, etc.
4. Athletics suggested for better health

A case reviewer, without previous experience in the bureau's program but given intensive training over a period of one year, conducted the follow-up interviews with the above student cases During this follow-up interview an attempt was made to get from the student a statement of his satisfaction and adjustment with regard to vocational orientation and choice. The case reviewer had prepared a brief abstract of the case, indicating the problems with which the student originally came to the testing bureau, the problems which were discussed by the counselors of the testing bureau, and the attempts made to bring about a satisfactory adjustment. The case reviewer had before him all the case material including interview notes by members of the staff of the testing bureau in their work with this individual case The counselor who handled the student's problems played no part in this follow-up evaluation Two case readers made independent judgments evaluating the final status of the case on the basis of the reviewer's final interview with the student. The reviewer checked all such evaluations and acted as umpire in case of disagreement between the readers.

The criterion employed in estimating the quality of adjustment was a composite of those factors which are generally considered as indicative of satisfaction or dissatisfaction with adjustment in the field of vocational choice and training, such as grades, statement from the student of satisfaction with present (vocational) adjustment, reports from parents or instructors. The status of the case at the time of follow-up was always considered in the light of the diagnosis and prognosis made earlier by the counselor Grade evidence was weighed against evidence subjectively gathered, and it not infrequently occurred that a case was tabulated as having made some progress toward adjustment in spite of the fact that his honor-point ratio had not increased The type of cases included under the categories of evaluation are probably best described by illustration Actually, of course, these categories have no

sharply defined limits. There is no such state as absolute adjustment or absolute maladjustment But there are innumerable degrees of adjustment, and, therefore, an infinite number of possible divisions, the standards of which would be difficult to set up and impossible to maintain since the distinctions between them would necessarily be exceedingly fine It was decided, then, that the simplest method of rating should be used since, by decreasing the number of judgments to be made, the margin of error is correspondingly narrowed.

The effectiveness of guidance is evaluated in terms of the extent to which it discharged the following functions or services relative to the problems exhibited by the student at time of his first contact:

1. Diagnosis of student's vocational and educational possibilities (or aptitudes and interests).
2. Advice in making appropriate choice of a vocational field and in securing the related educational training sequences
3. Counseling as to recognition of, and alleviation of, disturbing factors (emotional, educational, economic, health) which may interfere with, or prevent the acceptance of, proper choice and/or the achievement of appropriate training
4. Assistance in the discovery of, and utilization of, personnel resources in effecting an adjustment.
5. Guidance in the use of all personnel resources in diagnosis and case-work treatment.

Evaluation is based upon two assumptions: first, if the student has followed advice, accepting such of the above services as pertained to his case, and subsequent adjustment results therefrom, then the diagnosis and advice are validated. Second, if diagnosis and advice are validated by subsequent adjustment, then the number and the type of techniques useful in the process are validated.

Student's adjustment with regard to vocation, and progress in achieving satisfactory training therefor, is judged by the following criteria:

1. Choice in line with aptitudes, interests, work habits, personality, etc.

2 Program of studies or training in line with this choice and student's qualifications

3. Student's satisfaction with vocational choice

4. Progress in achieving training for choice in terms of capacity of student to profit from such training

5 Alleviation of factors which interfere with the making of a satisfactory vocational choice and achieving necessary training: *e g*, parental dominance of choice, inadequate study skills, etc

With regard to the other classification, namely, extent to which the counselor's recommendations have been carried out by the student, a case is considered to have followed advice (1) "wholly," if the counselor's advice has been followed with respect to *all* important recommendations regarding all main problems; (2) "in part," if advice was followed *partially* in all main problems, or completely in some, and not followed in respect to minor problems or advice; (3) "not at all," if advice was not followed in *any* of the main problems For the most part, cases classified in this third category were those *unable* rather than unwilling to follow the counselor's advice regarding vocational choice because of untractable parents, inadequate finances, prohibitive curricular regulations, or other factors more or less beyond the power of the counselor to change, even though change were necessary for satisfactory adjustment

The effectiveness of guidance given the student is determined by evaluation on the basis of comparison of his status at the time of evaluation with his status at the time of first contact The following five-step scale is used.

A Satisfactory adjustment
  1 Student is satisfied with his vocational adjustment as to date of follow-up interview.
  2 In interviewer's judgment, the vocational choice and adjustment of the student are adequate, based upon aptitudes, interests, and subjective factors revealed through interviewers.
    a. Vocational choice in line with aptitudes and interests
    b. Student may not be satisfied as to adjustment, but his poor aptitudes prevent his choosing certain vocations and enter-

ing or continuing specialized college training Education on a lower level therefore considered satisfactory adjustment.

c. Any subjective factors revealed through interviews which indicate adequate adjustment.

3. The alleviation of distracting factors which interfere with vocational choice and professional training, such as inadequate socialization, mental conflicts, financial problems, health handicaps, or any individual problems which may affect the vocational choice

4. Achievements in a given training program to the limits of aptitudes and interests as measured by tests and honor-point ratio

Case Illustration -No. 592 12 32 (E.V.)

Case was registered for a year and one quarter in Chemical Engineering, having made such a choice for no particular reason except that it sounded like an opportunity to make a great deal of money At time of first contact with UTB (University Testing Bureau) he stated that he could not drive himself to work hard, apparently having no interest in the course. His tested aptitudes and interests indicated a definite business-social interest and good possibilities in this line of work. Case was stable emotionally and had a personality which would be an asset in that line of work. Case stayed out of school for five quarters because of lack of finances and then registered in the School of Business as recommended by UTB. After one quarter's work in Business he was interviewed and said he was very well satisfied. He had also improved his scholastic standing from a *C*— average to an average of *A* —.

This case followed advice and is evaluated thus: "Advice wholly followed—satisfactory adjustment"

B. Some progress toward satisfactory adjustment

The same basis as under "Satisfactory adjustment" is used; some progress is made toward satisfactory adjustment but the original problem is only partially solved

Case Illustration —No 869-3-33 (A H.)

Case came to UTB during her freshman year with problems of inadequate finances, uncertainty as to her choice of occupation, and difficulty with course selection. Student had exceptionally high aptitudes and was getting good grades UTB aided her in getting a scholarship and recommended that as she disliked high-school teaching she should not enter the College of Education but prepare for college teaching with the possibility of getting an assistantship. Some natural and social science courses were recommended to her. She followed UTB recommendation, obtained a scholarship for one year, but was still uncertain financially, as to whether she would be able to finish

her course work She was well satisfied with her vocational choice and the courses suggested to her by UTB, and continued getting high grade averages

Case evaluated thus: "Advice followed wholly—some progress toward a satisfactory adjustment" (Not entirely satisfactory adjustment because her financial problem was still causing doubt concerning her vocational choice)

C No change The problem of the student remains the same

1 Student has done nothing to alleviate his problems, and problem condition remains unchanged
2 No progress or regression in solution of problem—even though student had attempted to solve his problem
3 Lapse of time in itself constitutes not a worse condition but a "no change," even though the time element may cause a problem to become more severe
4 The same factors which caused student's problem at time of first contact still exist, with the same effect upon the student, hindering his progress

Case Illustration—No. 470A-11-33 (G L)

Case registered in the School of Chemistry and came to UTB in his sophomore year. He claimed an intense interest in chemistry but was failing his courses He had superior ability for academic work His tested interests indicated that chemistry was the desirable field for him and he was advised to stay in this college Case had inefficient study habits and lacked self-confidence Advice was given him concerning methods of study, some of which he followed, others not It was also pointed out to him that he had plenty of ability, and general encouragement was given When case was followed up, it seemed that the problems still remained the same, the conditions (poor study habits, lack of self-confidence) still prevailed He had only partially followed advice in improving his study habits

Case evaluated thus "Advice partly followed—no change"

D. Slightly worse.

1 Solution of the problem seems slightly more remote than when student first was counseled (as diagnosed under steps outlined under "Satisfactory adjustment").
2 The factors which caused student's problem at the time of first contact still exist and are causing a slightly worse condition in the student's problem

Case Illustration—No 146-9-32 (N C)

Case registered in Science, Literature, and the Arts, came to UTB when a freshman. She had been getting very poor marks Her choice of vocation was Industrial Bacteriology, but her grades were so poor that she would have difficulty in continuing unless she improved

them. The tests indicated that she had poor aptitude for her chosen vocation Her study habits were also very poor Her vocational choice was forced upon her by her family. Her tested interests showed that business would be a better field for her, and a transfer to business was advised by UTB, but case insisted on Industrial Bacteriology She continued to get poor marks and in a follow-up interview stated that she would go into business if it weren't for family opposition to that field of work. She wasn't as enthusiastic about bacteriology as during the first contact with UTB.

Case is evaluated: "Recommendation not followed" because any advice given by UTB was not followed by case, and at time of follow-up interview student was more dissatisfied with choice than at time of first contact. Her emotional and educational problem remained unchanged, so the evaluation of "Slightly worse" is made

E. Much worse

1. Student's problem is much more severe than at the time of first contact with UTB Solution of the problem seems much more remote (as diagnosed under steps outlined under "Satisfactory adjustment").
2. The factors which caused student's problem at the time of first contact still exist and are causing a much worse condition in the student's problem.

Case Illustration - No. 907A-4-33 (B.B.)

Case transferred from Forestry to SLA and took prebusiness recommended to her by her father and endorsed by UTB. At the time of first contact with UTB she was uncertain as to vocational choice and did not seem to have any definite interests in any line of work Her study habits were very poor. She had average general ability to do work on the college level but did very poor work in the Division of Forestry. Parents were separated and there was a good deal of pressure from that source for her to make good, father insisting that she become self-supporting. Her record in the business courses was very poor; she received her poorest grades in the business subjects. Counselor, suggested the How-to-Study course, with no apparent positive results. Efforts were made to encourage her, but her emotional problem became worse. This case followed UTB recommendations given her.

Case evaluated "Advice wholly followed—much worse" because she was dissatisfied with business, her grades were poorer in this line than in others, and the emotional problem was worse at time of last interview.

Table XVI indicates the extent to which these student cases were adjusted subsequent to counseling, the extent

to which the bureau's advice was followed, and the relationship between advice and adjustment A total of 142 cases made satisfactory adjustment; in 30 cases there was no perceptible change, and in 24 cases the adjustment was less satisfactory subsequent to counseling. On the other hand, 94 cases are classified as having followed advice "wholly," 65 "partly," and 37 "not at all." Of those who followed advice wholly or in part, 139, or 87 per cent, were classified as having made a satisfactory adjustment Of the 37 cases not following advice, only 3 had made a satisfactory adjustment.

TABLE XVI —CLASSIFICATION OF CASES AS TO PROGRESS TOWARD ADJUSTMENT[1]

Extent to which advice was followed	Satisfactory adjustment	No change	Less satisfactory adjustment	Total
1. Wholly . .	91	2	1	94
2. Partly . . .	48	14	3	65
3 Not at all. .	3	14	20	37
Total .	142	30	24	196

[1] In this table, categories *A* (Satisfactory adjustment) and *B* (Some progress toward satisfactory adjustment) are combined Similarly, *D* (Slightly worse) and *E* (Much worse) were combined

For 141 of the 196 cases, grades for one or more quarters prior to counseling were available for comparison with grades subsequent to counseling. The average honor-point ratios for these cases are presented in Table XVII, classified according to the extent to which the counselors' recommendations were followed by the student

Data given in Table XVIII reveal that these three groups of cases differ but little in average aptitude for scholarship as indicated by mean percentile in high-school scholarship and the Minnesota College Aptitude Test. None of the differences between means is statistically significant.

TABLE XVII. HONOR-POINT RATIOS[1] BEFORE AND AFTER COUNSELING

Extent to which advice was followed	Number	Honor-point ratio: Before counseling, Mean	Before counseling, S.D.	After counseling, Mean	After counseling, S.D.
1. Wholly	62	1.[illegible]7	0.7[illegible]	2.15	0.85
2. Partly	49	1.[illegible]	0.[illegible]	2.00	0.80
3. Not at all	30	1.[illegible]	0.[illegible]	1.67	0.56
Total and averages	141	1.[illegible]	0.81	2.0027	0.80

[1] Honor point ratios were computed by [illegible] honor points earned by the total number of credit [illegible] letter grade received in different colleges in the university was [illegible] points as follows $A = 4$, $B = 3$, $C = 2$, $D = 1$, $F = 0$. [illegible] college were assigned honor points as follows $H = 3$, $P = 1$, $C = 0$.

TABLE XVIII. MEAN AND VARIABILITY OF SCHOLASTIC APTITUDE OF THE THREE GROUPS OF STUDENTS INDICATED IN TABLE XVII

Extent to which advice was followed	Minnesota College Aptitude Test percentiles: Number	Mean	S.D.	High-school scholarship percentile rank: Number	Mean	S.D.
1. Wholly	62	5[illegible].2[illegible]	32.18	62	65.31	22.83
2. Partly	49	61.20	30.74	49	64.67	27.10
3. Not at all	30	57.97	29.91	30	57.00	25.42
Total and averages	141	57.89	31.32	141	63.32	25.10

The data in Table XVII, therefore, indicate the effectiveness of counseling with respect to college grades. Those students who followed the bureau's recommendations wholly or in part increased their average honor-point ratio, whereas the group not following advice did not increase their average level of scholarship. But these changes in

honor-point ratio, while in the desired direction, were not statistically significant, as shown in Table XIX below But a comparison of groups 1 and 3 *before* and *after* counseling shows that those students who follow guidance recommendations increase their average scholarship to a statistically significant extent, the critical ratio being 3 23. That is, *before* counseling there was a critical ratio of 1 98 between the mean honor-point ratio of those students who later followed advice "wholly" and those who followed it "not at all." *After* counseling this critical ratio becomes 3.23 The latter ratio is statistically significant It is apparent that this increase in the critical ratio is found in the significant increase in grades of the "wholly" group, the "not at all" group having decreased slightly in mean honor-point ratio from 1.69 to 1.67, as shown in Table XVII

TABLE XIX —DIFFERENTIATION OF GROUPS IN TERMS OF THE EFFECT OF COUNSELING ON SCHOLARSHIP

Group	Critical Ratio of Differences in Average Honor-point Ratio
1 versus 1	1 25
2 versus 2	0 63
3 versus 3	−0 009
All groups combined	1 22
1 versus 3 (before counseling)	1 98
1 versus 3 (after counseling)	3.23

If the only or the chief difference between these two groups is the extent to which they followed the counselors' recommendations or advice, thereby becoming better oriented vocationally and educationally, then we may conclude, on the basis of this small sampling of students, that guidance of this type, with students of similar ability, does have a significant relationship to scholastic achievement But scientific caution leads the authors to state that *much additional research is needed with larger groups of students before these results can be accepted as scientifically established for guidance work in general.* It should be emphasized that

these results have been established for students with the above characteristics and by means of specific guidance procedures as outlined above. *Careless generalization of the results to types of guidance practices in general would be fallacious, or at least premature* A more extensive investigation employing the methods outlined in this chapter and involving approximately 1,000 students is being undertaken and will be published separately at a later date.

APPENDIX A

TESTS USED AT THE UNIVERSITY OF MINNESOTA TESTING BUREAU

The following tests are used in counseling individual students at the University of Minnesota Testing Bureau An excellent summary of the reliability, validity, norms, and suggested uses of these tests is given by Schneidler (117) Strang (126) presents additional research data on many of these tests. Woody (179) has prepared a similar summary of research data on tests Bingham (13) reviews in non-technical terms the guidance significance and use of some tests in regard to choice of an engineering occupation The bibliography of tests prepared by Hildreth for the Psychological Corporation (62) is the most extensive available, covering material published before 1933. It presents, however, no data for evaluation of these tests. Buros (22) has published data on new tests published in the years 1933 and 1934 A manual of tests prepared by the Minnesota Employment Stabilization Research Institute for public employment offices (54) has material of value for counselors.

Attitude Scales

1. *Attitude Scales.* Edited by L. L. Thurstone, University of Chicago, The University of Chicago Press, Chicago, Ill, 1931 Each of the following scales yields a final score from which to interpret the student's attitude toward the subject:
   Attitude toward the Church
   Attitude toward War
   Attitude toward the Negro
   Attitude toward Prohibition
   Attitude toward Communism
   Attitude toward the Treatment of Criminals
   Attitude toward Patriotism
   Attitude toward the U. S. Constitution
   Attitude toward Birth Control

Attitude toward the Chinese
Attitude toward the Germans
Attitude toward Sunday Observance
Attitude toward God
Attitude toward Censorship
Attitude toward the Bible
Attitude toward Evolution
Attitude toward Capital Punishment
Attitude toward the Law

2. *Minnesota Scale for the Survey of Opinions* E A Rundquist and R. F. Sletto, Institute of Child Welfare, University of Minnesota, 1934. The scale attempts to evaluate an individual's opinion on such topics as morale, inferiority, family, law, economic conservatism, education
3. *Students' Attitudes toward Vocational Choice* J G Darley and E G Williamson, University of Minnesota, 1935 The test attempts to measure the student's opinion on the question, "On what basis should a student choose his vocation?"
4. *Survey of Students' Attitudes toward Education* K B McConnon and J G Darley, University of Minnesota, 1935 This test attempts to measure students' attitudes toward education
5. *Survey of Student Social Preferences.* E G Williamson and J G Darley, University of Minnesota, 1935 The test attempts to measure the type of social contacts the student prefers
6. *Survey of Student Social Behavior* E G Williamson and J G. Darley, University of Minnesota, 1935 The test attempts to measure the type of behavior manifested by the student in social situations and relationships.

Interest Tests

1. *Strong's Vocational Interest Test (men).* Edward K Strong, Jr , Stanford University, Stanford University Press, Palo Alto, Calif , 1930. This test measures the extent to which one's likes and dislikes agree with those of successful men in a given occupation
2. *Strong's Vocational Interest Test (women)* Edward K Strong, Jr., Stanford University, Stanford University Press, Palo Alto, Calif., 1935 This test measures the extent to which one's likes and dislikes agree with those of successful women in a given occupation

General Scholastic Aptitude Tests

1. *American Council on Education Psychological Examination for High School Graduates and College Freshmen.* L. L. Thurstone

and Thelma Gwinn Thurstone, University of Chicago American Council on Education, 744 Jackson Place, Washington, D C Part I, Completion; Part II, Arithmetic, Part III, Artificial Language, Part IV, Analogies, Part V, Opposites A new form is issued each year

2 *Army Alpha Examination, Revision* Elsie O Bregman, The Psychological Corporation, 522 Fifth Avenue, New York, 1925 The revision is a combination of the five forms of Alpha used in the United States Army during the World War.

3 *College Aptitude Tests* Department of Psychology, University of Minnesota, University of Minnesota Press, Minneapolis, Minn , 1926–1932. Contains vocabulary items from easy and difficult levels of usage. Forms available, 1926, AMCN, DOCN, DOEP

4 *Kuhlmann-Anderson Intelligence Tests* F Kuhlmann and Rose Anderson, Educational Test Bureau, Minneapolis, 1922–1929 Tests consist of a series of nine booklets designed to measure general intelligence in terms of median mental age from grade one (first semester) to maturity

5 *Kuhlmann-Binet*, a further revision and extension of the Binet-Simon Scale. F. Kuhlmann, Director, Division of Research, Minnesota State Department of Public Instruction Warwick and York, Inc , Baltimore, Md , 1922–1932 An individual intelligence test that measures in terms of number of years of average development of the individual tested

6 *Miller's Analogies* for graduate students W S. Miller, University of Minnesota Forms *A* and *B* available Test consists of 100 incomplete analogies arranged in the order of difficulty—the correct answer to be found in one of four possible choices given

7. *Miller Mental Ability Test.* W S Miller, University of Minnesota World Book Company, Yonkers-on-Hudson, N Y, Chicago, 1921. The test aims to measure the "mental ability" of high-school and college students.

8 *Ohio State University Psychological Test.* Committee on College Entrance Intelligence Tests on the Ohio College Association, 1933 The test was designed to measure general intelligence of college freshmen The latest form is Number 18

9 *Otis Self-Administering Test of Mental Ability Higher Examination* Arthur S Otis, World Book Company, Yonkers-on-Hudson, N Y , and Chicago, 1922, 1928. Designed to measure general intelligence or "mental ability" of high-school students and college freshmen.

10. *Pressey Senior Classification Test for Grades* 7–12 S L and L. C. Pressey, Ohio State University. Public School Publish-

ing Company, Bloomington, Ill, 1922 A brief scale for measuring general intelligence, consisting of four tests, opposites, information, practical arithmetic, and common sense

11. *Pressey Senior Verification Test for Grades* 7 12 S L and L C Pressey, Ohio State University Public School Publishing Company, Bloomington, Ill, 1923 Test is equal in difficulty to the classification test and is used to verify the score made in the classification test
12. *Terman Group Test of Mental Ability for Grades* 7 12 Lewis M. Terman, Stanford University. World Book Company, Yonkers-on-Hudson, N. Y, 1920 Part 1, Information; Part 2, Best Answer; Part 3, Word Meaning, Part 4, Logical Selection, Part 5, Arithmetic; Part 6, Sentence Meaning, Part 7, Analogies; Part 8, Mixed Sentences, Part 9, Classification, Part 10, Number Series
13. *Stanford Revision of the Binet-Simon Intelligence Scale.* Lewis M Terman, Leland Stanford Junior University. Houghton Mifflin Company, Boston, New York, Chicago, San Francisco, 1916 and 1922.

Special Aptitude Tests

1. *Aptitude Test for Nursing.* F. A. Moss and T Hunt, Center for Psychological Service, 1931. Test has 7 sections as follows:
   1. Scientific vocabulary
   2. General information
   3. Understanding of printed material
   4. Visual memory
   5. Memory for content
   6. Comprehension and retention
   7. Ability to understand and follow directions
2. *Minnesota Vocational Test for Clerical Workers* D M. Andrews and D. G. Paterson, The Psychological Corporation, 522 Fifth Avenue, New York, 1931. The test is designed to measure some traits not related to intelligence, training, or experience, but at the same time definitely related to success in clerical types of work.
3. *Scott Company's File Clerk's Test.* C. H. Stoelting Co., Chicago, 1926. A test designed to measure aptitude for performing simple clerical tasks with speed and accuracy.
4. *McAdory Art Judgment.* Margaret McAdory, Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University, New York, 1929 Test consists of 72 plates; each plate has 4 representations of some art subject. The task calls for discrimination in one or more of the following art elements: shape and line arrangement, massing of dark and light, color—use of hue, value, and chroma.

5. *Meier-Seashore Art Judgment Test.* Norman C. Meier and Carl E. Seashore, Bureau of Educational Research and Service, University of Iowa, Iowa City, Iowa, 1929 Booklet contains 125 pairs of well-known pictures; the two pictures of a pair are alike save in one respect (which is given). The task is to choose the one which is better (more pleasing, more artistic, more satisfying)
6. *Minnesota Mechanical Assembly Test.* D. G Paterson, R M. Elliott, L. D. Anderson, H A Toops, and E Heidbreder, University of Minnesota Marietta Apparatus Company, Marietta, Ohio, 1930. Measures skill in manipulation and assembling such things as doorbell, safety razor, etc
7. *Minnesota Spatial Relations* D. G Paterson, R M Elliott, L D Anderson, H A Toops, E Heidbreder (Minnesota Mechanical Ability Investigation) Marietta Apparatus Company, Marietta, Ohio, 1930 Measures the speed with which an individual can discriminate odd-shaped cutouts
8. *O'Connor Finger Dexterity Test.* Johnson O'Connor, Stevens Institute, Hoboken, N J, 1928 Designed to measure the speed and accuracy with which a subject can use his fingers in performing a simple manipulative task requiring rapid eye-hand coordination
9. *O'Connor Tweezer Dexterity Test.* Johnson O'Connor, Stevens Institute, Hoboken, N J, 1928 Designed to measure the skill and rapidity with which an individual is able to manipulate a small tool in working with objects requiring fine eye-hand coordination.
10. *Seashore Measure of Musical Talent.* C. E. Seashore, Columbia Graphophone Company, New York, 1919 Six Columbia Phonograph Records, Nos. 53000 to 53005 D. To measure the sense of pitch, intensity, time, consonance, memory, and rhythm.

Reading Tests

1. *Chapman-Cook Speed of Reading Test.* J C. Chapman and S A Cook, Educational Test Bureau, Inc., Minneapolis and Philadelphia, 1924 Forms *A* and *B* Consists of 30 easily comprehended paragraphs in which the student is to cross out one wrong word. Test measures speed of reading
2. *Minnesota Reading Examination for College Students.* Melvin E Haggerty and Alvin C Eurich, University of Minnesota, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1930. Part I is a test of vocabulary. Part II is a test of reading comprehension.
3. *Iowa Silent Reading Test.* H. A. Greene, University of Iowa;

A. N. Jorgensen, University of Buffalo; V. H. Kelley, Northern Arizona State Teachers College. World Book Company, Yonkers-on-Hudson, N. Y., and Chicago, 1927-1931. Measures the unit skills contributing to students' ability to read and to work with books as follows:

1. Paragraph meaning
2. Word meaning
3. Paragraph organization
4. Sentence meaning
5. Location of information
6. Rate of silent reading

4. *Van Wagenen Reading Comprehension Scales.* In English Literature (Scales A and C), in General Science (Scale A). M. J. Van Wagenen, University of Minnesota. The Public School Publishing Company, Bloomington, Ill., 1921. Scales measure the student's ability to comprehend what he reads.

Achievement Tests (Junior High-school Level)

1. *New Stanford Achievement Test, Form X.* Truman L. Kelley, Giles M. Ruch, Lewis M. Terman. World Book Company, Yonkers-on-Hudson, N. Y., and Chicago, 1930. Test is intended to measure educational achievement for grades 4-9 in the following subjects: paragraph meaning, word meaning, dictation, language usage, literature, history and civics, geography, physiology and hygiene, arithmetic reasoning, arithmetic computation.

Achievement Tests (Senior High-school and Junior College)

English

1. *Cooperative English, Series 2.* M. F. Carpenter, E. F. Lindquist, State University of Iowa, D. G. Paterson, F. S. Beers, University of Minnesota. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Part I, English Usage and Spelling; Part II, Vocabulary. New form issued each year.
2. *Cooperative Literary Acquaintance.* F. S. Beers and D. G. Paterson, University of Minnesota. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Test consists of 200 multiple-choice items on English literature and general literature from ancient to contemporary times. New form issued each year.
3. *Iowa English Placement (Training) Form X.* M. F. Carpenter, G. D. Stoddard, and L. W. Miller, Bureau of Educational Research and Service, Extension Division, University of Iowa, Iowa City, 1930. Part 1 is a spelling test; Part 2 tests knowledge of sentence structure; Part 3 is a test of grammar; Part 4 tests the individual's ability to recognize the correct meaning of words.

History and Social Studies

1. *Cooperative American History.* H R. Anderson and E F Lindquist, State University of Iowa. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York New form issued each year
2. *Cooperative Economics Test* J E. Partington, State University of Iowa, and others Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Provisional form issued each year
3. *Cooperative Modern European History.* H R Anderson and E F Lindquist, State University of Iowa Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York New form issued each year
4. *Cooperative World History* H R Anderson and E F Lindquist, State University of Iowa. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York New provisional form issued each year

Languages

1. *Cooperative French Test.* Geraldine Spaulding, Bureau of Collegiate Educational Research, Columbia College, and Paule Vaillant, Columbia University Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Part I, Reading, Part II, Vocabulary, Part III, Grammar New form issued each year
2. *Cooperative German Test.* M. Van D Hespelt and E H Hespelt, New York University, Geraldine Spaulding, Bureau of Collegiate Educational Research, Columbia College Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York Part I, Reading, Part II, Vocabulary, Part III, Grammar New form issued each year.
3. *Cooperative Latin Test.* John C. Kirtland, Phillips Exeter Academy, assisted by Ruth B. McJimsey, Columbia University, and Bernard M. Allen, Roxbury School. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York Part I, Reading; Part II, Vocabulary, Part III, Grammar. New form issued each year
4. *Cooperative Spanish Test* E H Hespelt, New York University, R H Williams, Brown University, Geraldine Spaulding, Bureau of Collegiate Educational Research, Columbia College. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York Part I, Reading; Part II, Vocabulary; Part III, Grammar. New form issued each year.

Mathematics

1. *Cooperative Algebra (Elementary through Quadratics)* John A. Long, University of Toronto; L. P. Siceloff, Columbia University; H. T. Lundholm, State University of Iowa. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Test is designed to measure ability in elementary algebra through quadratics. New form issued each year.
2. *Cooperative General Mathematics Test for College Students.* H. T. Lundholm, State University of Iowa; L. P. Siceloff, Columbia University. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Test includes problems in algebra, plane and solid geometry, trigonometry, analytics, and calculus. New form is issued each year.
3. *Cooperative General Mathematics Test for High School Classes.* H. T. Lundholm, State University of Iowa; L. P. Siceloff, Columbia University. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Test measures information acquired in high-school courses in mathematics. New form is issued each year.
4. *Cooperative Plane Geometry Test.* John A. Long, University of Toronto; L. P. Siceloff, Columbia University. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Test was designed to measure present information in plane geometry. New form is issued each year.
5. *Cooperative Solid Geometry Test.* H. T. Lundholm, State University of Iowa; John A. Long, University of Toronto; L. P. Siceloff, Columbia University. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Purpose of test is to measure achievement in solid geometry. New form issued each year.
6. *Cooperative Trigonometry Test.* John A. Long, University of Toronto; L. P. Siceloff, Columbia University. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. New form issued each year.
7. *Iowa Mathematics Aptitude. Form X.* G. D. Stoddard, L. W. Miller, and E. W. Chittenden, Bureau of Educational Research and Service, Extension Division, University of Iowa, Iowa City, Iowa, 1930. Test is designed to measure those particular mental abilities which constitute factors in subsequent success in mathematics.
8. *Iowa Mathematics Training. Revised, A.* G. D. Stoddard and E. W. Chittenden under the direction of C. E. Seashore

and G. M Ruch, Bureau of Educational Research and Service, Extension Division, University of Iowa, Iowa City, Iowa, 1925. Part I tests various simple skills in the fundamentals of arithmetic. Part II tests knowledge of fundamental operations in algebra. Part III consists of true-false statements in geometry.

9. *Monroe's Diagnostic Tests in Arithmetic, Part III Operations with Common Fractions.* Walter S Monroe Public School Publishing Company, Bloomington, Ill Test measures individual's ability to work with common fractions in addition, subtraction, multiplication, and division.

Science

1 *Cooperative Biology Test* F L Fitzpatrick and S R Powers, Teachers College, Columbia University Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York Test was designed to measure achievement resulting from one year of high-school biology New form issued each year

2. *Cooperative Chemistry Test.* V H Noll and S R. Powers, Teachers College, Columbia University Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York This test intends to measure achievement in high-school chemistry. New form issued each year.

3. *Cooperative General Science Test for H. S. Classes.* O. E. Underhill and S. R Powers, Teachers College, Columbia University. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Test is designed to measure general achievement and information resulting from a year's study of general science in high school. New form issued each year.

4. *Cooperative Geology Tests (Historical).* G. Marshall Kay, Columbia University. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Test is designed to measure the student's information in the field of historical geology.

5. *Cooperative Physics Test for College Students* H. W. Farwell, Columbia University, C. J. Lapp, State University of Iowa; Harvey B. Lemon, University of Chicago; Frederic Palmer, Jr , Haverford College; J T. Tate, University of Minnesota, A. G. Worthing, University of Pittsburgh. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Test measures achievement in mechanics, heat, sound, light, and electricity. Two forms available each year.

6. *Cooperative Zoology Test for College Classes.* W. M. Barrows, F. P. Crutchev, J. W. Price, L. H. Snyder, and R. W. Tyler, Ohio State University. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Part I, Selection of Facts; Part II, Terminology; Part III, Application of Principles. Provisional form, 1935.
7. *Iowa Placement Examinations Chemistry Aptitude.* G. D. Stoddard, L. W. Miller, and Jacob Cornog, Bureau of Educational Research and Service, Extension Division, University of Iowa, Iowa City, Iowa, 1930. Elements of mathematical ability correspondent to and comprehensive of selections from textbooks and items of chemical and physical knowledge.
8. *Iowa Placement Examinations Chemistry Training.* Jacob Cornog, G. D. Stoddard, and L. W. Miller, Bureau of Educational Research and Service, Extension Division, University of Iowa, Iowa City, Iowa, 1930. Knowledge of chemical facts and ability to solve equations and problems.

Sophomore Culture Tests

1. *Cooperative English, Series 1.* S. A. Leonard, V. A. C. Henmon, M. H. Willing, University of Wisconsin, W. W. Cook, State University of Iowa, D. G. Paterson, F. S. Beers, University of Minnesota. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Part I, English Usage, Part II, Spelling, Part III, Vocabulary. New form issued each year.
2. *Cooperative General Culture Test.* E. F. Lindquist, H. R. Anderson, State University of Iowa; Sigmund Timberg, Columbia University; John Storck, Sarah Lawrence College; and others. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Part I, History and Social Studies; Part II, Foreign Literature; Part III, Fine Arts. New form issued each year.
3. *Cooperative Contemporary Affairs.* Alvin C. Eurich, Elmo C. Wilson, and Gerald A. Hill, University of Minnesota, and others. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. The test is "intended to measure the extent to which students keep abreast of significant current affairs in the fields of art, literature, government, international relations, politics, economics, religion, etc." New provisional form issued each year.
4. *Cooperative General Science Test for College Students.* R. W. Tyler, Ohio State University, H. W. Farwell, G. Marshall Kay, W. J. Eckert, Columbia University; S. R. Powers, F. L.

Fitzpatrick, O. E. Underhill, V. H. Noll, Teachers College, Columbia University; A. W. Schindler, State University of Iowa. Cooperative Test Service of the American Council on Education, 500 West 116th Street, New York. Test samples fields of elementary science, meteorology, biology, physics, chemistry, astronomy, and geology. New form issued each year.

APPENDIX B

LIST OF FORMS USED IN THE UNIVERSITY TESTING BUREAU

Form 1 Summary record of services of UTB
Form 2 Follow-up card
Form 3 Grade transcript request
Form 4 Request for Health Service report
Form 5 Contact-desk clearance record
Form 6 Form for referrals to UTB by college counselors of students for vocational counseling and/or testing.
Form 7 Standard interview form for UTB vocational counselors
Form 7*A* Standard interview form for follow-up interviews
Form 7*B* Standard interview form for preliminary interviews by receptionists
Form 8 Individual Record Form for vocational counseling cases
Form 9 Follow-up notice for vocational counseling cases
Form 10 Case profile form
Form 11*A* Men's Strong's Interest Test profile for 29 keys
Form 11*B* Women's Strong's Interest Test profile
Form 11*C* Men's Strong's Interest Test profile for 20 keys
Form 12 Combined interview schedule and summary report of case interviewing and reporting
Form 13 Monthly summary record and report of testing and filing division
Form 14 Contact-desk record and report
Form 15 Cost sheet for UTB special service research testing
Form 16 Statistical Division monthly report
Form 17 Application for use of UTB records
Form 19 Fee statement for UTB services
Form 20 Entrance test record card
Form 21 Report of test scores to high schools
Form 22 Letter to high-school superintendents pertaining to testing procedure for high-school seniors
Form 23 Receipt cards given to students who have taken college entrance tests
Form 24 Return post card, attached to Form 22 when mailed to superintendents of Minnesota high schools

Form 25	Report of number of students tested in Minnesota high schools
Form 26	Directions for administering the tests to high-school seniors
Form 27	High-school scholarship lists
Form 28	Report for scores of Sophomore Culture Tests
Form 29	Miscellaneous pay-roll form
Form 30	Replacement card for case folders and Form 1
Form 31	Referral to other counselors by committee on vocational information
Form 32	Preliminary interviewer's record and monthly report

BIBLIOGRAPHY

1. American Association of Physics Teachers, Committee on Tests, C J Lapp, Chairman "The 1933 1934 College Physics Testing Program," *American Physics Teacher*, II, September, 1934, Supplement, pp 129 148. (Copies may be obtained from the Committee on Educational Testing, University of Minnesota.)
2. American Council on Education. "Report of the Sub-committee on Personal Record Cards," *The Educational Record*, Supplement, No. 8, July, 1928.
3. Anderson, V. V.: *Psychiatry in Industry*, Harper & Brothers, New York, 1929, pp 121 126.
4. Andrew, D. M. (under the direction of D G Paterson): "Measured Characteristics of Clerical Workers," *Bulletins of the Employment Stabilization Research Institute*, Vol III, No 1, University of Minnesota Press, Minneapolis, July, 1934
5. Beatty, J D, and G. U Cleeton. "Predicting Achievement in College and after Graduation," *Personnel Journal*, Vol VI, February, 1928, pp 341 351.
6. Bell, H M.. *Manual for the Adjustment Inventory*, Stanford University Press
7. Bentley, J H, and H. Kelley: *Costs of the Adjustment Service*, (Adjustment Service Report, No. VIII), American Association for Adult Education, New York, 1935.
8. Bergen, G L., and J. F. Murphy *Ten Thousand Clients of the Adjustment Service* (Adjustment Service Report, No. X), American Association for Adult Education, New York, 1935, p 29.
9. Bergen, G. L., Gwendolen Schneidler, and LeRoy Sherman *Use of Tests in the Adjustment Service* (Adjustment Service Report, No. IV), American Association for Adult Education, New York, 1935.
10. Berman, I. R., J. G. Darley, and D. G. Paterson "Vocational Interest Scales: An Analysis of Three Questionnaires in Relation to Occupational Classification and Employment Status," *Bulletins of the Employment Stabilization Research Institute*, Vol III, No. 5, University of Minnesota Press, Minneapolis, August, 1934.
11. Berning, T. J., and M. Wolff: "The Status of High School Graduates One Year after Graduation," *Minnesota Schools*,

Vol. II, September October, 1935, pp. 22 27. Published by Minnesota State Department of Education
12 BINGHAM, W VAN D : "Abilities and Occupations" (Abstract published in Proceedings of the 41st Annual Meeting of the American Psychological Association), *Psychological Bulletin*, Vol. XXX, November, 1933, p 732
13 BINGHAM, W VAN D., "Engineering Aptitudes," *Occupations*, Vol. XIV, December, 1935, pp. 197 202
14 BINGHAM, W V, and B. V. MOORE: *How to Interview*, Harper & Brothers, New York, 1931.
15. BIRD, CHARLES: *Effective Study Habits*, Century Company, New York and London, 1931.
16. BLOODWORTH, J A.: "Social Consequences of Prolonged Unemployment. An Analysis of Five Hundred Cases," *Bulletins of the Employment Stabilization Research Institute*, Vol. II, No 5, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1933
17. BOUCHER, C S., *The Chicago College Plan*, University of Chicago Press, Chicago, 1935.
18. BRADSHAW, F. F : "The Scope and Aim of a Personnel Program," *Educational Record*, Vol XVII, January, 1936, p 121.
19 BREWER, J M : *Education as Guidance*, The Macmillan Company, New York, 1932, pp 2 3
20. BRIGHAM, CARL C.: "General Report on the Scholastic Aptitude Test," *Twenty-eighth Annual Report of the Secretary of the College Entrance Examination Board*, College Entrance Examination Board, New York, 1928, p. 196.
21. BRUSSELL, E. S : *A Study of the Composition of Juries of the District Court. Part 2. A Revision of the Barr-Taussig Scale of Occupational Intelligence*, unpublished master's thesis, University of Minnesota, 1930.
22. BUROS, O K.: "Educational, Psychological, and Personality Tests of 1933 and 1934" (*Studies in Education*, No 7), *Rutgers University Bulletin*, Vol XI, No. 11, 1935.
23. BURT, C., and others: *A Study in Vocational Guidance*, Industrial Fatigue Research Board, Report 33, London, 1926
24. CHARTERS, W. W., A B. LEMON, and L. M. MONELL: *Basic Material for a Pharmaceutical Curriculum* (Commonwealth Fund), McGraw-Hill Book Company, Inc., New York, 1927.
25. CISNEY, H. N.: *Classification of Occupations in Terms of Social Intelligence, Artistic Ability, and Musical Talent*, unpublished master's thesis, University of Minnesota, 1935.
26. COFFMAN, L D.: *The Biennial Report of the President of the University of Minnesota to the Board of Regents*, 1932 1934, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1934.

27 Committee on Educational Research, M. E. Haggerty, Chairman, *Studies in College Examinations*, University of Minnesota, 1934.

28. Committee on Personnel Methods of the American Council on Education, *Measurement and Guidance of College Students*, Williams & Wilkins Company, Baltimore, Md, 1933, pp 165–199

29. COWDERY, K M. "The Guidance of Youth in Colleges," *Occupations*, Vol XII, December, 1933, pp 16–19

30 COWLEY, W H.: "The Nature of Student Personnel Work," *The Educational Record*, Vol. XVIII, April, 1936, pp. 198–226

31 CRAWFORD, A B: "Educational Personnel Work the Field and Its Function," *Personnel Journal*, Vol. X, April, 1932, pp. 405–410

32 CRAWFORD, A. B.: "Effects of Scholarships. A Study in Motivation," *Journal of Personnel Research*, Vol. IV, January, 1926, pp 391–404.

33 CRAWFORD, A B. "Some Criticisms of Current Practice in Educational Measurement," *Harvard Teachers College Record*, Vol III, April, 1933.

34 CRAWFORD, A. B.: "What About All These Tests?" *Occupations*, Vol XII, April, 1934, pp 13–18

35. CRAWFORD, A B, and S H CLEMENT: *The Choice of an Occupation*, Department of Personnel Study, Yale University, New Haven, Conn, 1932, pp. 1–2.

36 DARLEY, J. G, and D. G. PATERSON: "Employed and Unemployed Workers: Differential Factors in Employment Status," *Bulletins of the Employment Stabilization Research Institute*, Vol III, No. 6, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1934.

37. DARLEY, J. G., D. G PATERSON, and I E PETERSON. "Occupational Testing and the Public Employment Service," *Bulletins of the Employment Stabilization Research Institute*, Additional Publication No. 19, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1933.

38. DODGE, A. F. "Occupational Ability Patterns," *Teachers College Contributions to Education*, No. 658, Columbia University, New York, 1935.

39. DVORAK, B J: "Differential Occupational Ability Patterns," *Bulletins of the Employment Stabilization Research Institute*, Vol III, No. 8, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1935.

40. DYER, DOROTHY *The Clearance of University Testing Bureau Cases through the Minneapolis and St. Paul Confidential Exchanges*, an unpublished study of research data collected by the testing bureau, 1934.

41. EARLE, F. M.: "The Psychological Examination: Its Place in Vocational Guidance," *Occupations*, Vol. XII, April, 1934, pp. 70-74.
42. EARLE, F. M., and others: *Methods of Choosing a Career*, George G. Harrap and Company, Ltd., London, 1931.
43. EDMISTON, R. W.: "A Method of Providing a More Valid Distribution of School Marks," *Journal of Experimental Education*, Vol. III, March, 1935, pp. 194-197.
44. ELLIS, A. C.: *The Money Value of Education*, United States Bureau of Education, Bulletin No. 22, Government Printing Office, Washington, D. C.
45. ERIKSEN, E. G., ISABELLE GILLILAND, A. J. KEAN, GERTRUDE PAGE, and G. L. HAWKINS: "Demonstration of Individualized Training Methods for Modern Office Workers," *Bulletins of the Employment Stabilization Research Institute*, Vol. III, No. 2, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1934.
46. EURICH, A. C., and H. A. CARROLL: *Educational Psychology*, D. C. Heath & Company, Boston, 1935, pp. 130-131.
47. FEDER, D. D.: *Suggestions for Testing Programs at the College Level*, Bureau of Educational Research and Service, University of Iowa (unidentified quotation from G. D. Stoddard, p. 5).
48. FINCH, F. H.: "Permanence of Vocational Interests," Abstract in *Program of Forty-third Annual Meeting of the American Psychological Association*, September, 1935, p. 14.
49. FRASER, EVERETT: "Report of the Law School," in *The President's Biennial Report*, 1928-1930, University of Minnesota Press, Minneapolis, pp. 283-293.
50. FRYER, DOUGLAS: "Occupational Intelligence Standards," *School and Society*, Vol. XVI, Sept. 2, 1922, pp. 273-277.
51. GOODEN, O. T.: "Testing in the College," *Journal of Higher Education*, Vol. VII, No. 4, April, 1936, pp. 191-195.
52. GOODENOUGH, F. L.: *The Kuhlman-Binet Tests for Children of Preschool Age, a Critical Study and Evaluation*, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1928.
53. GRAY, CHARLES H.: "Recess for Work Experience," *Occupations*, Vol. XIV, October, 1935, p. 5.
54. GREEN, H. J., and I. R. BERMAN (under the direction of D. G. PATERSON and M. R. TRABUE): "A Manual of Selected Occupational Tests for Use in Public Employment Offices," *Bulletins of the Employment Stabilization Research Institute*, Vol. II, No. 3, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1933.
55. HANSEN, A. H., and T. M. SOGGE: "Occupational Trends in Minnesota," *Bulletins of the Employment Stabilization Research*

Institute, Vol II, No 1, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1933

56 HAWKES, H E: "Real and Imaginary Dangers in the Testing Movement," *Report of the Third Educational Conference*, American Council on Education, Nov 1-2, 1934, pp 17-37

57. HAWKES, H. E "The Cooperative Test Service," *The Educational Record*, Vol. XII, January, 1931, pp 30-38.

58 HAWKINS, L S, and GWENDOLEN SCHNEIDLER: *Selection and Training of Counselors at the Adjustment Service* (Adjustment Service Series, Report II), American Association for Adult Education, New York, 1935.

59. HEILMAN, J. D *The 1936 Report on the Cooperative Testing Programs of the Teachers College Personnel Association*, Colorado State College of Education, Greeley, Col., Feb 13, 1936, p. 86 (mimeograph)

60 HEILMAN, J D "The Evaluation of the Average Mark of a Transfer Student," *Educational Administration and Supervision*, Vol. XX, December, 1934, pp 687 693.

61. HEILMAN, J D · "The Translation of Scores into Grades," *Journal of Educational Psychology*, Vol XXIV, April, 1933, pp 241 256

62 HILDRETH, G. H.· *Bibliography of Mental Tests and Rating Scales*, Psychological Corporation, New York, 1933

63. HOPKINS, L. B · "Personnel Procedure in Education," Supplement to *The Educational Record*, No 3, American Council on Education, Washington, D. C, October, 1926

64. HOPKINS, L B.. "Personnel Work at Northwestern University," *Journal of Personnel Research*, Vol I, 1922, pp. 277–288

65. HULL, C. L.: *Aptitude Testing*, World Book Company, Yonkers-on-Hudson, N Y., 1928.

66. JOHNSON, P. O: *Aspects of Landgrant College Education, with Special Reference to the University of Minnesota* (College Problems Series), University of Minnesota Press, Minneapolis, 1934, pp 192 220.

67. JOHNSON, P. O.: "Differential Functions of Examinations," *Studies in College Examinations*, University Committee on Educational Research, University of Minnesota, 1934, pp. 43–50

68. JOHNSTON, J B: *The Liberal College in Changing Society*, Century Company, New York and London, 1930, pp. 34–35.

69 JOHNSTON, J. B.: *Who Should Go to College?*, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1930

70. JOHNSTON, J. B.: "The College of Science, Literature, and the Arts," *The Biennial Report of the President of the University of Minnesota to the Board of Regents, Bulletin of the University of Minnesota*, Vol. XXXV, No. 64, Dec. 1, 1932, pp. 103–108.

71. JOHNSTON, J. B.: "Undergraduate Migration," *Journal of Higher Education*, Vol. II, December, 1931, pp. 471–480.
72. JOHNSTON, J. B.: Unpublished address before joint meeting of the University Board of Admissions and the Committee on Educational Research, University of Minnesota, April 4, 1935.
73. JOHNSTON, J. B., and E. G. WILLIAMSON: "A Follow-up Study of Early Scholastic Predictions in the University of Minnesota," *School and Society*, Vol. XL, December 1, 1934, pp. 730–738.
74. JONES, E. S.: "Planning College Schedules," *Occupations*, Vol. XIV, No. 4, January, 1936, p. 315.
75. JUDD, C. H.: "Education," in *Recent Social Trends in the United States; Report of the President's Research Committee on Social Trends*, McGraw-Hill Book Company, Inc., New York and London, 1933, Vol. I, Chap. 7, pp. 325 *ff.*
76. KITSON, H. D.: "Getting Rid of a Piece of Educational Rubbish," *Teachers College Record*, Vol. XXXVI, October, 1934, p. 30.
77. KITSON, H. D.: "Vocational Guidance Is Not Fortune Telling," *Teachers College Record*, Columbia University, Vol. XXXV, February, 1934, p. 372.
78. KITSON, H. D., and E. M. STOVER: "Measuring Vocational Guidance: A Summary of Attempts," *Personnel Journal*, Vol. XI, October, 1932, pp. 150–159.
79. KOEPKE, C. A.: "A Job Analysis of Manufacturing Plants in Minnesota," *Bulletins of the Employment Stabilization Research Institute*, Vol. II, No. 8, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1934.
80. KOOS, L. V. and G. N. KEFAUVER: *Guidance in Secondary Schools*, The Macmillan Company, New York, 1932.
81. KREY, A. C. and P. O. JOHNSON: "Differential Functions of Examinations," University Committee on Educational Research, *Bulletin of the University of Minnesota*, Vol. XXXVI, No. 4, January 25, 1933, pp. 1–23.
82. LEARNED, W. S.: "Testing for Values in Education," *Bulletin of the Association of American Colleges*, Vol. XX, March, 1934, pp. 1–22.
83. LEE, R. I. and L. W. JONES: "Fundamentals of Good Medical Care," *Publications of the Committee on Cost of Medical Care*, No. 22, University of Chicago Press, Chicago, 1933, pp. 125–127.
84. LLOYD-JONES, ESTHER: *Student Personnel Work at Northwestern University*, Harper & Brothers, New York, 1929.
85. LLOYD-JONES, ESTHER: "Personnel Administration," *Journal of Higher Education*, Vol. V, No. 3, March, 1934, pp. 141–147.

86. LORGE, IRVING "The Chimera of Vocational Guidance," *Teachers College Record*, Columbia University, Vol. XXXV, February, 1934, p. 359

87. MAVERICK, L. A *The Vocational Guidance of College Students*, Harvard Studies in Education, Vol. VIII, Harvard University Press, Cambridge, Mass, 1926

88 McCONN, MAX "Educational Guidance Is Now Possible," *The Educational Record*, Vol XIV, October, 1933, pp 475–499.

89. McCONN, MAX. "Examinations Old and New. Their Uses and Abuses," *Educational Record*, Vol. XVI, October, 1935, pp. 375 411

90 MACLEAN, M S · "A College of 1934," *Journal of Higher Education*, Vol. V, May, 1934, pp 240 246.

91. MACRAE, ANGUS. "A Follow-up of Vocationally Advised Cases," *Journal of the National Institute of Industrial Psychology*, Vol. V, No 5, January, 1931

92. MENNINGER, K. A · *The Human Mind*, Alfred A Knopf, Inc., New York and London, 1930, pp 12-13.

93 MOORE, B V "Objective Methods in the Personal Interview in Vocational Guidance," *Psychological Clinic*, Vol XIX, June, 1930, pp. 105 115

94 MOSS, F A : "Scholastic Aptitude Tests for Medical Students," *Journal of the Association of American Medical Colleges*, Vol VIII, January, 1933, p 27.

95 National Academy of Sciences· "Psychological Examining in the U. S. Army," *Memoirs of the National Academy of Sciences*, Washington, D. C, Vol XV, Part 3, 1921, pp 819–837

96 National Education Association: "How Higher Institutions of Learning Are Meeting the Needs of Individual Students," in *Department of Superintendence Ninth Yearbook*, Washington, D C., 1931, pp 147 180.

97. NEWLAND, T. E.· "Testing for Counseling," *Report of Thirteenth Annual Meeting of American College Personnel Association*, at St Louis, February 19–22, 1936 (edited by J A. Humphreys), pp. 19 22.

98. NORTHBY, A. S.: *A Study of the Entrance Requirements to the College of Engineering*, Ph D. Thesis, University of Minnesota, June, 1935.

99. PATERSON, D G : *Preparation and Use of New-type Examinations*, World Book Company, Yonkers-on-Hudson, N. Y., 1926

100 PATERSON, D. G.: "A Program for Student Counseling," *Problems of College Education* (edited by Earl Hudelson), University of Minnesota Press, Minneapolis, 1928, pp. 205–287.

101. PATERSON, D. G.: "Evaluation of Orientation Course at Minnesota," *Educational Record*, Vol. VIII, April, 1927, pp. 99–106.

102. PATERSON, D. G. (editor): "Research Studies in Individual Diagnosis," *Bulletins of the Employment Stabilization Research Institute*, Vol. III, No. 4, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1934.

103. PATERSON, D. G. (with a committee of seven): "The Minnesota Student Personnel Program," *Educational Record*, Vol. IX, Supplement 7, April, 1928, pp. 3–40.

104. PATERSON, D. G., and E. G. WILLIAMSON: "Helping You Solve Your Vocational and Other Personal Problems," *Freshman Week Handbook* (*Bulletin of the University of Minnesota*, Vol. *XXXVII*, *No.* 29), June 30, 1934, pp. 12–19.

105. PETTENGILL, T. E.: *Prediction of College Success*, unpublished study, University of Minnesota, 1934.

106. PETTENGILL, T. E.: "Comparison of the College Aptitude Test and Rank in High School Graduating Class as Factors for Predicting Freshman Scholarship," *Bulletin of the American Association of Collegiate Registrars*, April, 1936, pp. 196–204.

107. PROCTOR, W. M.: "Intelligence and Length of Schooling in Relation to Occupational Level," *School and Society*, Vol. XLII, December, 1935, pp. 783–786.

108. RICE, J. M.: "Economy of Time in Teaching," *The Forum* (New York), Vol. XXII, February, 1897, pp. 706–712.

109. RICE, J. M.: "Obstacles to Rational Educational Reform," *The Forum* (New York), Vol. XXII, December, 1896, pp. 385–395.

110. RICE, J. M.: "The Essentials in Elementary Education," *The Forum* (New York), Vol. XXII, January, 1897, pp. 538–546.

111. RICE, J. M.: "The Futility of the Spelling Grind," *The Forum* (New York), Vol. XXIII, 1897, pp. 163–172, 409–419.

112. RICHMOND, M. E.: *Social Diagnosis*, Russell Sage Foundation, New York, 1917.

113. RICHMOND, M. E.: *What Is Social Case Work?* Russell Sage Foundation, New York, 1922.

114. ROESSEL, F. P.: *A Comparative Study of the Mental Ability in Grades Seven through Twelve in Three Minnesota Towns in* 1920 *and in* 1934, M. A. thesis, University of Minnesota, 1935, pp. 42–43.

115. RUNDQUIST, E. A.: "Intelligence Test Scores and School Marks of High School Seniors in 1929 and 1933," *School and Society*, Vol. XLIII, February 29, 1936, pp. 301–304.

116. RUNDQUIST, E. A., and R. F. SLETTO: *Personality in the Depression: A Study in Attitude Measurement*, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1936.

117. SCHNEIDLER, G. G., with the assistance of D. G. PATERSON and E. G. WILLIAMSON: *Student Personnel Procedures and Techniques Used by Faculty Counselors at the University of Minnesota*,

University of Minnesota, Department of Psychology, 1935 (mimeograph).

118. SCHWESINGER, G. C.: *Heredity and Environment, Studies in the Genesis of Psychological Characteristics* (edited by Frederick Osborn), The Macmillan Company, New York, 1933.

119. SCOTT, W. D., Foreword to *Student Personnel Work at Northwestern University* by Esther McD. Lloyd-Jones, Harper & Brothers, New York, 1929, p. v.

120. SCOTT, W. D., R. C. CLOTHIER, and S. B. MATHEWSON: *Personnel Management*, McGraw-Hill Book Company, Inc., New York, 1931.

121. SEASHORE, C. E.: "A Job Analysis for Higher Education," *Journal of Higher Education*, Vol. VI, April, 1935, pp. 173–178.

122. SEIPP, EMMA: *A Study of One Hundred Clients of the Adjustment Service* (Adjustment Service Series, Report XI), American Association for Adult Education, New York, 1935.

123. *Stanford University President's Report*, 1934–35. Reports of the Registrar, Appointment Service, Committee on Scholarship, and Committee on Vocational Guidance.

124. STEDMAN, E. G., and M. E. MANSON: "Vocational Try-outs for College Students," *Occupations*, Vol. XII, No. 5, January, 1934, p. 51.

125. STEVENSON, R. A.: "The Minnesota Unemployment Research Project," *Bulletins of the Employment Stabilization Research Institute*, Vol. I, No. 1, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1935.

126. STRANG, RUTH: *Personal Development and Guidance in College and Secondary School*, Harper & Brothers, New York, 1934.

127. STRONG, E. K., JR.: *Change of Interests with Age*, Stanford University Press, Palo Alto, Calif., 1931.

128. STRONG, E. K., JR.: *Manual for Vocational Interest Blank for Men*, Stanford University Press, Palo Alto, Calif., January, 1933.

129. STRONG, E. K., JR.: *Supplement to Manual for Vocational Interest Blank for Women*, Stanford University Press, Palo Alto, Calif., May, 1935, Table 3 (revised).

130. STRONG, E. K., JR.: "Attitudes vs. Aptitudes in Vocational Guidance," *Journal of Applied Psychology*, Vol. XVIII, August, 1934, pp. 501–515.

131. STRONG, E. K., JR.: "Classification of Occupations by Interests," *Personnel Journal*, Vol. XII, April, 1934, pp. 301–313.

132. STRONG, E. K., JR.: "Interest Maturity," *Personnel Journal*, Vol. XII, August, 1933, pp. 77–90.

133. STRONG, E. K., JR.: "Permanence of Vocational Interests," *Journal of Educational Psychology*, Vol. XXV, May, 1934, pp. 336–344.

134 STRONG, E. K., JR.: "Predictive Value of the Vocational Interest Test," *Journal of Educational Psychology*, Vol. XXVI, May, 1935, pp. 331-349.
135. STRONG, E. K., JR.: "Report of Committee on Vocational Guidance," in *Stanford University President's Report for 1934-35*.
136. STRONG, E. K., JR.: "Vocational Interest Test," *Occupations*, Vol. XII, April, 1934, pp. 49-56.
137. SYMONDS, P. M.: *Diagnosing Personality and Conduct*, Century Company, New York and London, 1931.
138 TATE, J. T.: "The University College," in *The Biennial Report of the President of the University of Minnesota to the Board of Regents*, *Bulletin of the University of Minnesota*, Vol. XXXV, No. 64, December 1, 1932, pp. 183-184.
139. TERMAN, L. M.: *Genetic Studies of Genius. Vol. I. Mental and Physical Traits of a Thousand Gifted Children*, Stanford University Press, Palo Alto, Calif., 1926, pp. 66-72.
140 TERMAN, L. M.: "The Measurement of Personality," *Science*, Vol. LXXX, December 28, 1934, pp. 605-608.
141. THORNDIKE, E. L.: *Educational Psychology, Briefer Course*, Teachers College, Columbia University, New York, 1918.
142. THORNDIKE, E. L.: "Tests of Intelligence; Reliability, Significance, Susceptibility to Special Training and Adaptation to the General Nature of the Task," *School and Society*, Vol. IX, February 15, 1919, pp. 189-195.
143. THORNDIKE, E. L., and others. *Prediction of Vocational Success*, Institute of Educational Research, Teachers College, Columbia University. The Commonwealth Fund, New York; H. Milford, Oxford University Press, London, 1934.
144. THURSTONE, L. L.: "A Multiple Factor Study of Vocational Interests," *Personnel Journal*, Vol. X, 1931, pp. 198-205.
145. TRABUE, M. R.: "Graphic Representation of Measured Characteristics of Successful Workers," *Occupations*, Vol. XII, April, 1934, pp. 40-45.
146 TRABUE, M. R.: "Occupational Ability Patterns," *Personnel Journal*, Vol. XI, February, 1933, pp. 344-351.
147. TRABUE, M. R. and B. J. DVORAK: "A Study of the Needs of Adults for Further Training," *Bulletins of the Employment Stabilization Research Institute*, Vol. III, No. 3, University of Minnesota Press, Minneapolis, 1934.
148. TYLER, R. W.: *Constructing Achievement Tests*, Ohio State University, Columbus, Ohio, 1934.
149. TYLER, R. W.: "Defining and Measuring Objectives of Progressive Education," *Educational Record*, Vol. XVII, Supplement 9, January, 1936, pp. 78-85.

150. United States Senate "Character Education," Supplementary Hearing before the Sub-Committee of the Committee on Appropriations on D. of C. Appropriation Bill for 1936, H. R 3973, 74th Congress, First Session, March 15, 1935, Government Printing Office, Washington, D C, 1935.
151. University of Florida "Bulletin of Information for The General College 1935 36," *The University Record*, Vol XXX, Series 1, No 4, Extra No 2, April, 1935, and No. 6, June, 1935.
152. University of Minnesota "Bulletin for The General College, 1935 1936," *Bulletin of the University of Minnesota*, Vol. XXXVIII, No. 43, Sept 4, 1935
153. University of Minnesota "The College of Science, Literature and the Arts," *Bulletin of the University of Minnesota*, Vol XXXVIII, No. 31, June 27, 1935, pp 13 15
154. University Testing Bureau "Summary of Educational Plans of High School Seniors in Relation to College Aptitude Ratings, 1926-1933," unpublished data collected by the University Testing Bureau, University of Minnesota Research File 27
155. VITELES, M S. *Industrial Psychology*, W W Norton & Company, Inc, New York, 1935
156 VITELES, M S "The Clinical Viewpoint in Vocational Selection," *Journal of Applied Psychology*, Vol IX, 1925, pp. 131–138
157 VITELES, M. S. "Validating the Clinical Method in Vocational Guidance," *Psychological Clinic*, Vol XVIII, May-June, 1929, pp 69 77.
158 WAGNER, M E, and H C. MILLS "College Credit in Advance," *Occupations*, Vol XIV, December, 1935, pp 245-250
159 WALLERS, J E.: *Individualizing Education*, John Wiley & Sons, Inc., New York, 1935
160. WEST, R M: "Student Mortality," in *Report of the University of Minnesota Survey Commission*, Vol VI, 1924, Chart II, p 15, Chart XIX, p 32.
161. WILLIAMSON, E. G.: "Changes in College Freshman Intelligence," *School and Society*, Vol XLII, October 19, 1935, pp 547 551
162. WILLIAMSON, E. G. "On Choosing a Vocation," *The Interpreter* (General Extension Division, University of Minnesota), Vol X, January, 1936, reprinted in *Occupations* Vol. XIV, April, 1936, pp 636 640.
163 WILLIAMSON, E. G: "On Counseling without a Counselor," *Occupations*, Vol. XII, April, 1935, pp. 645-646
164 WILLIAMSON, E G.: "The Role of Faculty Counseling in Scholastic Motivation," *Journal of Applied Psychology*, Vol XIX, June, 1936, pp 314 324.

165. WILLIAMSON, E. G.: "The University of Minnesota Testing Bureau," *The Personnel Journal*, Vol. XII, April, 1934, pp. 345-355.

166. WILLIAMSON, E. G.: "The University Testing Bureau" in *Report of the President of the University of Minnesota to the Board of Regents*, 1932-1934, *Bulletin of the University of Minnesota*, Vol. XXXVII, No. 50, November 27, 1934, pp. 343-351.

167. WILLIAMSON, E. G. and A. M. CHRISTIAN: "Vocational Advisement of Disabled College Students," *Occupational Therapy and Rehabilitation*, Vol. XIII, June, 1934, pp. 179-184.

168. WILLIAMSON, E. G. and J. G. DARLEY: "Matching Abilities to Jobs," *The Personnel Journal*, Vol. XIII, April, 1935, pp. 344-352.

169. WILLIAMSON, E. G., and J. G. DARLEY: *Survey of Student Social Behavior*, Psychological Corporation, New York City, 1937.

170. WILLIAMSON, E. G., and J. G. DARLEY: *Survey of Student Social Preferences*, Psychological Corporation, New York City, 1937.

171. WILLIAMSON, E. G., and J. G. DARLEY: "The Measurement of Social Attitudes of College Students. I. Standardization of Tests and Results of a Survey," to appear in an early issue in 1937 of *The Journal of Social Psychology*.

172. WILLIAMSON, E. G., and J. G. DARLEY: "The Measurement of Social Attitudes of College Students. II. Validation of Two Attitude Tests," to appear in an early issue in 1937 of *The Journal of Social Psychology*.

173. WILLIAMSON, E. G., H. P. LONGSTAFF, and J. M. EDMONDS: "Counseling Arts College Students," *Journal of Applied Psychology*, Vol. XIX, No. 2, April, 1935, pp. 111-124.

174. WILLIAMSON, E. G. and D. G. PATERSON: "Coordinating Counseling Procedures," *Journal of Higher Education*, Vol. V, February, 1934, pp. 75-78.

175. WOOD, BEN D.: *Measurement in Higher Education*, World Book Company, Yonkers-on-Hudson, N. Y., 1923.

176. WOOD, BEN D.: "Information for Guidance," *Occupations*, Vol. XIII, June, 1935, pp. 795-803.

177. WOOD, BEN D.: "The Major Strategy of Guidance," *The Educational Record*, Vol. XV, October, 1934, pp. 419-444.

178. WOOD, BEN D.: "The Ultimate Basis for Satisfactory College-High School Relations," *Bulletin of the American Association of Collegiate Registrars*, Vol. IX, July, 1934, pp. 273-276.

179. WOODY, CLIFFORD: "Standardized Tests Designed for Use in Institutions of Higher Learning," in *Quantitative Measurement in Institutions of Higher Learning* (Yearbook XVIII of The National Society of College Teachers of Education), University of Chicago Press, Chicago, 1930, pp. 19-72.

180. WRENN, C G.: "Wheat without Chaff," *Occupations*, Vol XIII, February, 1935, pp. 447-448

181 YOUNG, PAULINE V: *Interviewing in Social Work A Sociological Analysis*, McGraw-Hill Book Company, Inc., New York, 1936.

182 ZINSSER, HANS: *Rats, Lice and History*, Little, Brown & Company, Boston, 1935, p 15.

INDEX

G

N

O

V